न्यायाम्भोनिधि श्रीमद्विजयानन्दसूरि.

(आत्मारामजी महाराज.)

प्रस्तावना.

परोपकार रसिक महात्माओना लेखोनी महत्ता कंइक अपूर्व होय छे. ते अगाध भंडारना भोक्ता थवानो आधार तेना अभ्यासीना अधिकार उपर रहे छे. उत्तम लेखनुं स्वारस्य अने माहात्म्य आश्चर्य जनक छे. ते पुनः पुनः आदर पूर्वक अभ्यासथी ज प्रकट थइ सुख शांति आपे छे. आत्मरुचि अने स्वशक्ति अनुसार समर्थ विद्वान्ना योग्य विषयनो अने तेना लेखोनो स्वीकार करी तेनुं आदर पूर्वक श्रवण, पठन अने मनन करवुं, ए अंते महा फलदायी थाय छे.

समर्थ जैन दर्शन जणावे छे के, " आ जगतमां अनादि कालथीज मिथ्यात्व छे. " आ शास्त्रीय लेख खरेखरो छे, अेम आपणे मानवुं जोइए अने तेम मानवानुं कारण पण आपणने प्रत्यक्ष विगेरे प्रमाणोथी सिद्ध थाय छे. ए अनादि कालथी संपर्क पामेला मिथ्यात्वनुं कारण शुं छे ? अेवो विचार करतां आपणने भान थशे के, अेनुं खरेखरुं कारण अज्ञान छे. अज्ञान अने मिथ्यात्व ए कार्य कारण रूपे अविरत थइने रहेलुं छे. तेमनो एवो भाव पामेलो अेवो संबंध छे के, ज्यां अज्ञान त्यां मिथ्यात्व अने ज्यां मिथ्यात्व त्यां अज्ञान—आ बन्नेनी परस्पर एक बीजानी आधार भूत थइ रहेली छे.

आवा मिथ्यात्वना कारण रूप अज्ञानने दूर करवानी खास जरूर छे. ए अज्ञान आपणा आनंदमय अने सुखमय एवा [illegible] क [illegible] छे. [illegible] अेनो [illegible] करवानो ए अज्ञान [illegible] छे [illegible] तेना [illegible] इत्यादि

(शार्दूलविक्रीडित.)

जेणे श्रीधन वावियुं प्रणयथी श्रीज्ञानना क्षेत्रमां,
मंत्रोच्चार कर्यो सदर्प हृदये प्रीति धरी नेत्रमां;
आनंदे गुरु भक्तिभाव धरतां आरावी सत्कर्मने,
धर्मानंद नगीनदास जगमां पामो धरी धर्मने. ॥ १ ॥

जेणे श्री उपधानना वहननी माला धरी अंगमां,
एवा चंदनबाइ जे सदनमां रहेछे सदा रंगमां;
न्यायोपार्जित वित्तना नियमथी जे शुद्धपाम्या मति,
ते नीतिज्ञ नगीनदास जगमां श्रीधर्म पामो अति. २

अमे छीए,

श्री आत्मानंद सभाना

अंगभूत श्रमणोपासको.

परोपकार रसिक महात्माओना लेखोनी महत्ता कइंक अ-पूर्व होय छे. ते अगाध भंडारना भोक्ता थवानो आधार तेना अ-भ्यासीना अधिकार उपर रहे छे. उत्तम लेखनुं स्वारस्य अने माहात्म्य आश्चर्य जनक छे. ते पुनः पुनः आदर पूर्वक अभ्यासथी ज प्रकट थइ सुख शांति आपे छे. आत्मरुचि अने स्वशक्ति अनु-सार समर्थ विद्वान्ना योग्य विषयनो अने तेना लेखोनो स्वीकार करी तेनुं आदर पूर्वक श्रवण, पठन अने मनन करवुं, ए अंते महा फलदायी थाय छे.

समर्थ जैन दर्शन जणावे छे के, " आ जगतमां अनादि कालथीज मिथ्यात्व छे. " आ शास्त्रीय लेख खरेखरो छे, एम आपणे मानवुं जोइए अने तेम मानवानुं कारण पण आपणने प्रत्यक्ष विगेरे प्रमाणोथी सिद्ध थाय छे. ए अनादि कालथी संपर्क पामेला मिथ्यात्वनुं कारण शुं छे ? एवो विचार करतां आपणने भान थशे के, एनुं खरेखरुं कारण अज्ञान छे. अज्ञान अने मि-थ्यात्व ए कार्य कारण रुपे ग्रथित थइने रहेलुं छे. तेमनो एकी भाव पामेलो एवो संबंध छे के, ज्यां अज्ञान त्यां मिथ्यात्व अने ज्यां मिथ्यात्व त्यां अज्ञान—आ त्रिपुटी परस्पर एक बीजानी आ-धार भूत थइ रहेली छे.

आवा मिथ्यात्वना कारण रुप अज्ञानने दूर करवानी खास जरुर छे. ए अज्ञान आपणा आनंदमय अने सुखमय एवा धार्मि-क जीवननुं विरोधी छे. शिवपद रूप परम श्रेयनी शोध करवामां ए अज्ञान अंतराय रूप थाय छे. इतर धर्मना तत्वज्ञोए पोताना विविध मतोथी आ जगत् ईश्वरकृत छे अने पुण्य पापनी उत्पत्ति

ईश्वरकृत मानी ईश्वरमां विषमताना अने बीजा दोष प्रगटाव्या छे. वली तेमना तरफथी तेनो खुलासो धर्म अधर्म अथवा शुभ अशुभ कर्मने वचमां आणी ईश्वरने मात्र कर्म फलदाता कही करवामां आपी तेमां पण अन्योन्याश्रय दोष आपवामां आव्यो छे. ए अज्ञानथी कोइए स्कंध अने तृष्णामांथी पापनो समुद्भव मान्यो छे. वली बीजाओए सारुं अने खोटुं एवुं परस्पर विरुद्ध एक झूज स्वीकार्युं छे. आवी अनेक कपोल कल्पनाओ ए अज्ञानना प्रभावथी प्रगटेली छे. खरेखरी वस्तुगति उपर विश्वास न लावी अश्रद्धा अने शंकामां आंदोलित थवाय, ए बधुं ज्ञानना अभावरूप जे अज्ञान, वस्तुगतिने यथार्थ न अनुभववा रूप अज्ञान अने ते अज्ञान जन्य जे मिथ्यात्व तेनुंज परिणाम छे एम कहेवामां कांइ पण बाध नथी. वली अज्ञान एज पापनुं मूल छे. पाप करवानी वृत्ति अज्ञान जन्य छे. ते वस्तुगतिना ज्ञाननी न्यूनताथीथाय छे.

ज्यां प्रकाश छे, त्यां अंधकार संभवतोज नथी. प्रकाश न होय त्यांज अंधकारनो प्रवेश छे. प्रकाशमां सर्वदा निर्भयता, निःशंकता अने विशालता रहेली छे. अप्रकाशमांज भय, शंका तथा संकोच वसे छे. आथी ए अज्ञानरुप अंधकारने नाश करवा आ महान् लेखके पोतानो लेख विस्तार्यो छे अने ए लेखनुं "अज्ञानतिमिर भास्कर" एवुं सार्थक नाम आपेलुं छे. आथी करीने ए महोपकारी महाशये पोतानुं गुरुत्व पण कृतार्थ करेलुं छे. ते विषे कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्रसूरि पोताना योगशास्त्रमां नीचे प्रमाणे लखे छे—

यद्वत्सहस्रकिरणः प्रकाशको निचिततिमिरमग्नस्य ।
तद्वद्गुरुरत्र भवेदज्ञानध्वांतपतितस्य ॥ १ ॥

" जेम घाटा अंधकारमां मग्न थयेलाने सूर्य प्रकाश कर्त्ता छे, तेम आ संसारमां अज्ञानरुपी अंधकारमां पमेलाने गुरु प्रकाश कर्त्ता छे.

आवा यथार्थ गुरुपणाने धारण करनारा परम उपकारी पूज्यपाद गुरु श्री विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) ए भारत वर्षनी जैन प्रजानो ते अज्ञानरुप अंधकारथी उद्धार करवाने माटे आ लेख लखेलो छे. ते महाशयना लेख प्रथमथीज प्रशंसनीय थता आवे छे. आर्हत धर्मना तत्वोनी जे भावना तेमना मगजमा जन्म पामेली, ते लेख रुपे बाहेर आवतांज आखी दुनियाना पंमितो, ज्ञानीओ, शोधको, शास्त्रज्ञो, धर्मगुरुओ, लेखको अने सामान्य लोको उपर जे असर करे छे, तेज तेनी ससारता अने उपयोगिता दर्शाववाने पूर्ण छे. मिथ्यात्वजनित अज्ञानताने लइने अन्यमति भारतवासीओए सनातन जैन धर्म उपर जेजे आक्षेप कर्या छे अने करे छे तथा वेदादिग्रंथोना स्वकपोल कल्पित अर्थ करी जे जे लेख द्वारा प्रयत्नो कर्या छे ते न्याय अने युक्ति पूर्वक ते ते ग्रंथोनुं मथन करी आ ग्रंथमां स्पष्ट रीते दर्शाववामां आव्युं छे. अने जैन दर्शननी क्रिया तथा प्रवर्त्तन सर्व रीते अबाधित अने निर्दोष छे, एवुं जगतना सर्व धार्मिकोनी दृष्टिए सिद्ध करी आपेल छे.

आर्हत धर्मनी भावना जुनामां जुनी छतां तेने इतर वादीओ नवी अने कल्पित ठरावी जनसमूहआगल मुकवानो यत्न करता आव्याछे नेकरेछे, ते बधुं लक्ष्यमां लइ आ प्रवीण ग्रंथकारे ए भावनानी आवश्यकताने आखा विश्वनी प्रवृत्तिथी सिद्ध करवाना यत्न उपरांत ए भावना पोते शुं छे? तेनुं सारी रीते आ ग्रंथमां सूचन करवामां आव्युं छे अने ते साथे इतर वादीओना धर्मनी भावनानुं रहस्य

खुल्लुं करी जैन धर्मना तत्त्व स्वरूपने सर्वोपरि सिद्ध करवामां आव्युं छे. ग्रंथना पूर्व भागमां आस्तिक अने नास्तिक मतना विचार, जैन धर्मनी प्रबलताथी वैदिक हिंसानो पराभव, वेदना विभाग, वेदज्ञ ऋषिओना मांसाहारनुं प्रतिपादन, वैदिक यज्ञ कर्मनो विच्छेद, वैदिक हिंसा विषे विविध मत, शांकर भाष्य रचवानो हेतु, अने शंकराचार्यनो वाम मार्ग इत्यादि घणा विषयोनुं स्पष्टीकरण करी, तेमज वेद, स्मृति, उपनीषद् अने पुराणादि शास्त्रोमां दर्शावेल यज्ञ विगेरेनुं स्वरुप वर्णवी अने मिथ्यात्व भरेली तद्गत अज्ञानता दर्शावी सारुं विवेचन करनार आ विश्वासलायक ग्रंथ तो अर्वाचीन जैन ग्रंथोमां एकज छे, एम कहेवामां कांइपण अतिशयोक्ति नथी. वली बौद्ध, नैयायिक, सांख्य, जैमिनेय आदि दर्शनवालाओ मुक्तिना स्वरूपने केवी रीते कथन करे छे ? तथा ईश्वरमां सर्वज्ञपणानी सिद्धि करवा तेओ केवी युक्तिओ दर्शावे छे ? तेनुं यथार्थ ज्ञान करावी ग्रंथकारे घणुं पांडित्य भरेलुं विवेचन करेलुं छे, जे वांचवाथी जैन बंधुओने भारतवर्षमां प्रसरेला गाढ मिथ्यात्वनुं स्वरूप जणाइ पोताना शुद्ध ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप सनातन धर्मनी उपर सारी दृढता उत्पन्न थाय तेम छे.

ग्रंथना बीजा भागमां साधु अने श्रावकनी धर्म योग्यता दर्शाववा माटे एकवीश गुणोनुं विस्तारथी वर्णन, भावश्रावकना षट्द्वार संबंधी सत्यावीश भेद अने तेमना सत्तर गुणोनुं स्वरूप विवेचन सहित आपवामां आव्युं छे. ते साथे स्याद्वाद सिद्धांतना ग्रंथोमां आत्मानुं स्वरूप जणाववा माटे जे जे लखवामां आव्युं छे, ते जाणवुं घणुं दुर्घट होवाथी तत्त्वजिज्ञासुओ तेनुं स्वरूप यथार्थ जाणी शकता नथी, नथी तेमने सुगम रीते जाणवा माटे

बहिरात्मा, अंतरात्मा अने परमात्मा ए त्रण प्रकारना आत्मानुं स्वरूप शास्त्रीय प्रमाणो साथे आ ग्रंथमां घणुं संक्षेपमां आपवामां आव्युं छे.

कोइपण निष्पक्षपाती तत्वजिज्ञासु पुरुष आ ग्रंथनुं स्वरूप आद्यंत अवलोकशे तो तेना जाणवामां आवशे के, एक जैनना समर्थ विद्वाने भारतवर्षनी जैन प्रजानो भारे उपकार कीधो छे. ते साथे आवा विद्वच्छिरोमणि महाशय पुरुष सांप्रत काले विद्यमान नथी, तेने माटे तेने अतुल खेद प्राप्त थशे. स्वर्गवासी ग्रंथकारे भारतनी जैन प्रजानो महान् उपकार करी जैनोनी प्राचीन स्थितिनुं स्मरण कराव्युं छे. एक समये जैन प्राचीन विद्यानो बहु उत्कर्ष हतो अने कुमारपाल जेवा परम धार्मिक उदार महाराजाना आश्रय नीचे जैन विद्याने बहु सारां उत्तेजन अने पोषण मल्यां करतां. तेवो काल जो फरीथी आवे अने आवा लेखको विद्यमान होय तो जैन प्रजा पाछी पोताना पूर्व उत्कर्षना शिखर उपर सत्वर आरूढ थाय, तेमां कांइपण आश्चर्य नथी.

छेवटे अमारे आनंद सहित जणाववुं पडे छे के, स्वर्गवासी पूज्यपाद श्री आत्मारामजी महाराजना हृदयमां जे अनगार धर्मनी साथे परोपकार पणानी पवित्र छाया पडी हती, ते छायाना घणा अंशो तेमना परमपूज्य शिष्य वर्गना हृदयोमां उतर्यां छे पोताना गुरुनुं यथाशक्ति अनुकरण करवाने ते शिष्यवर्ग त्रिकरण शुद्धिथी प्रवर्ते छे. महात्माओने पोतानी धार्मिकता अने विद्या साथे जे एकता होय छे, अने जे स्वार्पण तथा अर्हंताभाव होय छे, ते तेमना शिष्यवर्गमां प्रत्यक्ष मूर्त्तिमान् जोवामां आवे छे. तेउ परम सात्विक होइ सर्वने तेवांज देखे छे अने तेवांज करवाने इच्छे छे. जैन सिद्धांतनी जेम तेमने गुरु सिद्धांतनी उपर

अनन्य प्रेम छे, अने तेमनुं जीवन गुरु भक्तिमय छे. आवा केटलाएक शिष्य वर्गना गुणोने लइने ते स्वर्गवासी पूज्यपादना लेखनी आवृत्ति करवानो आ समय आव्यो छे. अने तेमना उपदेश द्वारा लोकोमां तेनो प्रसार करवानी पण उत्तम तक मली छे.

आ ग्रंथ प्रथम आ शहेरना रहेनार मरहुम गुरुराजना परम भक्तोनी बनेली श्री जैन हितेच्छु सभाए बहार पाडेलो हतो जेनी एक पण कोपी हालमां नहीं मलवाथी मरहुम गुरुराजना परिवार मंडलनी आज्ञा थवाथी अने ते सभाना आगेवान सभासदोनी परवानगीथी आ बीजी आवृत्ति सुधारा साथे अमोए बहार पाडेली छे.

आ बीजी आवृत्तिमां जुदा जुदा विषयोना भाग पाडी अने जे जे वैदिक प्रमाणो अर्थ रहित हतां तेमना अर्थ दर्शावी ग्रंथना स्वरूपने शोभाव्युं छे. ते साथे वाचकोने सुगमता थवाने विषयोनी अनुक्रमणिका पण आपी छे.

आ ग्रंथ आद्यंत तपासी आपवामां एक विद्वान् मुनि महाराजाए जे श्रम लीधो छे तेने माटे आ सभा अंतःकरणथी आभार माने छे.

ग्रंथनी शुद्धता अने निर्दोषता करवामां सावधानी राख्या छतां कदि कोइ स्थले दृष्टिदोषथी के प्रमादथी स्खलना थइ होय तो तेने माटे मिथ्या दुष्कृत छे.

संवत १९६९.
ज्येष्ठ कृष्ण ८. } श्री आत्मानंद सभा.

विषयानुक्रमणिका.

प्रथम खंड.

२३ उदयोंके आद्य अरुअंत युगप्रधानोका यंत्र·

	आद्यसूरि नामानि उदयस्य.	गृहवास	व्रतपर्याय	युगप्रधान काल.	सर्वायुः		नेवीसउदयोंके अंतके युगप्र-धानोंके नाम	गृहवास	व्रतपर्याय	युगप्रधान काल	सर्वायुः
१	सुधर्म	५०	४२	८	१००	१	दुर्वलिकापुष्पमित्र	१७	३०	१३	६०
२	वयर	९	११६	३	१२८	२	अरहमित्र	२०	१६	२५	६१
३	पाडिवय	९	८२	९	१००	३	वैशाख	२५	१०	१९	५४
४	हरिस्सह	९	६०	१३	८२	४	सत्कीर्ति	१६	२२	१८	५६
५	नंदिमित्र	१३	३०	२४	६७	५	थावरसुत	१३	२०	१७	५०
६	सूरसेन	१३	४०	१०	६३	६	रहसुत	१३	२८	१३	५४
७	रविमित्र	१३	४०	१०	६३	७	जयमंगल	१५	२०	१३	४८
८	श्रीप्रभ	१३	४२	८	६३	८	सिद्धार्थ	१५	२०	१३	४८
९	मणिरति	१३	४२	८	६३	९	ईशान	१५	३०	१०	५५
१०	यशोमित्र	१४	४१	८	६३	१०	रथमित्र	२२	१० २०	८	४० ५०
११	धणसिंह	१४	४०	१०	६४	११	भरणिमित्र	१०	२०	२०	५०
१२	रात्रमित्र	१४	४०	१२	६६	१२	दृढमित्र	१४	१५	२६	५५
१३	धम्मिल्ल	२०	३०	१२	६२	१३	सगतिमित्र	१२	१५	२२	४९
१४	विजयानंद	१२	३०	१४	५६	१४	श्रीधरसुत	१८	१०	१८	४६
१५	सुमंगल	१२	२०	२४	५६	१५	मागधसुत	१३	११	९	३३
१६	जयदेव	१२	२०	१८	५०	१६	अमरसुत	१५	२४	१३	५२
१७	धर्मसिंह	१२	२०	१८	५०	१७	रेवतिमित्र	२२	१९	१८	५९
१८	सुरदिन्न	१७	२७	१०	५४	१८	कीर्तिमित्र	२०	१०	१०	४०
१९	वैशाख	१०	२०	२०	५०	१९	सिंहमित्र	२०	१४	६	४०
२०	कौडिन्न	१०	२१	१९	५०	२०	फल्गुमित्र	१३	१०	७	३०
२१	माथुर	१०	२५	१५	५०	२१	कल्याणमित्र	८	१६	१४	३८
२२	वणिपुत्त	१०	२०	१७	४७	२२	देवमित्र	१२	१२	१२	३६
२३	श्रीदत्त	१०	१५	२५	५०	२३	दुप्पसहसूरि	१२	४	४	२०

प्रथम अरु द्वितीय उदयका युगप्रधानोका यंत्र.

	प्रथमोदय युगप्रधान २०	गृहवास	व्रतपर्याय	युगप्रधान	सर्वायु	मास	दिन
१	सुधर्म	५०	४२	८	१००	३	३
२	जंबू	१६	२०	४४	८०	५	५
३	प्रभव	३०	४४	११	८५	२	२
४	शय्यंभव	२८	११	२३	६२	३	३
५	यशोभद्र	२२	१४	५०	८६	४	४
६	संभूतिविजय	४२	४०	८	९०	५	५
७	भद्रबाहु	४५	१७	१४	७६	७	७
८	स्थूलभद्र	३०	२४	४५	९९	५	५
९	महागिरि	३०	४०	३०	१००	५	५
१०	सुहस्ति	३०	२४	४६	१००	६	६
११	गुणसुंदर सूरि	२४	३२	४४	१००	२	२
१२	स्थविकाचार्य	२०	३५	४१	९६	१	१
१३	स्कंदिल	१२ २२	५८ ४८	३८ ३६	१०८ १०६	५	५
१४	रेवतमित्र	१४	४८	३६	९८	५	५
१५	धर्मसूरि	१८ १४	४० ४४	४४	१०२	५	५
१६	भद्रगुप्त	२१	४५	३९	१०५	४	४
१७	श्रीगुप्त	३५	५०	१५	१००	७	७
१८	वज्रस्वामी	८	४४	३६	८८	७	७
१९	आर्यरक्षित	२२	४०	१३	७५	७	७
२०	दुर्बलिका पुष्पमित्र	१७	३०	१३	६०	७	७

२	द्वितीयोदय युगप्रधान २३	गृहवास	व्रतपर्याय	युगप्रधान	सर्वायु	मास	दिन
१	वयर	९	११६	३	१२८	३	३
२	नागहस्ति	१९	२८	६९	११६	५	५
३	रेवतमित्र	२०	३०	५९	१०९	२	२
४	सिंहसूरि	१८	२०	७८	११४	३	३
५	नागार्जुन	१४	१९	७८	१११	५	५
६	भूतिदिन्न	१८	२२	७९	११९	४	४
७	कालिकाचार्य	२२	६०	११	८३	७	७
८	सत्यमित्र	१०	३०	७	४७	५	५
९	हारिल	२७	३१	५४	११२	५	५
१०	जिनभद्र गणिक्षमाश्रमण	१४	३०	६०	१०४	६	६
११	उमास्वाति वाचक	२०	१५	७५	११०	२	२
१२	पुष्यमित्र	८	३०	६०	९८	०	०
१३	संभूति	१०	१९	४९	७८	२	२
१४	संभूतिगुप्त	१०	३०	६०	१००	५	५
१५	धर्मरक्षित	१५	२०	४०	७५	४	४
१६	ज्येष्ठांगगणि	१२	१८	७१	१०१	३	३
१७	फल्गुमित्र	१४	१२	४९	७६	७	७
१८	धर्मघोष	८	१५	७८	१०१	७	७
१९	विनयमित्र	१०	१९	८६	११५	७	७
२०	शीलमित्र	११	२०	७९	११०	७	७
२१	रेवतसूरि	९	१६	७८	१०३	०	०
२२	सुमिणमित्र	१२	१८	७८	१०८	०	०
२३	अरिहदत्त	२०	१६	५०	८६	०	०

॥ श्री ॥

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

अज्ञानतिमिरभास्कर.

स्रग्धरावृत्तम् ।

अर्हंतो विश्ववंद्या विबुधपरिवृढैः सेव्यमानांघ्रिपद्माः
सिद्धा लोकांतभागे परमसुखघनाः सिद्धिसौधे निषण्णाः।
पंचाचारप्रगल्भाः सुगुणगणधराः शास्त्रदाः पाठकाश्च
सद्धर्म्मध्यानलीनाः प्रवरमुनिवराः शश्वदेते श्रिये स्युः ॥ १ ॥

अनुष्टुप्वृत्तम् ।

तत्वज्ञाने मनुष्याणामवगाहनसिद्धये ।
भाषायां क्रियते ग्रंथो बोधपादपबीजकः ॥ २ ॥
अज्ञानतिमिरौघेन व्याप्तं हि निखिलं जगत् ।
तन्निरासाय ग्रंथोयं द्वितीयो भास्करो भुवि ॥ ३ ॥

विदित होके इस समयमें इस आर्य खंडमे बहुतसें मत मतांतर प्रचलित हो रहेहै. एक जैनमतके शिवाय जितने हिंदुओ के मतवाले है वे सर्व वेदको मानते है क्योंकि ब्राह्मण लोगोंके बनाये वाडेसें कोईभी बाहिर नही निकल सकता है. यद्यपि गौतम, कपिल, पतंजलि, कणाद, कबीर, नानकसाहिब, दादुजी, गरीबदास प्रमुख मताध्यक्षोनें वेदोंसें अलग अपने मतके पुस्तक संस्कृत प्राकृत भाषामें बनाये है तोभी तिनकी संप्रदायवाले दस वीसादि वर्षतक अपने मतके पुस्तको वांचकर इधर उधर फिर फिराके अंतमें फिर वेदोंहिका शरण लेलेते है. जैसे नानकसाहिबके पंथके उदासी साधु इसकालमें वेदांतिक हो गये है तथा गुरुगोविंद-

सिंहके पंथके बहुते निर्मले साधुओ गुरुका वेष कछकरद चकरी केश प्रमुख छोडके धातुरंगे वस्त्र कमंमलु प्रमुख वेष अन्यमतके साधुयोंका चिन्ह धारण करते है, और अपने गुरुका ग्रंथ गेडके वेदांत मानते है. ऐसेंही दाडुपंथी निश्चलदास दाडुजीका बनाया ग्रंथ गेरुके वेदांतिक बन गया. और दाडुजीके चेले सुंदरदासनें सांख्य मत माना है. तथा गरीबदासीयन्नी अद्वैत ब्रह्मवादी परमहंस बने फिरतेहै. यह तो हम जानते है कि जिसकों अपने घरमें टुकमा खानेकों नही मिलता वोही डुसरे घर मांगने जाता है, परंतु अपने घरके मालिककी हर्जो होतीहै. इस लिखनेका प्रयोजन तो इतनाही है कि वेदांतियोंके पुस्तकतो उनोंके गुरुयोंके समयमेंन्नी विद्यमान थे तो फिर नविन पुस्तक बनानेकी क्या जरुरथी. बिचारे क्या करे, जे कर वेदोंको न मानेतो ब्राह्मण लोग झटपट उनकों नास्तिकमती बनादेवें. फिरतो उनकी महिमान्नक्ति बंध हो जावे क्योंकिं वेदोंके असल मालिक ब्राह्मण है. जे करतो ब्राह्मणोंके अनुयायी रहें और ब्राह्मणोकी किसी आजीविकाका न्नंग न करे तबतो ठीक बने रहेंगे, नहींतो ब्राह्मण बल पाकर उन साधुयोंकों राजाओंके राज्यसें बाहिर निकलवा देवें बौधमतवत्. और उनके बनायें पुस्तकोंकों पानिमें गलवा देवें जैसे दक्षिणमें तुकाराम साधुके पुस्तक रामेश्वरन्नट्टनें न्नीमानदीमें डुबवादीए क्योंकि तुकाराम साधु न्नक्तिमार्गका उपदेशक था. उसके बनाए पुस्तकोंमें यज्ञोकी और ब्राह्मणोंकी निंदा लिखी है. इसी वास्ते जो कोई बाबा न्नक्त नवीन पंथ निकालता है, वोतो अपने हठसें अपनें निकाले मतका पूरा निर्वाह करता है, परंतु उसके चेलोंकी दाल ब्राह्मण नही गलने देते है. इसी वास्ते जो नवीन पंथ निकलता है वो अंतमे वेद और ब्राह्मणोंकी चरणशरण जा गिरता है. ये अंग्रेजी राज्यही का माहात्म्य है जो वैरागी न्नंमारा करके वैरागीयोंकों जिमावें और

सिख लोग गुरूके सिखांको जिमावे. अखाडेके साधु मंदिरोंके साधुयोंकों जिमावेंहैं और ब्राह्मण बिचारे खाली बैठे मुख उपरसें मक्षीयां उडावे; जब सर्वमतांवाले अंतमें वेदस्मृति पुराणादिकोंकों मानतें हैं. तो फिर नवीन ग्रंथ बनाना और पंथ निकालनेका क्या प्रयोजन है. यहतो नवीन पुस्तक और पंथ निकालनेसें हिंदुस्तानीयोंका फजीता करणा है, क्योंकि बहुत पंथोंके न्यारे न्यारे पुस्तक देखके लोकोंकी धर्मसें श्रद्धा भ्रष्ट हो जाती है. वे कहते हैं—हम किसको सच्चा और किसको जूठा माने. यहभी बात याद रखनी चाहिये कि जब ब्राह्मणोंका जोर हुआथा तब वेदोंके न माननेसें बौधमत वालोंके बच्चोंसे लेकर वृद्धतक हिमालयसें लेकर सेतुबंधरामेश्वर तक कतल करवाये. ये बात माधवाचार्य अपने बनाये शंकरदिग्विजयमें लिखता है. "आसेतोरातुषाराद्रेर्बौद्धानां वृद्धबालकान् न हंति यः स हंतव्यो भृत्य इत्यवशं नृपैः ॥" "सेतुबंधरामेश्वरसें हिमालयपर्यंत बौद्ध लोकोका आ बालवृद्धकुं जे पुरुष मारता नहीं है, सो पुरुष राजा लोकोकुं हंतव्य है." हम धन्य वाद देते है, अंग्रेजी राजको जिनके राजतेजसें सिंह बकरी एक घाट पानी पीते हैं. मकदूर नही किसी मतवालेका जो किसी धर्मवालेकों गर्म आंखसें देख शके.

आस्तिक और नास्तिक मतका विचार.

एक और बात बहुत आश्चर्यकी है कि हमने कितनेक पुस्तकोंमें तथा ब्राह्मणोंके मुखसें सुना है कि जैनमत नास्तिक है. यह कहना और लिखना सत्यहै वा असत्य है? हमारी समजमेंतो यह कहना और लिखना जूठ है. क्योंकि जो कोई नरक, स्वर्ग, पापपुण्य ईश्वरकों तथा पूर्वोत्तर भवानुयायी अविनाशी आत्माकों नही मानते है वे नास्तिक है तथा जिस शास्त्रमें जीवहिंसा, मांसभक्षण, मदिरापान, परस्त्रीगमन करनेंसे पुण्य, धर्म, स्वर्ग मोक्षका फल लिखा है तिन शास्त्रोंके

बनाने और माननेवाले नास्तिक है. जैनमतमेंतो ऊपर लिखे नास्तिक मतके लक्षणोंमेंसें एकन्नी नही है तो फेर जैनमतकों नास्तिक कहना जूठ है. साहिब तुम नही जानते नास्तिक ऊसकों कहते है, जो वेदोकों न माने. जैन बौध वेदोकों नही मानते है, इस वास्ते नास्तिक कहे जाते है. यह कहना मूर्खोका है, अप्रमाणिक होनेसें. क्योंकि किसी मूर्खनें सुवर्णको पीतल कह दीया तो क्या सुवर्ण पीतल हो जावेगा ? ऐसेंतो सर्व मतांवाले कह देवेंगे हमारे मतके शास्त्रकों जो न माने सो नास्तिक है, जैनी, करानी, मुसलमान ये सर्व कह देवेंगे हमारे द्वादशांग, अंजील, कुरानको जो न माने वो नास्तिक है. तथा कुरानी, मुसलमान, यहुदी प्रमुख सर्व नास्तिक ठहरे क्योंकि वे वेदको नहीं मानते है. इस वास्ते न्यायसंपन्न पुरुषोंकों विचार करना चाहिये जो मांस मदिराके खाने पीने वाले और ठगबाजीसें लोगोंका ठगने वाले, डुराचारी, ब्रह्मवर्जित, लोगोंका मरण चिंतनेवाले, छल दंज्नसें लोगोंकी चडी हानीयोंके फोडने वाले, असत्यज्नाषी, व्रतप्रत्याख्यानसें रहित, महालोज्नी, स्वार्थतत्पर, लोगोंकों ब्रम अंध कूपमें गेरनेवाले, दयादान परोपकारवर्जित, अज्निमानी, सत्साधुयोंके द्वेषी मत्सरी, परगुण असहनशील, अज्ञान, मूढ पंथके चलाने वाला, परवस्तुके अज्निलाषी, परस्त्रीगामी, हठकदाग्रही, सत्शास्त्रके वैरी इत्यादि अनेक अवगुण करके संयुक्त जो है वे प्रत्यक्ष राक्षस और नास्तिक है और जो दयादानवान्, मद्य मांसके त्यागी, परमेश्वरकी ज्नक्तिपूजा करनेवाले, करुणाईन्हृदय, संसारके विषयज्नोगोंसें ऊदासीन अष्टादश दूषणकरी रहित ऐसे परम ईश्वरके ऊपासक इत्यादि अनेक शुज्नगुणालंकृत होवें वे आस्तिक है. अब बुद्धिमान आपही विचार लेंगे आस्तिक कौन है और नास्तिक कौन है. अपने बोर मिठे औरोंके खट्टे यहतो सर्व मतांवाले कहते है. परंतु य-

अर्थ सच्चे मोक्षमार्गका निर्णय करना बहुत कठिन है. क्योंकि जो जो मतग्राही है वे सर्व अपने अपने ग्रहण करे मतोंकों सच्चे मानते है. उनकों किसीमतके शास्त्रका स्वाद नही और जो प्रेक्षावान है और सत्यके ग्राहक है उनही वास्ते यह ग्रंथ है. क्योंकि पक्षपात करि रहितही पुरुषोको शुद्ध धर्मकी प्राप्ति होती है.

इस ग्रंथका प्रयोजन. इस ग्रंथके लिखनेकातो प्रयोजन इतनाही है कि वर्त्तमान समयमें इस आर्यखंडमें हिंडुयोंके जो मत चल रहे हैं तिनमेंसें जैन बौध वर्जके सर्व मतांवाले वेदोंकों सच्चा शास्त्र मानते है. परंतु वेदोंमें क्या लिखा है औरकिसकिस प्रकारके कैसे कैसे देवतायोंकी ज्ञक्ति पूजा यज्ञादिक लिखे है औरवेद किसके बनाये है और किस समयमें बने है यह बात बहुत लोक नही जानते तिनकों पूर्वोक्त सर्व मालुम हो जावेगा और जैनीयोंका क्या मत है यहज्ञी मालुम हो जावेगा. वेदके पुस्तक वर्त्तमान संस्कृत ज्ञापासें कुछक विलक्षण संस्कृतमें है. इस वास्ते पौराणिक पंडितोंसे वेदांका यथार्थ अर्थ नही होता है. सायनाचार्यादि जो ज्ञाष्यकार हो गये है तिनके करे ज्ञाष्य जब हाथमें लेकर वांचीएतो वेदांका अर्थ प्रतीत होते है.

वेद विरुद्ध मतोंका प्रदर्शन. वेदके प्रत्येक वाक्यकी मंत्र ऐसी संज्ञा है. वेद बहुत कालके बने हुए है परंतु कपिल, गौतम, पतंजलि, कणादादिकोंनें जो वेदांको छोडके नवीन सूत्र बनाये है तिसका कारणतो ऐसा मालुम होता है कि वेदकी प्रक्रिया अछी नहीं लगी होगी नहींतो वेदोंसे विरुद्ध कथन वे अपने ग्रंथोमें क्यों लिखते. क्योंकि वेदोमेंतो यज्ञादिक कर्मसें स्वर्गप्राप्ति लिखी है. और उपनिषद् ज्ञागमें अद्वैतब्रह्मके जाननेसें मुक्ति कही है, और प्रज्ञानानंदब्रह्मका स्वरूप लीखा है. और सांख्यमत वाले यज्ञादिकोंकों नहीं मानते है. मानना तो दूर रहा यज्ञमें पशुवधकों ब-

हुत बुरा काम करते है और प्रकृति पुरुषवादि होनेसें अद्वैतके विरोधी है. और गौतम अपने सूत्रोंमें मुक्तिका होना ऐसें लिखता है, तथाच गौतमका प्रथम सूत्र ॥

" प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टांतसिद्धांतावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितंडाहेत्वाभासछलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः " ॥ १ ॥ " प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह अने स्थान,—ए सोलांपदार्थका तत्वज्ञानसें मोक्षकी प्राप्ति होती है. "

इस सूत्रका तात्पर्यार्थ यह है कि सोला पदार्थके जाननेसें मुक्ति होती है. मुक्तिमें आत्मा ज्ञानसें शून्य हो जाता है और दंतकथामें यह भी सुननेमें आया है की गौतमनें न्यायसूत्र वेदोंदिके खंडन करने वास्ते रचे है.

वेदमें गौतमादि मतोका खंडन.

और उपनिषद्की भाष्य टीकामें कपिल, गौतमादिके मतोंका खंडनभी लिखा है. इस्सें यह सिद्ध हुआकि कपिल, गौतमादिकोंको वेदोंकी प्रक्रिया अछी नही लगी. तब उनोंने विलक्षण प्रक्रिया रची.

वेद परस्त ब्राह्मणोकी भिन्न भिन्न संज्ञा.

हाल जो ब्राह्मण वेदपाठ मुखसें पढते है वे वेदीया कहे जाते है. और जो यज्ञादिक जानते है तिनको श्रोत्रिय कहते है. और जो गृहस्थके घरमें उपनयन, विवाह इत्यादि संस्कार करते हैं तिनको याज्ञिक अथवा शुक्ल कहते है.जो श्रोताग्निकी सेवा करते हैं तिनको अग्निहोत्री कहते है. और जिनने यज्ञ करा होवे तिसको दीक्षित कहते है. एक शास्त्रके पढे शास्त्री और सर्व शास्त्रोंके पढेको पंडित कहते है, इत्यादि अनेक तरेके ब्राह्मणोंके नाम है. वेदमें मुख्यधर्म यज्ञका करणा बतलाया

है. वेद मंत्रका विनियोग यज्ञार्थे होता है. और प्राचिन कालमें ब्राह्मण और क्षत्रियोंनें अनेक तरेके यज्ञ करेथे तब देव तुष्टमान होकर मनमाना वर देते थे.

वेदमें देवताकी संतुष्टि.

यह कथन गीतामें लिखा है: ॥ "सह यज्ञाः प्रजाः सृष्टवा पुरोवाच प्रजापतिः अनेन प्रसविष्यध्वमे-षवोस्त्विष्टकामधुक् ॥ देवान्भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः । पर-स्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः क-र्मसमुद्भवः कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं ॥ यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्बिषैः" ॥

अर्थ—पूर्वं ब्रह्मानें यज्ञका अधिकारी ब्राह्मणादि प्रजाकुं यज्ञ करनेकी क्रिया बताइ और कहाकी. यज्ञक्रिया तुम करो जो तुम वांछोगे सो तुमको मीलेगा. आ यज्ञोवडे तुम देवोकी वृद्धि करो. पीछे यज्ञ करनेसें आ देवताओ तुमारी वृद्धि करे. ओ रीतिसें पर-स्पर वृद्धि करनेवाला तुमे और देवता उभय इष्ट वस्तु संपादन करों गा. यज्ञ करनेसें वर्षा होवे, कर्मोसें यज्ञ होवे वेदोसें कर्म होवे और वेद अक्षर ब्रह्म परमात्मासें उत्पन्न भया है.

इसतरें मनुष्यकों उपदेश कहा. इस कालमें अनेक स्वछंदा-चारी स्वकपोलकल्पित पंथ चलाने वाले स्वकपोलकल्पित अर्थ बनाके वेदकी हिंसा छिपाने वास्ते मनमानी कल्पना करके मू-र्ख जनोंकों भ्रम अंधकूपमें गेरते है. उनका जो यह कहते है कि वेदोंमें हिंसाका उपदेश नहीं, सो जूठ है.

वेदमें हिंसाका उपदेश है.

क्योंकी भागवतमें लीखा है कि प्राचिनवर्हि राजाने बहुत यज्ञ करके बहुत जिवांकी हिंसा करी. पिछली वेर नारदजीनें उपदेश देके हिंसकयज्ञ छोडवाया प्राचीन भरत राजाने ५५ पंचावन अश्वमेध यज्ञ करे. रामचंद्र पांडवाने अश्वमेध

करा, भारतादि ग्रंथोमें लिखा है. तथा जेपुरमें राजा सवाई जयसिंहने अश्वमेध करा, ए दंतकथा प्रसिद्ध है. तथा भरुचमें बलिराजाने दश अश्वमेध यज्ञ करे उस जगें अब लोग स्नान करते है तिसको दश अश्वमेध क्षेत्र कहते है. इसी तरें उत्कंठ महादेवके पास जाबालि ऋषिने यज्ञ कराया तिस जगाका नाम खेरनाथ कहते है, और तिस जगासें भस्म निकलती है. इसी तरें हिंदुस्तानमें हजारों जगें यज्ञ हुए है. ए वैदिकी हिंसा क्योंकर छिप शक्ति है ? वैदिक यज्ञमें बहुत हिंसा करनी पमती है, इसबातमें कुछभी शंका नही.

जैन धर्मकी प्रबलतामें वेदकी हिंसा हठ गइ.

जिस जिस कालमें जैन धर्मकी प्रबलता होती रही है तिस तिस कालमें वैदिक हिंसा बंद होती गई है और जो जो स्मृति वगैरे शास्त्रोंमें जो कहीं कहीं दयाका विशेष कथन है सो सो दयाधर्मकी प्रबलतासें ऋषियोंनेभी जगतानुसार दयाधर्महीकी महिमा लिखी है. वास्तवमें तो ऋषियोंका यज्ञ याजन करना हि धर्मथा. इस कालसें २४०० सो वर्ष पहिलां जब जैन दयाधर्मीयोंका जोर वढा तब वैदिकधर्म बहुत लुप्त हो गयाथा. केवल काशी, कनोज, कुरुक्षेत्र, काश्मिरादि स्थानोमें किंचित्मात्र वैदिकधर्म रह गयाथा बाकी सर्वजगें जैन जैन बौधधर्मही फेल रहाथा. पीछे फेर ब्राह्मणोंनें कमर बांधके राजायोंकी मदतसें बौधोंको मारपीटके इस देशसें निकालदिया परंतु जैन धर्मको ब्राह्मण दूर न कर सके. और देशोंकी अपेक्षा मारवाम, गुजरात, मेवाम, मालवा, दिल्ली, जैपुरके जिल्लेमें अबभी जैनमतके माननेवाले लोग बहुत है. इसवास्ते इन देशोमें ब्राह्मणभी दयाधर्ममें चलतेहै. यज्ञभी नहीं करतेहै. और देशोमें अबभी यज्ञ होतेहै और श्रोत्रिय ब्राह्मणभी बहुत है.

वेदोंका विभाग

वेद जन्ममूलमें एक नहीथा अनेक ऋषियो पास अनेक मंत्र थे. वे सर्व मंत्र व्यासजीने एकट्ठे करे

तिनोंके चार नाम रक्खे. जौनसे छंद रूप वाक्यथे तिनकों जुदे निकालके तिनमें अनेक देवतायोंकी प्रार्थना है. तिसका नाम ऋग्वेद रक्खा. इस वेदमें जिन देवतायोंकी प्रार्थना है वे देवता पुराणके रामकृष्णादि देवतायोंसे जुदे है. इस वेदमें अग्नि, वायु, सूर्य, रुद्र, विष्णु, इंद्र, वरुण, सोम, नक्त, पुषा इत्यादि देवते गिणे है.

वेदकी भिन्न भिन्न संज्ञा.

इनकी प्रार्थना वेदमंत्रसें करीहै. जो गायन करनेके मंत्र थे तिसका नाम सामवेद रक्खा. और जिसमें यज्ञ क्रिया बतलाइ है तिसका नाम यजुर्वेद रक्खा. यजमान अर्थात् यज्ञ करनेवाला, पुरोहित अर्थात् मददगार, और चौथा वेद अथर्वण. इसमें अरिष्टशांति इत्यादि लिखाहै. चारवेद अर्थात् संहिता और ब्राह्मण ये वेदहै.

वेदोंकी उत्पत्तिका विविध विचार.

कोई इनकों अनादि कहता है. कोई कहताहै ब्रह्माके मुखसें प्रगट हुए अर्थात् ब्रह्मका मुख ब्राह्मण, ये वेद है तिनमेंसें वेद निकलेहै. जिस जिस कालमें दयाधर्मीयोंका अधिक जोर होता रहा तिस तिस कालमें उपनिषद् भाग ऋषि बनाते रहे उनमें निवृत्ति मार्गकी प्रशंसा लिखी और वैदिक यज्ञकी निंदा, तथाच मुंडकोपनीषत् "इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्टं नान्यच्छ्रेयो वेदयंते प्रमूढाः । नाकस्य पृष्टे सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं चाविशन्ति" ॥ १० ॥

उपनिषद्.

भाष्यं ॥ इष्टा पूर्त्तन् इष्टं यागादि श्रौतं कर्म पूर्त्तं वापीकूपतडागादि स्मार्त्तं । इत्यादि । भावार्थः—" इष्टापूर्त्त ए शब्दका अर्थ ऐसाहै. यागादि श्रौत कर्मकुं इष्ट कहेतेहै. वापी, कुआ और तलाव बनाना ओ पूर्त्त कहेतेहै. जो कोइ मूढ लोको ए इष्टापूर्त्त—यज्ञादिक वैदिक कर्मकोही अछा जानता है. दुसरा श्रेय-कल्याण नहीं जानता है. वे स्वर्गमें सुकृत कर्मका फल भोग के

अति हीन लोक अर्थात् नरक तिर्यंच गतिको प्राप्त होताहै " १०

ऋषियोंका मांसाहार.

प्राचीन कालमें जे ब्राह्मणथे तिनकों ऋषि कहते थे. कितनेकका नाम महर्षि, देवर्षि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि ऐसे ऐसे जूदे जूदे नामथे, ये सर्व ऋषि अनेक प्रकारके जानवरोंका मांस खातेथे, ये बात इनके बनाये ग्रंथोसें मालुम होतीहै. वर्त्तमानमें म्लेच्छ यवन प्रमुख मांस खातेहै, परंतु पूर्वले ऋषि इनसेंभी अधिक मांसाहारी थे, क्योंकि इसकालमें हाल फ्रान्स देशमें घोमेके मांस खानेका प्रचार हो गयाहै परंतु अश्वमेध यज्ञकुं ऋषि हजारों वर्षसें करते आयेहै.

वैदिक यज्ञका विच्छेद.

इस्सें यह मालुम होता है कि ऋषिमंमलमें घोमे खानेका बहुत प्रचार था. जब श्रीमहावीरभगवंत हुआ और उनोंने गौतमादि अग्निहोत्रि दीक्षित याज्ञिकादि ४४०० चौतालीसो ब्राह्मणोंकों दीक्षा मध्यपापा नगरीमें दीनी. पीछे गौतमादि मुनियोंनें तथा बौद्धोंने दयाधर्मका अधिक प्रचार करा और सात्विकमार्गकी वृद्धि भइ, तब कर्मकांम अर्थात् वैदिकयज्ञधर्म छिप गया. बहुत ब्राह्मण जैन वा बौद्धमत धारी होगये, तब कितनेक ब्राह्मणोंनें वैदिक हिंसाके छिपाने वास्ते कितनीक मिथ्या कल्पना बनाके खमी करी. कोइक जगें लिख दीया "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति," अर्थ–वेदोंनें जो हिंसा कहीहै सो हिंसा नहीहै. भागवत स्कंध ११ अध्याय ५ श्लोक ११. "यत्घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा." टीका "देवतोद्देशेन यत्पशुहननं तदालंभनं " भावार्थ–मदिराका आघ्राण करनां सो मदिराका भक्षण है. देवताकुं उद्देशी जे पशुकी हिंसा वो आलंभन बोलताहै.

वेदकी हिंसाये छिपाने यत्न.

कोइ कहते हैं पूर्वले ऋषि जानवरोंकों मारके फिर जीता कर देतेथे. उनकों यह सामर्थ्यथा,

हमकों नही. इस वास्ते हमकों जीवहिंसा न करनी चाहिये. कोइ कहतेहै वेदमें हिंसा नहीं, जो हिंसाका अर्थ करतेहै तिनकी भूल है. कोइ कहतेहैं मनुष्यकों मांस खानेकी इछा होवे तो यज्ञ करके खावे इस वास्ते ये विधि नहीं, संकोच है. कोइ कहतेहै वेदिकी हिंसा पूर्वले जुगोंके वास्ते थी, कलिके वास्तें नहीं. अब शोच विचारके देखीये तो पूर्वोक्त सर्व कल्पनामेंसें एकभी सच्ची नहीं. क्योंकि पूर्वलें ऋषि जीव मारके फिर जीता कर देतेथे इस कहनेमें कोइभी प्रमाण नहीं १. जो कहतेहै वेदमें हिंसा नहीं तिनोंने वेद पढेही नहीं है २. वेदवचनमें जो संकोच कहतेहै सोभी जूठ है क्योंकि अनुस्तरणी इत्यादि अनुष्ठानोंमें मांसतो नहीं खातेहै. तो फेर गौ प्रमुखकी हिंसा किस वास्ते लिखीहै. जो काम्य कामके वास्ते हिंसा है सोभी ईश्वरोक्त वचन नहीं. पांचमा विकल्पभी मिथ्याहै क्योंकि जीस युगमें हिंसा होतीथी तिसकों कलि कहना चाहिये कि जिस युगमें महादयाका प्रकाश हुआ तिसका नाम कलि कहना चाहिये? यह बमा आश्चर्य है. इस वास्ते पूर्वोक्त सर्वकल्पना मिथ्याहै. सच्ची बाततो यह है कि जबसें जैन बोद्धनें हिंसाकी बहुत निंदा करी और जगतमें दयाधर्मकी प्रबलता हुइ तबसें ब्राह्मणोंनें हिंसकशास्त्रोंके छिपाने वास्ते अनेक कल्पित युक्तियां लिखी.

शांकर भाष्यकी रचनाका हेतु. " जब बौद्ध ब्राह्मणोंनें कतल करवाए और जैनमत थोमे देशोंमें रह गयाथा तब संवत् ६०० वा ७०० के लगभग शंकरस्वामी हुए, तिनोंने विचारा कि जैनबौद्धमत मानके लोगोंको वैदिक धर्म अर्थात् यज्ञयागमें गौवध प्रमुख जीव हिंसा करनी बहुत मुशकिल है. वैदिक धर्मउपर निश्चय लाना कठिन है. इस लिये समयानुसार ऐसे भाष्य बनाए. और ग्रंथ रचे कि जिन पर सबका चित्त आजावे.

दयाधर्मका प्रचारसें हिंसाका प्रतिबंध.

और जैनबौद्धमतसें वैदिक होना बहुत बुरा न लगे. तात्पर्य कि घोडे, आदमी, गौ, बलद, भैंस, बकरी, भेडादिकके होमनेकी जगें घृत, दूध, पायस और पिष्टपशु चढाने लगे, और शंकर स्वामीके चेलोंनें गवाही देदी, जो कुछ पहिले पुस्तकोंमें लिखाहै वे सत्ययुगादि युगोंके वास्ते था. अब कलिकालके लीये नयाही धर्म रचा गयाहै. कुछ नवीनोंमें पुराणे पुस्तक मिलाए गए. कुछक पुरानोंमें नवीन सामिल कियेगये ग्रंथभी शंकर स्वामीके समयमें पुराणोंके नामसें बहुतरें नयेनये बनगये. परं शंकरस्वामी जवान ही मरगए, ३२ वर्ष जीवके.

शंकरस्वामी शाक्त वाममार्गी था.

आगमप्रकाश ग्रंथका करनेंवाला लिखता है कि शंकरस्वामी असलमें शाक्त अर्थात् वाममार्गी था. क्योंकि आनंदगिरिकृत शंकरदिग्विजयमें लिखाहै कि शंकरस्वामीने श्रीचक्रकी स्थापना करी, और श्रीचक्र वाममार्गीयोंका मुख्यदेव है. शंकरविजयके ६५ में अध्यायमें श्रीचक्रकी बहुत तारीफ लिखीहै. और शंकरस्वामीनें श्रीचक्रकी स्थापना करी. शृंगेरी, द्वारिका वगेरे ठिकाने इनके मठमें श्रीचक्रकी स्थापना है.

पूर्वपक्ष । शंकरस्वामीतो ब्रह्माद्वैत वादी थे उनकों शाक्त लिखना ठीक नहीं.

उत्तर—स्वामीजीतो अपनेकों ब्रह्म और शिवरूप मानते है. तथाच, रुद्रयामले शांकरी पद्धतौ । " प्रज्ञानं ब्रह्म अहंब्रह्मास्मि तत्त्वमसि अयमात्मा ब्रह्म पंचमपात्रं पिवेत." । भावार्थ " प्रज्ञान ब्रह्म है, में ब्रह्म हुं, ते ब्रह्म तुम हो, आ आत्मा ब्रह्म है असे बोलते पंचमपात्रका पान करनां " तथा मनुटीकाकार, कुलकभट्ट तंत्रशास्त्रकोंभी श्रुतिरूप कहता है । " वैदिकी तांत्रिकीचैव द्विविधा श्रुतिः कीर्तिता " ॥ श्रुति दो प्रकारकी है, वैदिकी और तांत्रिकी

इस वास्ते वाममती अद्वैत वादी है. तथा पद्मपुराणमें पाखंडोत्पत्तिके दो अध्याय है तिनमें शिवजीने कहाहै यह वाममार्ग मेंने लोगोंके भ्रष्ट करने वास्ते बनायाहै.

वाममार्ग वास्ते शिवका अभिप्राय.

कदापि यह वचन वैष्णव लोकोंने लिखा होगा तोभी इस्सें यह मालुम पडता है कि श्री महावीरजीसें पीछे यह मत चला होवेगा. नहीं तो इनके लाखों ग्रंथ केसे बन जाते. वाममार्गके चलां पीछे फिर कुमारिलभट्टने पूर्व मीमांसा वैदिक यज्ञ करनेका मत चलाया, तिसमें कितनेक कर्म जिनमें बहुत हिंसाथी तिनकों काम्यकर्म ठहराके रद करा. कितनेक रख लीये, लिखदियाकि इनके करनेंसें मोक्ष होती है.

अद्वैतमतकी स्थापना.

यह पंथ कितनेक दिन चला पीछे शंकरस्वामीनें अद्वैतपंथ चलाया. वेदांत मत और कौलमत बहुत हिस्सोंसें मिल जाता है. क्योंकि कौलमतको राजयोग कहते है,, पतंजलिके शास्त्रकों हठयोग कहते है, वेदांतको ज्ञानयोग कहते है, और गीताके मतकों कर्मयोग कहते है. इन चारो योगोंमें अंतर इतना है कि राजयोगमें भोग भोगके मोक्ष होनेकी इच्छा करते है. हठयोगमें देह दंड, समाधि वगैरेंसें मोक्षकी इच्छा और ज्ञानयोगमें वैराग्यसें मोक्ष, कर्मयोगसें वर्णाश्रमके धर्म करणेंसें मोक्ष.

पाखंडमत वास्ते शिवका अवतार.

पद्मपुराणमें ऐसी कथा है कि पाखंडमतकी वृद्धि करने वास्ते शिवजी अवतार लेंगें. इस कथासें कोई कहता है कि यह कथा वाममतसें संबंध रखती है. और कितनेक वैष्णव कहतेहै के शंकराचार्यसें संबंध रखतीहै. क्योंकि शंकरस्वामीनें आत्माकों ब्रह्म कहा यह बडा पाखंड करा.

शंकराचार्य वास्ते मध्वमतका अभिप्राय

ऐसें मध्व संप्रदायके वैष्णव कहते है, तथा कौल, शाक्त, वाम, अघोरी, औघड और परमहंस संन्या-

सी ए सर्व एक मत वाले है. शंकरस्वामीके पीछे संवत ११०५ में रामानुज उत्पन्न हुए. उनोंने कहाकि शंकरका मत अयौक्तिक और बडा कठिन है.

शंकर स्वामी पीछे भिन्न भिन्न मतोंकी उत्पत्ति.

भूतनाथ महादेव और काली करालीकी पूजाका क्या यह दिन है? सीतारामकों भजो और सहिजसें तरो. रामानुजका मत लोगोंकों अछा लगा. तब त्रिपुंड्रकी जगें तिलक लगाना शरु कीया, लेकिन जलदही संवत १५३५ में वल्लभाचार्यनें जन्म लीया. और राधा कृष्णका रास विलास ऐसा दिखलायाकि उसनें बहुतोंका मन लुभाया.

वल्लभाचार्यका भक्तिमार्ग.

विशेष करके स्त्रीयोंकी भक्ति इसपर अधिक भई. इस कारण उसकी उन्नति बहुत जलद होगई. इनके विना एक भक्तिमार्ग निकला सो इसकालमें चलता है. तिनमें चार संप्रदायके गृहस्थ, त्यागी, बैरागी साधु इत्यादिकोंकों गिणतेहै. हरदास पुराणिक, रामदासि वारकरी ये सर्व भक्ति मार्गवाले जीवहिंसाको बहुत बुरा जानतेहै. दक्षिण देशमें के स्थानोंमें जीवहिंसा भक्तिमार्गवालोंके सबबसें दूर हुईहै.

वैदिकी हिंसा का अस्वीकार

उधर संवत ६०० से उपरांत जैनमार्गकी वृद्धि आमराजा ग्वालियरका, वनराज राजा पट्टनका, सिद्धराज कुमारपाल पट्टनके राजे इत्यादि राजायोंनें तथा विमलचंद, उदयन, वाग्भट, अंबड, वाहड, वस्तुपाल तेजपाल, साचासुलतान, मनुष्य राजायोंके मंत्रीयोंने तथा आबु, झांझण, पेथड, भीम जगडु, धनादि शेठोंनें जैन मतकी वृद्धि बहुत करी, तथा और अनेक पंथ निकले पर वैदिकी हिंसा किसीनेंभी कबुल नहीं करी. इन पू... जैन, वैष्णव, भक्तिवालोंनें हिंसा बहुत जगामें हटादी तोभी अनेक देशोंमें वैदिकी हिंसा चलती है.

है. तिस वास्ते अहमदनगर जील्लेमें बहुत गामोंमें जैनीयोंकी बहुत वस्ती है, इस वास्ते तिहां यज्ञ नहीं होते है. इसी तरे मुंबईमें गुजराती, मारवाडी जैनी और वैष्णवकी वस्ती बहुत है इसवास्ते आजतक मुंबईमें यज्ञ नहीं हुआ और जिस जगें ब्राह्मणोंका बहुत जोर है तहां अबभी यज्ञ होतेहै.

पुनामें वाजपेय यज्ञ. सन १८७२ इस्वीमें पुनामें वाजपेय यज्ञ हुवा था, तिसमें २४ चोवीस बकरे होमे थे. और बडे बडे नामावर गृहस्थ वेदिये, ब्राह्मण, शास्त्री पंडित एकठे हुए थे. धर्मशास्त्रमें लिखा है, यज्ञ करनेंसे देश और भूमि पवित्र होते है. और कोनसें देशमें यज्ञ करना, किस देशमें न करना, तिसका विवरा लिखा है. तिनमें गंगा, यमुनाका कांठा सबसें श्रेष्ट लिखा है. पूर्व कालमें तिस जगे बहुत यज्ञ हुवे है. तिस वास्ते तिन देशांको पुण्यभूमि कहते है. इस लिखनेसें यह सिद्ध हुआ कि वेदाज्ञासें असंख्य पशु यज्ञमें होमके ब्राह्मण खा गए.

एकही शास्त्र सो आधा सचा और आधा जूठा होही नहीं सकता है. फेर अपने आपकोंतो ईश्वरके आडतीये और जैनी दयाधर्मीयोंकों नास्तिक कहते हुए लज्जा क्यों नहिं करते है ? तथा कोइ कहते हैं वेदमें जो निर्हिंसक कथन हम मान लेंगे और हिंसा प्रतिपादक श्रुतियोंकों छोड देंगे यहभी कथन मिथ्या है. एकही शास्त्र सो आधा सचा और आधा जूठा यह होही नहीं सकता है. ईश्वरके कहे शास्त्रमें यह क्योंकर हो सकता है कि अन्नप्राशन, मौंजिबंधन, लग्न, अंत्येष्टि, श्राद्धतर्पण, श्रावणी इत्यादिक कर्म तो अछे, शेष सर्व यज्ञादिक जूठ है. यहतो सर्व सात्विक धर्मकाही प्रभाव है, जो कितनेक लोक जीवदयाधर्मकों जान गये है, अब वो समय फिर आता मालुम नहीं होता; जो सर्व लोग वैदिक हिंसा फिर करनें लग जावे, ऐसातो मालुम होता है कि जेकर अंग्रेजोंहिका

राज रहा और सर्व लोग विद्या पढते रहे तो शेष रही सही वी वैदिक हिंसा बंद हो जावेगी.

कर्मकांड ब्राह्मणोंकी आजीविका है.

जबसें कर्मकांड इक्त देशोंसें उठ गयाहै, तबसें ब्राह्मण लोग बहुत दुःखी हो गये हैं; क्योंकि ब्राह्मण लोगोंकि आजीविका विशेष करके कर्मकांडसेंही होती थी, क्योंकि कोई पुरुष शांतिक पौष्टिक इष्टापूर्तादि करे तो ब्राह्मणकों पैसा मिले सो कर्म लोगोंके जीसें उठता जाता है, क्योंकि बहुते अंग्रेजी फारसी पढने वालेतो ब्राह्मणोंका कहना जूठा मानते है और ब्रह्मसमाजी और दयानंदसरस्वती वगैरे तो ब्राह्मणोंके कर्मकांडकी आजीविकाकी वेडी मोडनेकों फिरतेहै. क्योंकि ब्राह्मणोंने स्वार्थतत्पर होके लोगोंकों ऐसे भ्रमजालमें गेरा है कि लोगोंकों सच जूठकी कुछ खबर नहीं पडती है. जैनोकों जो ब्राह्मण नास्तिक कहतेहै तिसका सच्चा कारण तो यह है, जिस वखत जैन बौद्धोंके धर्मकी प्रबलता भई तिस वखत ब्राह्मण जो इनके विरोधी थे सो इनके साथ लडनें और इनको नास्तिक कहने लगे, क्योंकि इनके कर्मकांडके नष्ट होनेसें इनकी आजीविका बंद हो गईथी. चाहो कोई पंथ निकले परंतु ब्राह्मणोकी आजीविका भंग न करे. तबतो ब्राह्मण उस पंथ वालेकों कुछ नहीं कहतेहै और द्वेषभी नहीं करतेहै.

संन्यासका प्रचार.

प्राचिन कालमें जब अद्वैत मत अर्थात् ज्ञानपंथ निकला तब लोग संन्यासी होने लगे, तब ब्राह्मणोंने तिनके साथ मिलके ऐसि मर्यादा बांधीकि प्रथम कर्म करके पीछेसें सर्व संन्यास लेवे, इस वास्ते अद्वैत वादीयोंके साथ ब्राह्मणोंका झगडा नहीं हुआ. जब भक्ति मार्ग निकला तिनोंने कर्मकांडकी निंदा करी तिनके साथ ब्राह्मणोंका वैर आज तक चला जाता है: परंतु जब ब्राह्मणोंका कर्मकांड ढीला पडा तब ब्राह्-

लोंनें एक और युक्ति आजीविकाकी निकाली सो यह है.

तीर्थोका माहात्म्य सो टंकशाल है. नदी, गाम, तलाव, पर्वत, भूमि इत्यादिक जो वेदोंमें नहीं है तिनके माहात्म्य लिखने लगे, तिनकी कथा जैसी जैसी पुरानी होती गइ तैसी तैसी प्रमाणिक होती गई. और फलभी देने लगी. इसी तरें काशी, प्रयाग, गया, गोदावरी, पुष्कर, जगन्नाथ, श्रीनाथ इत्यादिक हजारों माहात्म्य लिखे, यह टंकशाल अबभी जारी है. पंढरी माहात्म्यकों बनायें लिखें साठ ६० वर्ष हुयेहै; डाकोरके माहात्म्य लिखेंकों १४ चौदह वर्ष हुयेहैं, पावकानल पावागढका माहात्म्य, सिद्धपुरका माहात्म्य दोनों थोडेही वर्षोंसें लिखे गयेहै. इसी तरें जाति जातिका माहात्म्य लिखाहै, जैसे नागरखंड, औदिच्य प्रकाश, रैकपुराण इत्यादि हजारों माहात्म्य प्रसिद्ध है. इन ग्रंथोंके लिखनेवालोंनें बहुत धूर्तता करीहै सो धूर्तता यह है; अब कलियुग आय गया है, लोगोंकी श्रद्धा ब्राह्मणोंके ऊपरसें उठ जायगी. इस वास्ते लोगोंकों गाफल न रहना चाहिये और श्रद्धा न छोडनी चाहिये. छोडेंगे तो नरकमें जावेंगे. कलि बुद्धि बिगाडता है. इत्यादि बहुत धमकीयां पुस्तकोंमें लिखी है. इसी तरें कितनेक मास, तिथि, योग, वार इत्यादिकोंके माहात्म्य लिखे है. तिनकों व्रत पर्वणी कहते है. व्यतिपात, सोमवार, पुरुषोत्तममास, कपिलषष्ठी, महोदय करवाचौथ संकटादिक माहात्म्य लिखे. जैसे जैसे पुराणे होते जाते है तैसें तैसें अधिक माननें योग्य होते जाते है. करोडों लाखों रुपइए खरचके लोग काशी यात्रा करते है, पर्वणी और व्रत ऊपर दान पुण्य करते है, जिस्से माहात्म्य लिखनेवालोंका प्रयत्न करा व्यर्थ नहीं हुआ. जबतक लोगोंको अज्ञान दशाहै तबतक इस भ्रम जालमें कभी नहीं निकलेंगे.

दुसरी यह बात हैकि ब्राह्मणोंकी शौकने बहुत होगई है. लोग अखाडेके बावांको, मंदिरोंके साधु गुरुके शिख भाइ राम-सिंहके कूके शिष्य भराईयोकों, और अनेक मत और वेषवालोंकों जिमाते है, परंतु ब्राह्मणोंकों नही. कितनेक ब्राह्मणोंका नाम पम्मे और पोप कहने लग गए है, यह ब्राह्मणोंकों बहुत दुखदायक है. इनकी इसमें बमी हानि है.

ब्राह्मणोकी कुटिलता.

तथा ब्राह्मणोंकों ग्रहण गिननेंकी रीती आती है, तिसकों कालपर्व ठहराके लाखों रुपक हजारों व-र्षोसें कमाते खाते है. ब्राह्मण लोग अपने काममें बमे हुश्यार है क्योंकि किसीका बाप मरजाता है, तव तिसका बेटा शय्या लो-टादिक अनेक वस्तु ब्राह्मणोंकों देता है और ऐसें मनमें मानता है कि जो कुछ ब्राह्मणोंकों देऊंगा सो सर्व स्वर्गमें मेरे पिताकों मिलता है. इधर दीया और उधर मरनेवालोंकों पहुंचा और तुरत जमा खरच हो जाता है.

ए ग्रंथकादूस-रा प्रयोजन.

इस लिखनेका यह प्रयोजन है कि जब बहुत धूर्त्त ज्ञानी और जबरदस्त होतेहै और प्रतिपक्षी अस-मर्थ कमसमजवाले होते है तब कोई अपने मतलबकों भूलता नहीं. कोई सत्यमार्गी परमेश्वरका भक्तही स्वार्थत्यागी परमार्थ संपादक होता है. पाखंडी बहुत होते है इस वास्ते अवभी पाखं-मी लोगोंकों उचित हैकि अपना लालच छोम देवें और लोगोंकों भ्रमजालमें न गेरे, सत्यविद्याका पठनपाठन करे, लोगोंकों अछी बुद्धि देवें, हिंसक और जूठे शास्त्रोंकों छोम देवें, कमा करके खावे, छल कपट न करें, सर्व जीवोंपर सामान्यबुद्धि रखे, दुःखीकों सा-हाय्य देवे, काली कंकाली, भैरव प्रमुख हिंसक और जूठे देवोंकों मानना छोम देवें. सत्य शील संतोषसें चले तो अवभी इस देशके लोगोंके वास्ते अछा है.

श्री ऋषभदेव-का विद्यादान और भरतने जैन वेद बनाया.

श्रीऋषभदेवजीनें प्रथम इस अवसर्पिणी कालमें सर्व तरेंकी विद्या प्रजाके हित वास्ते इन भारतव-र्षीयोंकों सिखलाई और श्रीऋषभदेवके बडे बेटे भरतनें आदीश्वर ऋषभदेवकी स्तुतिगर्भित और गृ-हस्थधर्मके निरूपक चार वेद बनाके बहुत सुशील, धार्मिक श्राव-कोंकों सिखलाए और कहाकि तुम इन चारों वेदोंकों पढो और प्रजाकों गृहस्थाश्रम धर्मका उपदेश करो तब वो श्रावक पूर्वोक्त काम करणेसें ब्राह्मण नामसें प्रसिद्ध हुए. आठमें तीर्थंकर चंद्-प्रभ तकतो सात्विक धर्मका उपदेश प्रजाको होता रहा, परंतु नवमें सुविधिनाथ पुष्पदंतअर्हंतके पीछे इस भरतखंडमें सात्विक धर्म लुप्त हो गयाथा; तब तिन ब्राह्मणोंनें जगतमें अंधाधुंध मचाई, और वेदोंके नामसें नवीन हिंसक श्रुतियां बनाई अपनें आपकों सर्वसें उत्तम और ईश्वरके पुत्र ठहराया. अपने स्वार्थके वास्ते अनेक पा-खंड चलाये. जो कोइ इनको पाखंडसें मने करतेंथे उनहीकों ब्रा-ह्मण राक्षस और नास्तिक कहने लग गए, क्योंकि श्रीऋषभदेव आदीश्वर भगवाननें ही प्रथम सात्विक और दयाधर्मका उपदेश करा. भागवतमें लिखा है नारदजीनें के जगें हिंसकयज्ञ छुडवाये. तिसकाभी यही तात्पर्य है कि जैनीयोंके शास्त्रमें नारदजीकों जै-नधर्मी लिखा है. उनोंने जो हिंसक यज्ञ उपदेशसें बंद करे तो क्या आश्चर्य है ? और भागवतमेंभी ऋषभदेवजीकों विष्णुभगवानका अवतार लिखा है. पीछे ईश्वर जगत्कर्त्ता माननेंवालोंका मत चला. जबसें दया हिंसाका बहुत तकरार हुआ तिसके पीछेके बनें भारत, गीता, भागवतादि ग्रंथोका स्वरुपही औरतेंरका है.

बहुत लोक मनमें ब्राह्मणोंकों शांतिरुप गरीब जानते है. परंतु जिस वखत वेगुनाह बौद्धोंके बाल बच्चोंकों हिमालयसें लेके

सेतुबंध तक कतल करेथे और जैन मतके लाखों मंदिर तोड मूर्ति फोड अपने देव पधराय दीयेथे, और लाखों अति उत्तम पुस्तकोंके भंडार जला दीयेथे; उस वखत इनकी शांति मुद्रा देखतेतो पूर्वोक्त सर्व भूल जाते. और जैन मतमें श्रेणिक, अशोकचंद्र, चेटक, उदयन, वीतभय पाटनका उदयनवत्स, उदयन कोणिकका बेटा चंद्रप्रद्योत, नव मल्लिक, नवलेछिक, पालक, नंद, चंद्रगुप्त, बिंदुसार, अशोक, संप्रति और वनराज कुमारपाल प्रमुख अनेक जैनराजे महावीरजीके समयमें औरपीछे हुए

जैन राजाओंका समयमेंभी जैनीयोंकी शांति.

तिनके राज्यमेंभी जैनीयोंनें किसि मत वालेके साथ जबरदस्ती नहीं करी. इस कालमेंभी सैकडों जिन मंदिरोंमें जैपुर, गिरनार, आबु, करणाट प्रमुख देशोमें ब्राह्मणोंनें अपने देव स्थापन कर छोडे है. थोडेही वर्षोंकी बात है कि उज्जयनमें जैनीयोंनें एक मंदिर नया बनवायाथा. जब तैयार हूआ तब ब्राह्मणोंनें झटपट महादेवका लिंग पधराय दीया. इसीतरें संवत १९३१ में पालीमें जैनीयोंकी धर्मशालामें महादेवका लिंग पधराय दीया क्योंकि ब्राह्मण मनमें जानते है ये राजे हमारे धर्ममें है, इस वास्ते जैनी कहां पुकार करेंगे, इनकी कौन सुनेगा इत्यादि अनेक उपद्रव ब्राह्मणोंनें जैनीयोंकों करे परंतु जब जैनी अपनी पूरी औज पर थे इनोंनें किसी अन्यमतवालेकों मतकी बाबत जबरदस्ती नहीं करी, बलकि सरकारी पुस्तक इतिहासतिमिरनाशकके तीसरे खंडमें जहां राजा अशोकचंद्रके चौदह हुकुम पाली हर्फोमे लिखे है तिनमेंसें सातवें हुकमकी नकल यहां दरज करते है. खुलासा सातमें आदेशका "चाहे जिस पाखंडका फकीर हो चाहें जहां रहे कोई उसें छेडे नहीं. सबकी कोशिश अपनाककी दुरस्तीमें है." इस लिखनेंसें यह सिद्ध होता है कि जैन राजायोंनें किसी मतवालेके साथ

मतकी बाबत जबरदस्ती नहीं करी बलकि जैन राजायोंका राज्य प्रजाके बहुत सुधारेमें था. इतिहासतिमिरनाशकके के स्थानोमें इस बातका जिकर लिखा है. दूसरे मतवालोंकी जबरदस्ती के जगों लिखी है. हाल दिल्लीमें जो जैनीयोंकी रथयात्रा ब्राह्मण वगेरोंने नहीं निकलने दीथी सो सरकार अंग्रेजीके हुकमसें संवत १९३५ में निकली, यह बात प्रसिद्ध है. तथा हथरस, रेवाडी, खुरजेप्रमुख शहरोंमें ब्राह्मण प्रमुख अन्यमतवालोंने जैनीयों उपरथोमी जुलमी करीथी ? यहतो अंग्रेजी राज्यकाही तेज है, जो जैनी अपने धर्मका उत्सव करते है और सुखसें काल व्यतीत करते है. फेर ब्राह्मणों अपने आपको आस्तिक और जैनीयोंको नास्तिक कहतेहै यह बमे आश्चर्यकी बात है. जैनोंके मतमें ब्राह्मणोंका पाखंम चलना नहीं इस वास्ते जैनोंको नास्तिक कहते है.

पाराशर स्मृतिका अनादर.

यद्यपि इस कालमें जैनलोकोंमेंभी ब्राह्मणोंकी वासनासें अनेक रूढीके पाखंम चल रहेहै परंतु जैनोंके शास्त्रोंमें बहुत जगतरूढीके पाखंम नहीं है. सिवाय अपने इष्ट अर्हतके और किसी मिथ्यादृष्टि देवकी भक्ति करनी नहीं लिखी है तथा अतीत कालमें पांचकर्म चलतेथे—

कलियुगमें हिंसाका निषेध. " अग्निहोत्रं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकं । देवराच सुतोत्पत्तिं कलौ पंच विवर्जयेत् " ॥ १ ॥ यह कथन पाराशर ऋषिका है. अर्थः— अग्निहोत्र १ यज्ञादिकमें गायका वध २ संन्यास ३ श्राद्धमें मांस भक्षण ४ देवरसें पुत्र समुत्पन्न करना, अर्थात् देवरको पति करना ५ यह पांचका कलियुगमें त्याग करना. इस ऋषिनें हिंसाका बहुत निषेध करा है तोभी अज्ञ जन हिंसा

करते है. प्रथम अग्निहोत्र वंद करनेसें वेदोक्त यज्ञोंकी जम काट गेरी है तोभी ब्राह्मणादि अग्निहोत्र नहीं छोमते है.

सांप्रत कालमें अग्निहोत्री व- होत है. जैसें काशीमें वालशास्त्रीजी अग्निहोत्री सुननेमें आते है. जूनागढका दिवान गोकुलजी जाला सांख्यायनी ऋग्वेदी ब्राह्मण है, सो हालमें अग्निहोत्री हूआ है. अहमदावादका रुदरअमीन भाउ मैरालनेंभी अग्निहोत्र लीना है. कुलावाके वावाजी दिवानजीका वेटा धुंडीराजा विनायक उर्फे भाउ साहिव विवलकर ये वरसो वरस एक दो यज्ञ करके वहुत रुपइये खरचते है. ये संप्रतिकालके प्राचीनवर्हिराजा है. इनके समजाने वास्ते नारद कौन मिलेगा सो कौन जाने. गोपालराव मैराल ये गृहस्थ वमोदरेमें प्रसिद्ध थे तिनका भत्रीजा नारायणराव पांडुरंग इनोंने नर्मदा नदीके कांठे वेलु नाम गाममें सात यज्ञ करे, तिनमें लाखों रुपइए खरच करे है. इसीतरें काशी प्रमुख वहुत जगें यज्ञ होते है. सिवाय गुजरात, मारवाम, दिल्ली, पंजाव के और देशोंमें यज्ञ करणेंमें कोई रोकटोक नहीं है. जिस ब्राह्मण के कुलमें तीन पुरुष तक यज्ञ न हुआ होवे तिसकों दुर्ब्राह्मण कहते है. और तिसकों इस वावत प्रायश्चित करणा पमता है. यह प्रथम पाराशरका कथन नहीं माना. १

दूसरा गवालंभ. यज्ञादिकमें गायका वध करणा यह रस्म मनु और याज्ञवल्क्य तक जारीथी. पुराण और नाटक ग्रंथोंमेंभी यह विधि लिखी है तिस वास्तै गौहिंसाके निषेधकों वहुत काल नहीं हुआ. अनुमानसें ऐसा मालुम होता है तथा तैतीर्य ब्राह्मण- में और शतपथ ब्राह्मणमें नीचे लिखी श्रुति है.

मधुपर्ककीउत्प त्ति. " गव्यान्यशूनुत्तमेदभालभते " ॥ इन ग्रंथोके पृष्ठ । १६ । ३० । वेदाज्ञासें मधुपर्क उत्पन्न हुआ, राजा

घरमें आवे, वर घरमें आवे तो उत्तमही दिन गिना जाता है, जिस अवसरमें गोवध करना लिखा है. यहभी पाराशरने बंद किया तोभी गोदान उत्सर्ग विधि चलती है. आश्वलायन सूत्रमें तथा और अन्यसूत्रोंमें जब मधुपर्ककी विधि वांचीए तो गवालंभ अर्थात् गौवधके सिवाय और कोई विधि नहीं मालुम होती है. यह गौवधभी जैन, बौद्धमतवालोंकी तकरारसें बंद हुआ मालुम होता है. २

तीसरा कलिमें संन्यासी होना बंद करा, सोभी नहीं बंद हुआ. यह पाराशरजीका नियमतो विशेष करके शंकरस्वामीने तोडा, क्योंकि शंकरस्वामीने चारोंही वरणकों संन्यासी करा सो गोसांई आदिक है. और बहुत संन्यासी वाममार्गी है, मांस मदिरा खानेपीने है, बहुत पाखंड करते है, इस वास्ते बंधी करी होगी. ३

चौथा पलपैतृकं. अर्थात् श्राद्धमें पितृनिमित्त मांसका खाना; इस्से यह मालुम होता है कि आगे वैदिकमतवाले बहुत हिंसक थे, और शिकार मारके खातेथे. जिन जानवरोंकों मारके खातेथे, उनका मांस होमके बाकी खा जाते थे. यह रसम वैदिक धर्मकी प्रवर्त्तनामें थी. जब स्मृतियों बनाई गई तब पूर्वोक्त रसम बंद कर दीनी, और विधि बांधी. विधिमें लोग मांस खाने लगे. ४

पुराणोंमें मांस भक्षणकी छुट है.

जब पुराण बने तिनमेंभी विधिमें मांस खानेकी छुट है. वैष्णवमतवाले ऐसे पुराणोंकों तामसी पुराण मानते है. श्राद्ध विषयमें निर्णयसिंधुमें ऐसा लिखा है. "यत्र मातुलजोद्वाही यत्र वै वृषलीपतिः । श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्रः कृतं यत्र निराग्निकं" अर्थ—"जहां मामांकी बेटी विवाही होवे तथा शूद्री कन्या विवाही होवे ऐसे आदमीके घरमें ब्राह्मणने श्राद्ध

जीमनेंकों न जानां. और जिस श्राद्धमें मांस नहीं होवे तहां किसी ब्राह्मणको श्राद्धमें जीमनेंको न जाना चाहिये." अब बुद्धिमानोंकों विचारना चाहिये, ऐसे शास्त्रोंके बनाने और माननेंवाले अपनें आपकों आस्तिक और जैनीयोंकों नास्तिक कहते है.

वेद बनायेका भिन्न भिन्न समय.

तथा वेद मूलमें एक वखतमें बने हुए मालुम नहीं होते है, किंतु जुदे जुदे कालमें जुदे जुदे ऋषियोके जुदे जुदे बनाये हुए मंत्र है. वे सर्व एक संहितारुप देखनेमें आते है. और वेद यह जो शब्द है सो अन्यग्रंथमेंज्ञी लगानेकी रीतिहै. जैसे गांधर्व वेद, धनुर्वेद, आयुर्वेद; ज्ञारतकोंज्ञी पांचमा वेद कहते है.

वेद शब्द लगायकर अन्यनामभी वने है.

वेदके अक्षरोंकों मंत्र कहते है, तिनमें परमेश्वरकी तथा और देवोंकी प्रार्थना है और कितनेक मंत्र विधिके है, जिनमें यजन याजनकी विधि है. जडमें जे ऋषि थे ते क्षत्रियोंके घरमें यज्ञादिक कर्म करतेथे तिस वास्ते ये ऋषि धर्माध्यक्ष बन गये, तब तिन ऋषियोंने लोगोंके मनमे यह बात दृढा देई कि वेदोंके सिवाय कुछज्ञी न होगा, और सर्व देवते हमारे वेदमंत्रोंके तावे है,

देवविधिमें देवताका आवाहन और विसर्जन.

और वेदमंत्रसें जिस देवताका आवाहन करीये वो हाजर होता है, और जिसका विसर्जन करीये वो चला जाता है, और जो कुछ हम उनकों कहदेते है सो करदेते है, तिनके सिद्ध करने वास्ते हजारो ग्रंथ लिख गए है. सूर्य ऊगता है सो ब्राह्मणोंकी संध्याके प्रज्ञावसें ऊगता है. यह कथन ज्ञारतमें लिखा है, जैसें जैसें लोगोंके दिल यह बात बैठती गई तैसें तैसें धर्माध्यक्ष ऋषियोंका अमल जबरदस्त होता गया. ज्ञागवतसें लिखा है "श्रीकृष्णजी कहते है, अग्नि, सूर्य, सोमादिकके कोपसें मुजको इतना डर नहीं. जितना मुजको ब्राह्मणोंके कोपका डर है." सो श्लोक यह है.

कृष्णभी ब्राह्मणोंसे डरता है.

"नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्रात्, शंके भृशं ब्रह्मकुलावमानात्" तब ऐसा लिख दिया, और भगवानभी ब्राह्मणोंसें अति डरते थे तो फेर ब्राह्मण अपने मनकी मानी क्यों न करे ? यही तो स्वछंदपणेंने हिंदुयोंका सच्चा धर्म डबोया. अबी तक परमेश्वरभी निर्णय नहीं हुआ. " आंधे चूहे (उंदर) थोथे धान जैसे गुरु तैसे यजमान " यह कहना सत्य है. हमकों यहा सोच है कि कबी हिंदुभी सूते जागेंगे, बालावस्थाकों छोडेंगे, पक्षपातके अंध कूपसें निकलेंगे, निकलेंगे सही परंतु यह खबर नहीं, कूपसें निकलके पाखंडीयोंके जालमें फसेंगे, सत् मार्गमें चलेंगे.

ऋषि शब्दका अर्थ.

ऋषि शब्दका अर्थ गाने और फिरनेवालेका होता है. परंतु रुढिसें ग्रंथकर्तायोंको नाम ऋषि कहते है. अतीत कालमें धर्माध्यक्ष बहुत पाखंडी और कपटी थे, राजायोंकोंभी अपना गुलाम बना रखतेथे, और क्रिश्चियन् अर्थात् ईसाइ धर्मका धर्माध्यक्ष पोप करके प्रसिद्ध है, तिसकी फांसीसें यूरोप खंडके लोग अबतक नहीं छूटे है. यूरोपीयन लोगोंको पोप पापकी माफी देता है, स्वर्ग चढनेका पत्ता देता है, और नरक जानेकाभी पत्ता देता है, तिस वास्ते बहुत भोले लोग मरती वखत इन पोपोंसें आशीर्वाद लेनें वास्ते हजारों रुपइये देते है.

पोपलीलाका वर्णन.

सर्व लोगोंके पासतो पोप पहुंच नहीं सकता है. इसवास्ते कितनेक अपनी तर्फसें मुखत्यार बनाके देशमें फिरने वास्ते भेजता है, जेकर पोप किसीकों न्यात बाहिर काढेतो फिर किसीकी ताकात नहीं जो उसका संग्रह कर शके. चाहो लाख फौजका स्वामि बादशाह क्यों न होवे. पोपके आगे हाथ जोडनेही छूटना होवे है. जैसा धर्माध्यक्षका जुलम अन्य देशोंमें है तैसा यहांभी है. जब यूरोपीयन बडी अकलवालोंकों पोप

नहीं छोडते है तो हिंदुस्तानी पशुयोंकों ब्राह्मण कैसें छोड देवे ? इस अन्यायका मूल कारण अज्ञान है.

वेदविद्या गुप्त रखते है. क्योंकि जब धर्माध्यक्षोंकां अधिकबल होजाताहै तब वे ऐसा बंदोबस्त करते है कि कोई अन्य जन विद्या पढे नहीं, जेकर पढेतो उसकों रहस्य बताते नहीं. मनमें यह समजते है कि अपढ रहेंगेतो हमकों फाइदा है, नहींतो हमारे छिद्र काढेंगे. ऐसें जानके सर्व विद्या गुप्त रखनेकी तजवीज करते है. इसी तजवीजनें हिंदुस्तानीयोंका स्वतंत्रपणा नष्ट करा और सच्चे धर्मकी वासना नहीं लगने दीनी, और नयेनये मतोंके भ्रमजालमें गेरा और अच्छे धर्मवालोंकों नास्तिक कहवाया.

जिन वेदोंका घमंड रखते है तिन वेदोहीनें महाहिंसक धर्म उत्पन्न करा. तथा वेदमें मदिरा पीनेकाभी मंत्र लिखा है. ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें क्षत्रीकों राज्याभिषेक करनेंकी विधि आठमीपंचिकाके वीसमें कांडमें लिखी है सो नीचे प्रमाणे मंत्र है.

वेदमें मदिरा पीनेका मंत्र. "इत्यथास्मै सुराकंसं हस्त आदधाति स्वादिष्टया —तां पिबेत्" ८ । २० । अर्थ— राजाके हाथमें मदिरेका लोटा देना और स्वादिष्ट यह मंत्र पढके पीवे. इसीतरें अनेक राजायोंका राज्याभिषेक हुआ है तिनका नाम और तिनके गुरुयोंके नाम वेदमें लिखे है. तिनमें परिक्षितकापुत्र जन्मेजयकों राज्याभिषेक हुआ सो श्रुति नीचे लिखी है । "तुरः कावषेयो जन्मेजयं पारिक्षितमभिषिषेच." ऋग्वेद ब्राह्मण ८ । २१ । इस्सें ऐसा मालुम होता है जो ऋग्वेद जनमेजय के पीछे बना है-

तथा जो मंत्र नीचे लिखे जाते है तिनसें ऐसा सिद्ध होता हैकि वेद ईश्वरसे कहे हुए नहीं है ते मंत्र यथा । "अर्हीश्चसर्वां जंभयं सर्वाश्चयातुधान्यः" । यजुर्वेद रुद्री ॥ अर्थ—"हे रुद्र, सर्प औ-

र पिशाच इनका नाश कर " ॥ "हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय " । ऋग्वेद । अर्थ–हे सूर्य मेरे हृदयके रोगका और कमला को रोग नाशकर । " उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्यो र्मुक्षीयमामृतात्"। ऋग्वेद । अर्थ–हे त्र्यंवक मौतसें काकमीका फलकी माफक मुजकों मृत्युसें बचाव । "मेधां मे वरुणो ददातु" । यजुर्वेद. अध्याय ३२ मंत्रमें लिखा है " मुजे वरुण देवता बुद्धि देवे " । तथा वेदकी श्रुतियां परस्पर निरुद्धनी है. तिनमेंसें कुछक नीचे लिखी जाती है। गृत्समदऋषिः ऋग्वेद संहिता. अष्टक २ अध्याय ६ वर्ग २४ ऋचा ६–" दिवोदासाय नवतिं च नवेंद्रः । पुरोव्यैरछंवरस्य "॥ गृत्समदऋषि ऋग्वेद संहिता, अष्टक २ अध्याय ६ वर्ग १३ । "अध्वर्यवो यः शतं शंवरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वोः परिच्छेपो " ॥ दैवोदासी ऋषिः ऋग्वेद संहिता अष्टक २ अध्याय १ वर्ग १ए । " भिनत्पुरो नवतिमिंद्रपूरवे दिवोदासाय महिदाशुषेनृतो वज्रेणदाशुषेनृतो अतिथिग्वायेशंवरं गिरेरुग्रो अवाभरत्." अर्थ– इंद्र नामा राजा था. तिसका मित्र दिवोदास नाम करके था, तिसकी तर्फसें शंवर नामा दैत्य था, तिसके साथ इंद्र बहुत वार लड्या, तिस विषयकमें वेदमें कथा बहुत जगें आती है.

श्रुतिओंमें परस्पर विरोध.

किसी जगें वेदमें इंद्र जो है सो पर्जन्याधिपति देव है, ऐसेभी कहाहै. शंवरासुरदैत्यके निनानवे गाम इंद्रने उजाड करे ऐसें एक मंत्रमें कहा है. दुसरे मंत्रमें सो १०० गाम उजाड करेकी कथा है, और तिसरे मंत्रमें नव्वे ए० गाम उजाड करेकी कथा है, इंद्रका पराक्रम नीचे लिखे हुए मंत्रमें बहुत वर्नन करा है. तिसका प्रथम वचन लिखा है. तिसमें ऐसा लिखाहै कि इंद्रको मदिरा बहुत अच्छा लगता है इस वास्ते मदिरेकों अग्निमें गेरदेवो । गृत्समदऋषि ऋग्वेद संहिता अष्टक २ अध्याय ६ वर्ग १३ ॥ " अध्वर्यवो भरतेंद्रायसोममामत्रेभिः सिंचतामद्यमंधः" ॥ तथा इस

करा होवे तिसके पति अर्थात् खसमका वध करना चाहिये. यज्ञो-
में ऐसे शास्त्रका उपदेशक और ऐसें यज्ञोंका कराने वाला और
करनेवाला जेकर अंग्रेजी राज वर्तमानमें होवेतो कन्नी सरकार
फांसी दीया विना न गेमे. परम कृपालु ईश्वरके मुखसें ऐसा हिं-
सक शब्द कदिन्नी न निकले. यह महाकालासुरकी ही महिमा
है जो ऐसे हिंसक शास्त्र परमेश्वरके बनाये प्रसिद्ध होजावे और
मनुष्योंकी बलि देई जावे. राजे राजके और अन्यायके अंधकार
कूपमें डुब जावे, किसीकी खबर न लेवे. मुंबई सरकारे बुकनंबर
३ए न्नाग १ जिसमें मनुष्यवध और बालहत्या विषयक सरकार-
में मुकर्दमा पेश हुआ था, तिसके संबंधवाले कागजपत्र उप्पे हैं.
तिनमें मुंबईके गवरनर साहेब ऑनरेबल मंकनको कर्नल वाकर
बडोदराके रेसीमंट साहिबनें ता० १६ मार्च १७०७ का रिपोर्ट करा
है तिसमें कलम १०७ है तिसकी ताजीकलममें पत्रे ३६ में करा-
मा ब्राह्मणोकी मनुष्य बलि करनेंकी चाल विस्तारसें लिखी है.
ऐसी रीत बहुत ठिकाने हिंदुस्तानमें थी तिसके बंद करनेंको सर-
कारनें बहुत प्रयत्न करा है. नागपुर, जबलपुर, गुमसूर परगणेमें
खोम्द लोक है वो मनुष्यबलि करते है. ते ऐसे समजते हैकि ऐसी
बलि करा विना वर्षा नहीं होवेगी, खेती नहीं पकेगी. आदमीकों
बांधके तिसके गिरदनबाह हजारों आदमी शस्त्र लेके तिसके अंग-
के टुकडे काठ लेते है. इसकों मेरियां पूजा कहते है.

सतीहोनेका चाल ब्राह्मणो में उत्पन्न भया है.

सती होनान्नी ब्राह्मणोंनेही चलाया है. तिसका
दाखला—१७१६ सें १७२४ तक तिन नव वर्षोंमें
६६३१ विधवा बल मरी. बमी बमी इमारते बनाते
हुए कितनेही मनुष्य ब्राह्मणोंके बताने मुजब जीते गाड देतेथे.
वास्तुशास्त्रमेंन्नी बलि करनी लिखी है. कई पर्वतोंसें गिरके मर-
तेथे, हिमालयमें गलतेथे, काशी करवत लेतेथे, जलमें डूबके मर-

तैसे इत्यादि सर्व हिंसक काम ब्राह्मणोंके चलाए हुए है. भोले जीवांको बेहकाके, उनका घरबार सर्व पुण्य कराके, उनको मरणकी तरकीब बता देतेथे.

देवताईके बलिदान करनेका प्रकार.

तथा दशहरेमें (दशरा), नवरात्रोंमें भैसें, बकरे मारे जाते है, अनेक देवी देवता भैरव आगे अनेक भैसें, बकरे मारे जाते है. तथा वामीयोंके मतमें कालीपुराणके रुधिराध्यायमें अनेक जीवांका मस्तक, मांस, रुधिर, प्रमुखकी बलि लिखी है तथा पुराण ज्योतिःशास्त्रमेंभी हिंसा लिखी है. इन सर्व हिंसाके चलाने वाले और हिंसक शास्त्रोंके बनाने वाले ब्राह्मणही है. और वामीयोंकेभी शास्त्र ब्राह्मण, संन्यासी, परमहंस नामोंके रचे हुए है. देवीभागवत वामीयोंके मतका है, तिसकी टीका नीलकंठशास्त्री काशीके रहनेवालेने बनाइ है. तिसमें देवीकी उपासनाकी बडी प्रशंसा लिखी है. इस वास्ते सर्व हिंसक शास्त्र और मंत्र ब्राह्मणोंनेंही रचे है.

वेदोंमेंभी मंत्र है

तंत्र और पुराण प्रमुखोंमें जैसें मंत्र है तैसें वेदोंमेंभी है, तिनका नमूना थोडासा नीचे लिखतेहै.। ऋग्वेदका ऐतरेय ब्राह्मण अष्टम पंचिका खंड २७ 'अथातो ब्राह्मणः परिमरो यो हवै ब्रह्मणः परिमरं वेद पर्येनं द्विषंतो भ्रातृव्याः परिसपत्ना म्रियंते-य-यत्यायमनूर्वा द्विषद् भवति क्षिप्रं हैवनं स्तृणुतेस्तृणुते इत्यैतरेयब्राह्मणेऽष्टमपंचिकायाः पंचमोध्यायः। खंड १० पंचिका' ८। 'जयति इतां सेनां यद्युवा एनमनुपवावेत् संग्रामं ॥ तैत्तरीये आरण्यक ४ प्रपाठक २७ अनुवाके।

वेदमें मारणका प्रयोग है.

तत्सत्यं यदमुं यमस्य जंभयोः आदधामि तथाहि तत् खण्फणम्नसि २७ अनुवाके ॥ उत्तुदशि मिजावरी तस्यजे तस्यउत्तुद गिरीडरनुप्रवेशाय ॥ मरीचीरुपसन्नु

दयावदितः पुरस्ताडुदयाति सूर्यः ॥ तावदितोऽमुनाशय ॥ योऽस्मान्द्वेष्टि यच्च वयं द्विष्मः"॥ अर्थ। ब्रह्मण परिमर इस अनुष्ठानसें राजाके सर्व शत्रु मरण पाते है. इनके अंग उपर पाषाणका बखतर होवे तोभी सो रहनेका नहीं. इस मंत्रको जपेतो शत्रु सैन्य भागे और फत्ते मिले. महावीर नामक यज्ञ करके शत्रुके नाशनार्थ मंत्र पढना कि मेरा शत्रु यमकी दाढामें जाय. शमि खेजडीका झाड शत्रुके बिछोने तले गाडना तिस्सें शत्रु तुरत मर जाता है. इसी तरे ऋग्वेदके आश्वलायन सूत्रमें श्येन अर्थात् बाजपक्षीका होम विधान अर्थात् शत्रुके मारनेवास्ते अनुष्ठान है तिनकों अभिचार कर्म कहते है. सो सूत्र यह है. श्रौत सूत्र, आश्वलायन अध्याय ए कांड ७। "श्येनाजिराभ्यामभिचरन् १ विघनेनाभिचरन्" ॥३२॥ ऐसे हिंसक शास्त्रोंकों परमेश्वर कथन करे कहने इस्से अधिक अज्ञानी दूसरा कौन है ? इनही हिंसक शास्त्रोंनें सर्व जगतमें हिंसाकी प्रवृत्ति करी है. जब कोई इनशास्त्रोंकों बुरा कहता है उसीको ब्राह्मण नास्तिक कहते है. कितनेक कहते है, ईश्वर मनुष्योंकों कहता तुम इस रीतिसें मेरी प्रार्थना करो. यह कहना जूठ है. क्योंकि वेदोंमें किसी जगेंभी नहीं लिखा है कि ईश्वर मनुष्योंकों कहता है कि तुम ऐसें प्रार्थना करो. और न किसी प्राचीन भाष्यकारने ऐसा अर्थ लिखा है. और जो दयानंदसरस्वतीने नवीन भाष्य बनाया है उसमें जो ऐसा अर्थ लिखा है कि ईश्वर मनुष्योंकों कहता है कि तुम ऐसें कहो यह कहना दयानंदसरस्वतीका अप्रमाणिक है, स्वकपोलकल्पित होनेसें. क्योंकि दयानंदसरस्वती हमारे समयमें विद्यमान है*

दयानंदका पाखंड.

और उनके बनाए भाष्यकों काशी वगैरेके पंडित प्रमाणिक नहीं कहते है. बलिके दयानंदके लेखकों

* यह ग्रंथ लिखनेके समयमें दयानंदसरस्वती विद्यमान थे.

अर्थाभास कहते है. हां जो कितनेक लोग अंग्रेजी फारसी कीताव पढे है वे तो प्रमाणिक मानते है क्योंकी उनके मनमानी वात जो दयानंद कहते है तव वे वडे आनंदित हो जाते है. जवसें वे मद्रेशामें और मिशनस्कूलोंमें विद्या पढने लगतें है तवहीसें शनैः शनैः हिंदु धर्मसे घृणा करने लग जाते है. क्योंकि जव हिंदुयोंके देवतायोंका हाल सुनते है और उनकी मूर्तियोंको देखते है तव मनमें वहुत लज्जायमान होते है, कितनेक तो इसाइ, मुसलमानादिकोंके मतकों मानने लग जाते है. और कितनेक लामजव अर्थात् किसीकोंभी सच्चा नही मानते है. और कितनेक अपनी चतुराईके घमंडसें वेदादि शास्त्रोंको छाटने लग जाते है, यथा संहिता ईश्वरोक्त है इसवास्ते प्रमाणिक है. व्राह्मण और उपनिषद् जीवोक्त है इसवास्ते अप्रमाणिक है. कोइ वेदोंके पुराणे भाष्यादिकोंको जूठे जानकर स्वकपोलकल्पित भाष्यादि वनाते है. कितनेक कहते है वेदादि सर्व शास्त्रोंमें जो कहना हमारे मनको अच्छा लगेगा सो मान लेवेंगे, शेष छोड देवेंगे. तव तो वेदादि शास्त्र क्या हुये. कूंजडोंकी तरकारी हुई, जो अच्छी लगी सो खरीद करली और जो मनमें माना सो अर्थ वना लिया. यह शास्त्र वेदादि परमेश्वरके वनाए क्यों कर माने जा सकते है? जिनके कितनेक हिस्से जूठे और कितनेक हिस्से सच्चे और मनकल्पित अर्थ सच्चे. क्या मनकल्पित अर्थ वनाने वालोंके किसी वखतभी न्याय वुद्धि नही आती जो अपनी कल्पनासें जूठे शास्त्रोंको सच्चा करके दिखाते है? इस वातमें उनोने अपने वास्ते क्या कल्याण समजा है? ऐसेतो हरेक जूठे मतवाले अपने मतके जूठे शास्त्रोंको मनकल्पित अर्थ वनाके सच्चे कर सक्ते है. हे परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञ! ऐसी मिथ्यावुद्धिवालोंका हमकोंतो स्वप्नमेंभी दर्शन न होवे. मन कल्पित ग्रंथोंमें जो शतपथादि व्राह्मण और निरुक्त प्रमुखके प्रमाण दीये है सो-

भी जूठ है, क्योंकि जब शतपथादि ईश्वरोक्तही नहीं है तो तिनका प्रमाण जूठा है. और शतपथ शब्दका जे कर सूधा अक्षरार्थ करीएतो सौ रस्ते ऐसा होता है. जेकर इस अर्थानुसार समजीए तो किसी धूर्तने अपने शास्त्रकी रक्षा वास्ते सौ रस्ते पर अर्थ हो सके ऐसा ग्रंथ रचा है.

शुक्ल यजुर्वेद कोने बनाया है — शतपथ शुक्ल यजुर्वेदका चौदह अध्यायरूप ब्राह्मण है और शुक्ल यजुर्वेद याज्ञवल्क्यने बनाया है. जब वेदही ईश्वरोक्त नही तो शतपथ ब्राह्मणका प्रमाण क्योंकर मान्य होवे तथा शतपथ ब्राह्मणमें ऐसा नही लिखा है कि ऋग्वेदादिककी अमुक अमुक श्रुतियोमें जो अग्नि, वायु, इंद्रादि शब्द है तिनका वाच्यार्थ ईश्वर है. इन शब्दांका पूर्व भाष्यकारोंने तो वाच्यार्थ भौतिक अग्नि वाय्वादिक कहे है ऐसी जूठी कल्पनाके अर्थ कुछ आजही नवे नही कल्पन करने लगे है. किंतु अतीतकालमें जब मीमांसाके वार्तिककार भट्टपाद कुमारिलको वादियोंने सताया कि तेरे देवता बडे कुकर्मी है, उसनें यह जवाब दिया कि लोगोंने जो पोथीयोंमें लिख लिया है कि प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा अपनी बेटीसें फसा अर्थात् विषय भोग करता भया, खराब हूआ, और इंद्रनें अहल्याके साथ कुकर्म करा; यह कहना बिलकुल जूठ है, क्योंकि प्रजापति नाम सूर्यका है, और उसकी बेटी उषा है. वेदोंमें जहां कहा है कि प्रजापति अपनी बेटीसें मैथुन सेवन करता भया तहां भावार्थ ऐसा है कि सूर्य उषाके पीछे चलता है. इसीतरें इंद्रनाम सूर्यका है, और अहल्या रात्रिका नाम है. जहां कहीं वेदोंमें कहा है कि इंद्रने अहल्याको खराब करा, मतलब इतनाही है कि सूर्यनें रात्रिको खराब करा, सूर्यके उगनेंमें रात्रिकी खराबी होती है. तथाह कुमारिलः "प्रजापतिस्तावत्प्रजापालनाधिकारात् आदित्य एवोच्यते स चारुणोदयवेलायामुषसमुद्यन्नभ्येति सा तदाग

मनादेवोपजायतइति तद्दुहितृत्वेन व्यपदिश्यते तस्यां चारुणकिरणा ख्यवीजनिक्षेपात् स्त्रीपुरुषसंयोगवदुपचारः एवं समस्ततेजाः परमेश्वरत्वनिमित्तेन्द्रशब्दवाच्यः सवितेवाहर्निलीयमानतया रात्रेरहल्याशब्दवाच्यायाः क्षयात्मकजरणहेतुत्वात् जीर्यत्यस्मादनेन वोदितेन वेत्यहल्याजार इत्युच्यते। न परस्त्रीव्यभिचारात्" ॥

अर्थ–प्रजापालनेका अधिकारसें प्रजापतिका अर्थ सूर्य होता है. ते सूर्य अरुणना उदयमें उषाकी पीठे चलता है. उषा सूर्यका आगमनसें होतीहै ते वास्ते उसकी वेटी रुपे व्यपदेश होताहै. तीसमें अरुणका किरणरुप वीजका निक्षेप होनेसें स्त्रीपुरुषका संयोगका उपचार होते है. समस्त तेजवाला परमेश्वरत्व निमित्तरुप इंद्र शब्द सूर्यमें लीन होनेसें रात्रिका अर्थ अहल्या होता है. सूर्यका उदय होनेसें रात्रिरुप अहल्याका क्षय हेतु है. तेम जीर्ण होनेसें जार शब्दका अर्थ है. तिन वास्ते अहल्याजार ऐसा अर्थ होते है. इहां परस्त्रीका व्यभिचार न लेना.

दयानंदसरस्वतीका कपोलकल्पित अर्थ.

इसी तरेंका अर्थ दयानंदसरस्वतीजीनेभी वेदभाष्यभूमिकामें करा है, सो दो तीन पत्रे लिख मारे है. उनमें लिखा है कि यह रुपकालंकार है. ऐसे ऐसे भ्रांतिजनक रुपकालंकार कहे विना यहां क्या काम अटक रहाथा ? और ब्रह्मवैवर्त्त भागवतके वनानेवालोंको रुपकालंकार नही सूझा ? कुमारिलसेंभी दयानंदसरस्वतीने विशेषार्थ करा है, लिखा हैकि गौतम नाम चंद्रमाका है, और कहीं सूर्य, प्रजापति, वरुण, अग्नि, पवनादि शब्दका वाच्यार्थ परमेश्वर और कहीं सूर्य, कहीं और कुछ, इस स्वकपोलकल्पनाके यह फल है कि जूठी वात को सच्ची करनी. और वादीयोंका तर्कतापसें वच जाना. इसी वास्ते तो दयानंदसरस्वतीजीने सर्व पुस्तक छोडके संहिता प्रमाणिक मानी है. क्योंकि संहितामें अन्य पुस्तकोंकी तरे हिंदी

वातां बहुत नही है; जो है वी तो तिनके अर्थ वदल माले है. क्या ऐसे कल्पनाकों विद्वान् सच्ची मान लेगे, और इस कल्पनासें वेद सच्चे हो जावेगे ? इस कल्पनासें तो वेदार्थ संशयका कारण हो गया. संशय यह हुआ कि पूर्वले मुनि ऋषि, रावण, नव्वट, महीधरादि मूर्ख अज्ञानी थे कि जिनकों सच्चा वेदार्थ नही पाया वा दयानंदसरस्वती मूर्ख अज्ञानी है जिसने पूर्व विद्वानोंके अर्थकों गेमके नवीन स्वकपोलकल्पित अर्थान्नास रचा है ?

दयानंदसरस्वतीकुं उपनीषद् प्रमुखमेंभी शंका है.

दयानंदजीका यहन्नी कहना मिथ्या है कि हम ईशावास्य नपनीषद् और संहिताके सिवाय और पुस्तकोंकों नही मानते है क्योंकि शतपथ ऐत्तरेय प्रमुख ब्राह्मण, निरुक्त, नपनीषद् आरण्यक प्रमुखका प्रमाण जो जगे जगें अपनी कल्पनाके सिद्ध करने वास्ते दीए है वे नपहास्यके कारण है, क्योंकि जे कर तो अन्यमत वालोंके लीये प्रमाण दीये है तो अन्यमत वालेतो प्रथम वेदोहीको सच्चे शास्त्र ईश्वरप्रणीत नही मानते है, तो प्रमाणोंकों सच्चे क्योंकर मानेगे ? जेकर प्राचीन वेदमतवालोंके वास्ते प्रमाण दीये है तबतो नजकोन्नी अकिंचित्कर है, वे तो ब्राह्मणन्नाग नपनीषद् प्राचीन न्नाष्यादि पुराणादिकोंकों प्रमाणिक मानते है, वे दयानंदसरस्वतीके लेखकों क्यों कर सत्य मानेगे ? जेकर अपने शिष्योंके वास्ते प्रमाण दीए है सो तो पीसेका पीसणा है, वैतो आगेही स्वामीजीके लेखकों विधाताके लेख समान समजते है. प्रमाणतो प्रेक्षावानोके वास्ते दीये जाते है. प्रेक्षावानतो दयानंदसरस्वतीके लेखसें जान लेवेंगे कि स्वामीजीके दीए प्रमाण ठलरुप है. क्योंकि राजा शिवप्रसादके गपे निवेदनपत्रमें तो दयानंदजी लिखते है कि मैं संहितायोंको वेद मानता हुं. एक इशावास्यकों गेमके अन्य नपनीषदोंकों नही मानता, किंतु अन्य सब नपनीषद् ब्राह्मण ग्रंथोमें है, वे ईश्व-

रोक्त नहीं है. ब्राह्मण पुस्तक वेद नही. जब दयानंदसरस्वतीजी ऐसें मानते है तो फेर ब्राह्मण शतपथादिकोंका क्यों प्रमाण देते है. और अपनी बनाई वेद भाष्यभूमिकाके ३४१ पृष्टमें लिखते है कि। इस वेदभाष्यमें शब्द और उनके अर्थद्वारा कर्मकांडका वर्णन करेंगे परंतु लोगोंकें कर्मकांडमें लगाये हूए वेदमंत्रोमेंसें जहां जहां जो जो कर्म अग्निहोत्रसें लेके अश्वमेधकें अंत पर्यन्त करने चाहिये, उनका वर्णन यहां नही किया जायगा, क्योंकि उनके अनुष्ठानका यथार्थ विनियोग ऐत्तरेय शतपथादि ब्राह्मण पूर्वमीमांसा श्रौत और गृह्यसूत्रादिकोंमें कहा हूआ है, उसीको फिर कहनेसें पीसेकों पीसनेके समतुल्य अल्पज्ञ पुरुषोंके लेखके समान दोष इस भाष्यमेंभी आसकता है. इस लिखनेसेंतो ऐसा मालुम होता है कि स्वामिजी ब्राह्मण और श्रौत गृह्यसूत्र सूत्रांके करे विभागभी मानते है. श्रौत गृह्यसूत्रांकाभी स्वरुप आगे चलकर लिखेंगे. इस वास्ते दयानंदसरस्वतीजीका कहना एक सरीखा नही. इसका यही तात्पर्य हैकि ब्राह्मण पुराणादिकोंमें अनुचित लेख देखके प्रतिवादियोंके भयसें दयानंदजीने अन्य पुस्तक सर्व वेद संहिताके सिवाय मानने छोड दीये है, और पूर्वलें अर्थोंसें लज्जायमन होकर स्वकपोलकल्पित नवीन अर्थ बनाए है सो जिसकों अछे लगेंगे सो मानेगा.

दयानंदसरस्वतीका जैनमत विषे जूठ विचार.

और हमतो दयानंदसरस्वतीके बनाए अर्थोंको कदापि सत्य नही मानेंगे, क्योंकि दयानंदसरस्वतीने अपनें बनाये सत्यार्थ प्रकाशके बारवें समुल्लासमें जैनमतकी बाबत बहुत जूठी बात लिखी है. ऐसाही उनका बनाया वेदभाष्य होवेगा. दयानंदसरस्वतीने जो मत निकाला है सो इसाइयोंके चाल चलन और मतके साथ बहुत मिलता है. परंतु चार वेद ईश्वरके कहे हूए है, और अग्नि, सूर्य, पवनरूप ऋषियों-

कों प्रेरके ईश्वरने वेदमंत्र कहा है और मुक्ति हुआ पीछे फेर जगतमें आकर उत्पन्न होता है.

वेदमें यज्ञका प्रयोजन.

और मुक्तिवाला जहां चाहता है वहां उमके चला जाता है, और ईश्वर सर्वव्यापी है, जीव और परमाणु अनादि है, घी सुगंधीके होमनेसें वर्षा होतीहै, हवा सुधरती है, मुक्ति या स्वर्ग ऐसी कोई स्थान नहीं, इत्यादि वातें तो इसाइ मतसें नहीं मिलती है. शेष वातें प्रायः तुल्यही है. वमे आश्चर्यकी वाततो यह है, प्राचीन ब्राह्मणोंके मतकों छोडके अन्यमतवालोंके शरणागत होना और जो कुछ अंग्रेजोंने बुद्धिके वलसें तार, रेल, धूयेंके जहाज आदि कला निकाली है, उनही कलाकों मूर्खो आगे कहना कि हमारे वेदोमेंभी इन कलाका कथन है.

सूर्य और पृथ्वी विषे दयानंदका विचार.

दयानंदसरस्वती इस यजुर्वेदके मंत्रसें सूर्य स्थिर और पृथ्वी भ्रमण करती सिद्ध करता है. "आयंगौः पृश्नीरक्रमीदसदन्मातरं पुरःपितरं च प्रयत्स्व॥" यजुर्वेद अध्याय ३ मंत्र ८ तथा इस मंत्रसे तार (टेलीग्राफ) की विद्या कहता है. "युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारंदुवः स्वयःशर्यैरभियुं पृतनासुदुष्टरं चर्कृत्यमिंद्रमिवचर्षणी सहम॥" ऋग्वेद अष्टक १ अध्याय ८ वर्ग २१ मंत्र १० जेकर तो पूर्व भाष्यकारोंने इनमंत्रोका इसीतरें अर्थ करा होवेगा तब तो दयानंदका कहना ठीक है. नहीं तो स्वकपोलकल्पनामें क्या होता है ?

वेद विषे पंडित मोक्षमूलरका अभिप्राय.

तथा दयानंदसरस्वतीजी जो वेदोंका घमंड करता है कि वेद ईश्वरके रचे हूए है, अति उत्तम पुस्तक है, जिनकी परीक्षा करने वाला विचक्षण पंडित मोक्षमूलर अपने बनाये संस्कृत साहित्य ग्रंथमें लिखता है कि वेदोंका छंदोभाग ऐसा है कि जैसें अज्ञानीके मुखमें अकस्मात् वचन निकला

होवे ऐसा कहना बुद्धिमान मध्यस्थोंका जूठ नहीं हो सकता है; क्योंकि मोक्षमूलरनें बौद्धमतकी स्तुति सर्व मतोंसें अधिक लिखी है, इस वास्ते उनकों किसी मतका पक्षपात नही था, हकीकतमें वेदोके मंत्र असंबद्ध और पुनरुक्त अनर्थक हिंसकतो हमकोंभी मालुम होते हैं क्योंकि वेद एक जनके बनाये हूये नहीं. व्यासजीनें इधर उधर ऋषियोंसें श्रुतियां लेकर अपनी मति अनुसार बनाये है. इनकी उत्पत्ति आगे चलकर लिखेंगे. वेदमें कितनेक मंत्रोके ऋषि क्षत्रिय है, कितनेक शूद्रभी थे, कक्षिवत्. और विश्वामित्र ये क्षत्रि थे और कवष, एलुष ये शूद्र दासीपुत्र थे, इनकी कथा ऐत्तरेय ब्राह्मणमें है. तथा कितनेक प्राचीन आचार नरमेध १ गोमेध २ अश्वमेध ३ अनुस्तरणी ४ नियोग ५ शूलगव ६ देवरके साथ विवाह ७ द्वादश पुत्र ८ पलपैतृक ९ महाव्रत १० मधुपर्क ११ इत्यादि जैन वैष्णवमतकी प्रबलतासें बंदभी हो गये है, तोभी इन अनुष्ठानोंके मंत्र ब्राह्मण लोग पुण्य जानके पठन पाठन स्वाध्याय करते है. और यज्ञमें पशुकों बहुत क्रूरपणेसें मारके तिसके मांसका होम करके भक्षण करते है. यह बात बहुत लोगोंकों अछी नही लगतीहै के इसी तरें गोमूत्र, गौका गोबर, दूध, घी, दहीं एकठे करके देहशुद्धिके वास्ते पीते है परंतु यहबात जूठी है. लोगोंको इसपर श्रद्धा नही आती है.

वेदका वाममार्ग. इसीतरें प्रछन्नपणे काशी आदि शहेरोमें ब्राह्मण प्रमुख बहुत लोग वामी बन रहे है. अनेक जीवांकी हिंसा करते है. मांस खाते है, मदिरा पीते है. परंतु वामीयोंके शास्त्रमें गौकी बलि नही लिखी. गोमांसभक्षणभी नही लिखा. इस वास्ते वामीयोंका मत गोवधनिषेधके पीछे चला है. वाममार्गी जो कुकर्म नहीं करणा सो करते है, मांस मदिरा, परस्त्री, माता, बहीन, बेटीसें, भोग मैथुन सेवके मोक्ष मानते है.

देवीरहस्यमें लिखा है भंगिन, चमारी, ढेढनी, कसायन, कलालनी, धोबन, नायन, साहुकारकी स्त्री, इन आगेंको कुलयोगिनी कहते है. इनकी योनिकुं पूजा करते है. इनकी योनिको चूंबते है, योनिको जिव्हा लगाके मंत्र पढते है, इनसें भोग करते है, इन योनिके क्षालनजलको तीर्थोदक समजते है, तथा रुद्रयामलमें लिखा है. । वेश्याकों प्रयाग तीर्थ समान समजणा, और धोबनकों पुष्कर तीर्थ समान समजणा, और चमारी काशी तीर्थ समान जाननी, और रजस्वला अर्थात् ऋतुधर्मवाली स्त्रीकों सर्व तीर्थ समान समजनी; अर्थात् इनसें भोगकरनेंसें तीर्थ स्नान जैसा फल है इत्यादि विशेष वाममार्गका स्वरुप देखना होवेतो अहमदाबादके छापाको छपा आगम प्रकाश ग्रंथ देख लेना. इस वाममार्गके सर्व ग्रंथ ब्राह्मण और सन्यासी, परमहंस, परिव्राजक, और नाथोंके बनाए हुए है. इनकी ब्राह्मण निंदा नहीं करते है. बलकि हजारों ब्राह्मण इस मतकों मानते है.

इस प्रस्तावना के लिखनेका तो यह प्रयोजन है कि नास्तिक कौन है और आस्तिक कौन है. तथा जो कहते है जो वेदांको न माने वे नास्तिक है तो हम भव्य जीवांके जानने वास्ते वेदोंका हाल लिखते है, क्योंकि बहुत लोक नहीं जानते है कि वेदोंमें क्या लिखा है और जैनी वेदोंकों किस कारणसें नही मानते है. सो सर्व इस ग्रंथके वांचनेसें मालुम हो जावेगा.

इति तपगच्छीय श्रीमन्मणिविजयगणितच्छिष्यमुनि बुद्धिविजयशिष्यमुनिआत्माराम (आनंदविजय) विरचिते अज्ञानतिमिरभास्करे प्रथमखंडस्य प्रबोधिका संपूर्णा.

॥ श्री ॥

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

अज्ञानतिमिरभास्कर.

प्रथम खंड.

इस प्रथम खंडकी प्रवेशिकामें इस प्रथम खंडमें प्रवेश करनेके वास्ते जो जो विषयकी आवश्यकता थी सो सो विषय लिख दिया है. अब वेदमें क्या लिखा है आदि सर्व हकीकत उक्त वेदोंकी श्रुतियोंका प्रमाण सहित लिखा जायगा.

डाक्तर होग साहेबने ऐतरेय ब्राह्मण शुद्धि करके छप्पा है तिसमें अग्निका स्थापन, ऋत्विजका वर्णन सो सर्व इस तरें जानना.

अग्निका नाम.

१ आहवनीय   २ गार्हपत्य   ३ दक्षिणाग्नि

४ शामित्राग्नि

पुरोहितभेद.

१ अध्वर्यु   २ प्रतिप्रस्थाता   ३ अग्नीध्र

४ उन्नेता   ५ होता   ६ वैत्रावरुण

७ ब्राह्मणाछंसी   ८ नेष्टा   ९ पोता

१० अछावाक   ११ उद्गाता   १२ प्रस्तोता

१३ प्रतिहर्ता   १४ सुब्रह्मण्य   १५ ग्रावस्तोता

१६ ब्रह्मा   १७ सदस्य   १८ शमिता

१९ सोमक्रयी।

पात्रे व स्थाने.

१ इध्मा	२ वर्हि	३ धृष्णी
४ स्त्रुचा	५ चमस	६ ग्रावण
७ स्वरु	८ उपवर	९ द्रोणकलश
१० वायव्यकलश	११ ग्रह	१२ इडास्रुतु
१३ स्वधीति	१४ पुरोडाश	१५ पुतन्नृता

यज्ञशालाके न्नेद.

१ यज्ञशाला	२ महावेदी	३ अंतर्वेदी
४ वहिर्वेदी	५ शमित्रशाला	६ चत्वाल
७ संचार	८ प्राग्वंश	९ सद
१० मार्जालिया	११ आग्निध्रीयागार	१२ पत्नीशाला
१३ द्वार	१४ प्रतिग्वर	१५ यूप
१६ हविर्धान	१७ शालामुखी	१८ धर्म

अनुष्ठान विषे नाम.

१ दीक्षणीय ईष्टि	२ प्रायणीय ईष्टि	३ आतिथ्य ईष्टि
४ धर्म	५ अग्निषोमीया	६ पशु
७ सुत्या	८ प्रातः सवन	९ माध्यानसवन
१० तृतीय सवन	११ सोमपान	१२ आश्वीन पशु
१३ ऐंद्राग्न पशु	१४ अवन्नृत	१५ वरुणेष्टि
१६ वपायाग	१७ पशु उपाकरण	१८ पश्वालंन्नन

उक्त प्रमाणसें यज्ञकी क्रिया ओर सामग्री वताई है, दूसरी पंचिकाके आरंन्नमें ऐसा लिखा है !

१ यज्ञेन वै देवा ऊर्ध्वाः स्वर्गं लोकमायंस्ते विभयुरिमन् नो दृष्ट्वा मनुष्याश्च ऋषयश्चानुप्रज्ञास्यंतीति ॥ द्वितीय पंचिका प्रथम खंड ॥

भावार्थः—देव यज्ञ करके स्वर्गमें गये तिस वास्ते म
और ऋषीयोंने यज्ञ करणा और यूप स्थापन करणा. यूप अ
यज्ञार्थ जो पशु ल्याते है तिसके बांधनेका स्तंभ, पीछे तिस
शुके शमन अर्थात् मारणेकी आज्ञा लिखी है.

२. दैव्याः शमितार आरभध्वमुत मनुष्या इत्याह
अन्वेनं माता मन्यतामनु पितानुभ्राता सगर्भ्योऽनुसख
सयूथ्य इति जनित्रैरेवैनं तत्समनुमतमालभंत उदीचीना
अस्य पदो निधत्तात्सूर्यं चक्षुर्गमयताद्वातं प्राणमन्ववसृज
तादंतरीक्षमसुं दिशः श्रोत्रं, पृथिवीं शरीरं० ऐतरेयब्राह्म
ण २ पंचिका ६ खंड ॥

इसतरे इस वेदमंत्रसें पशुके मातापितासें प्रार्थना करते है
यह पशु हमको देउ तद पीछे अध्वर्यु अर्थात् मुख्य पुरोहित ति-
सकी आज्ञासें पशुको शमित्रशाला अर्थात् वध करनेकी शालामें
ले जा करके उत्तरकी तर्फ इसके पग राखके शमिता अर्थात् वध
करनेवाला पुरोहित तिस पशुकों मुष्टीसें गला घोंटके मारता है.
तद पीछे स्वधीती अर्थात् छुरा और इमासुनु अर्थात् लकडीका
हीमषा उपर तिस पशुकों डालके तिसको फाडके तिसका मांस
काटते है. तिसका होम करके जो मांस बाकी रहिता है तिसकों
र्व पुरोहितमें बांटा करते है अर्थात् तिस मांसके हिस्से करके
र्व ब्राह्मण बांट लेते है सो नीचे प्रमाणे श्रुतिसें जानना ॥

३ अथातः पशोर्विभक्तिस्तस्य विभागं वक्ष्यामो हनु
जिव्हे प्रस्तोतुः। इत्यादि ७ पंचिका १ खंड ऐतरेय ०

अर्थ—मांस काटके देना हनु जिव्हा सहित प्रस्तोताका हिस्सा
स्तोता उपर लिखे पुरोहितोंमें १२ बारवां। कंठ ककुद संयु-

क प्रतिहर्ता १३ को ॥ श्येन वक्ष उन्नाता ११ कों पुरोहित कों पासा सांस अध्वर्यु १ को दाहिना उपगाताकों। दाहिना अंस अर्थात् खन्ना प्रतिप्रस्थाताको दाहिना कटिका विन्नाग रख्या स्त्री ब्राह्मणो वरसक्थं ब्राह्मण ठंसिकों. उरु पोताकों दाहिनी श्रोणी होताकों अवर सक्थ मैत्रावरुणकों उरु अष्टावाककों दक्षिण बाहु नेष्टाकों इत्यादि पशुके अंग मांसका विन्नाग करके वांटना, ऐतरेय गोपथानुसार ॥ यज्ञपशुकों देवता स्वर्गमें ले जाते है तिस कहनेकी यह श्रुति नीचे लिखी है।

४ पशुर्वै नीयमानः समृत्युं प्रापश्यत् स देवान्नान्वकाम येतेतुं तं देवा अब्रुवन्नेहि स्वर्ग वै त्वा लोकं गमयिष्याम इति ॥ ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका २ खंड ६ छठेमें

न्नावार्थ—यज्ञमें आणेल पशु मृत्यु देखता है. मृत्युसें देवताकुं देखता है देवता पशुसें कहेता है कि, अम तुजकुं स्वर्गमें ले जाइंगी.

पशुकों फासके तिसके अंग काढनें तिसके कथन करमेवाली श्रुति नीचे लिखी जाती हैः—

५ अंतरेवोष्माणं वारयध्वादिति पशुष्वेव तत्प्राणान्दधाति श्येनमस्य वक्षः कृणुतात् प्रशसा बाहू शला दोषणी कश्यपेवांसाऽछिद्रे श्रोणी कवषोरू, स्रेकपर्णाऽष्टीवंता, षड्विंशतिरस्य वंक्रयस्ता अनुष्टयोच्यावयताद्, गात्रं गात्रम स्यानूनं ॥ ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका २ खंड ६ ॥

अर्थ—गतीमेंसे श्येन सरीखा मांसखंम काढना और कोहोवा मी सरीखा पीठले दोनों पगोमें दोटुकमे मांसके काढने और आगेके दोनो पगोंमेंमें तीर सरीखे दोटुकमे मांसके काढने और ख-

वामेंसें ऋतु समान दोटुकडे मांसके काढने पीछे संपूर्ण काढनी और जानुसें ढाल समान दो टुकडे मांसके काढने और इन पांशुलीयां-मेंसें अनुक्रमसें २६ छवीस टुकडे मांसके काढनें और वे सर्व संपू-र्ण होने चाहिये.

और जो कुछ मल मूत्र इत्यादि पदार्थ निकलेंगे वे सर्व जमीनमें गाडदेने चाहिये सो श्रुति कहनेवाली नीचे लिखते है.

६ ऊवध्यगोहं पार्थिवं। भावार्थ–उसका सब अंग पृथ्वीमें गाड देना. पंचिका २ खंड ६ ॥

होतार पुरोहित नीचे लिखे प्रमाणे बोलता है.

७ अध्रिगो शमीध्वं, सुशमी शमिध्वं शमीध्वमध्रिगा ३ उर्शति त्रिर्ब्रूयात् खंड ७ में.

अर्थ–अछीतरें मारो मारणेमें कसर मत रखनी।

रक्तलहु राक्षसकों दे देना कहा है। सो आगे श्रुति लिखी जाती है. ॥

८ अस्ना रक्षः संसृजतादित्याह। अर्थ–रक्तसें राक्षसकुं देना. खंड ७

पीछे कलेजेका होम वपाहोम जिसकों कहते है सो ईस-रीतीसें लिखा है सो श्रुति.

९ तस्य वपामुत्खिद्याहरंति तामध्वर्युः स्त्रुवेणाभिधार यन्नाह। अर्थ–तिसकी चरवी लेकर तिसमें अध्वर्यु स्त्रुवमे रखते है. खंड १२

१० सर्वमायुरेति य एवं वेद। अर्थ–ए आख्यान जे जा-नता है सो आयुष्य प्राप्त करते है.

इस आख्यानके जाननेका फल यही है कि आयुष्य वृद्धि

होती है तिसके कथन करनेवाली श्रुति नीचे लिखी जाती है.

वपायाग अर्थात् कलेजाका होम करेतो ऐसा फल श्रुतिमें नीचे लिखे प्रमाणे कहा है.

११ वपायामे हुतायां स्वर्गो लोकः प्राख्यायत । अर्थ—च रबीका होमसें स्वर्ग लोक मिलते है.

१२ सोऽग्नेर्देवयोन्यां आहुतिभ्यः संभूय हिरण्यशरीर ऊर्ध्वः स्वर्ग लोकमेति । अर्थ—अग्निसें देवयोनिमें आहुति डारनेसें हिरण्य शरीर प्राप्त करके ऊर्ध्व स्वर्ग लोकमें जाता है. पंचिका १४ खंड ॥

पशुका विभाग करना सो लिखा प्रमाणें ३६ छत्तीस विभाग करने चाहिये और ऐसें करें तो स्वर्गलोकमें जाते है और उक्त प्रमाण विभाग करनेकी रीति देवभाग ऋषीयोंने ठहराई. अब वे मरगये पीछे कोई देव गिरजा ऋषीकों बताई तिसका अभ्यास करना तिस विषयक ऐसा नीचे प्रमाणे लिखा है ॥

१३ तत् स्वर्गाश्च लोकानाप्नुवंति प्राणेषु चैवतत्स्वर्गेषु प्रातितिष्ठं तो यंत एतां पशो र्विभक्तिं श्रौत ऋषिर्देवभागो विदांचकार गिरिजाय वाभ्रव्यायऽमनुष्यः प्रोवाच ७ पंचिका १ खंड ॥

स्वर्ग लोकोंकुं प्राप्त होना है. प्राण स्वर्गमें चाल्या गया पीछे ए पशु होमका विभाग और देवभाग गिरिजा ऋषिकुं बतलाया सो अमनुष्य (देव) हो कर ते कहेता है.

हरिश्चंद्र नाम एक राजा था जिसके पुत्र नहीं था इस वास्ते वरुन देवकी आज्ञामें अजीगर्त ऋषिका पुत्र शुनःशेफ जिसका दृश्य मोल लेके जिसकों मारके यज्ञ करनेका विचार कराया, यह

कथा विस्तार सहित ऋग्वेदमें लिखी है वे श्रुतियों नीचे लिखी है.

१४ हरिश्चंद्रो हैवेधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस० ७ पं० खं० १३-१४-१५-१६ ॥

सर्व ग्रंथोमें जितने यज्ञ लिखे है तिन सर्वमें हिंसा है सोई मत्स्य पुराणमें कहा है ॥ हिंसा स्वभावो यज्ञस्य। अर्थ-हिंसा एज यज्ञका स्वभाव है.

इसतरें चारों वेदोमें श्रेष्ठ जो ऋग्वेद है तिसकों स्वरूप वर्णन लिखा. पीछे कृष्ण यजुर्वेद जिसकों तैतरीय कहते है और शुक्ल यजुर्वेद जिसकों वाजसनीय कहते है तिनका स्वरूप लिखुंगा.

कृष्णका यजुर्वेदका विचार. प्रथम तैतरीय ब्राह्मण वांचता ऐसा मालुम होता है कि इसवेदमें यज्ञ यजनकी क्रिया वहुत वडाई है और यज्ञ अनुष्ठानमें चारों वेदका काम पमता है तिनमें यजुर्वेदका वहुत काम पमता और यजुर्वेद पढा हुआ होवे तिसकों ही अध्वर्यु करनेमें आता है. तैतरीय यजुर्वेदके ब्राह्मणमें नीचे लिखी श्रुतियां है.

१ दैव्याः शमितार उत मनुष्या आरभध्वं ३ कांड ६ अध्याय ६ अनुवाक.

२. अध्रिगो शमीध्वम् सुशमीशमीत्वम् शमिध्वमध्रिगो ३ कां ६ अ. ६ अनु.

३. सायनाचार्यभाष्ये क्रूरकर्मेति मत्वा तदुपेक्षणं मान्भूदितिपुनः पुनःवचनं.

जिसतरें ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें पशु मारनेके वास्ते आज्ञा लिखी है तिसतरें इस वेदमें वचन लिखे है । सायन भाष्यार्थ. यद्यपि यह निर्दयपणाका काम है तोभी इनकी उपेक्षा

टपकावाला मींढा ये सर्व त्वाष्टा देवताके वास्ते यज्ञमें वध करे जाते है.

१५. इस यज्ञके करनेसें यह लोकमें तथा परलोकमें सुख मिलता है.

१६. ब्रह्म देवताके वास्ते ब्राह्मणकाभी यज्ञ होता है.

१७. अठारह पशुकाभी यज्ञ होता है.

यजुर्वेदके ब्राह्मणकी अनुक्रमणिका देखीये तो नाना प्रकारके यज्ञोंकी विधि मालुम होती है. तिसमेंसें कितनेक प्रकरण नीचे लिखे जाते है ।

संस्कृत नाम.	अर्थ.
१ सौत्रामणी	१ मदिरेका यज्ञ
२ सुराग्रह मंत्र	२ मदिरे पीणेका मंत्र
३ ऐंद्र पशु	३ इंद्र देवताके वास्ते बकरेका वध करणा
४ गोसव	४ गायका यज्ञ
५ अत्युर्याम	५ एक किसमके यज्ञका नाम
६ वायवीय श्वेत पशु	६ वायुदेवताके वास्ते बकरेका वध
७ काम्य पशु	७ मनोरथ पूरण करने वास्ते पशु यज्ञ
८ वत्सोपाकरणं	८ वछडेका वध करणा यज्ञ
९ पौर्णमासेष्टि	९ पूनिमके दिनमें करनेका यज्ञ
१० नक्षत्रेष्टि	१० नक्षत्रदेवताके वास्ते बकरेका यज्ञ
११ पुरुष यज्ञ	११ मनुष्यका यज्ञ
१२ वैष्णव पशु	१२ विष्णुदेवताके वास्ते बकरेका यज्ञ
१३ ऐंद्राग्न पशु	१३ इंद्र अग्नि देवताके वास्ते बकरेका यज्ञ
१४ सावित्र पशु	१४ सूर्यदेवताके वास्ते बकरेका वध

१५ अश्वमेध	१५ घोमेका यज्ञ
१६ रोहितादिपश्वालंभनं	१६ लाल बकरा वगैरे पशुयोंका यज्ञ
१७ अष्टादश पशुवि-धान	१७ अगारह पशुका यज्ञ
१८ चातुर्मास पशु	१८ चातुर्मासनामा यज्ञमें बकरेका वध
१९ एकादशीन पशुविधान	१९ इग्यारे पशुका यज्ञ
२० ग्रामारण्य पशुप्रशंसा	२० गाम तथा जंगलके पशुयोंका यज्ञ
२१ उपाकरण मंत्र	२१ पशुका संस्कार मंत्र
२२ गव्यपशुविधान	२२ गायका यज्ञ
२३ सत्र	२३ बहुत दिनतक चले सो यज्ञ
२४ ऋषभालंभन विधान	२४ बलद मारनेकी विधि
२५ अश्वालंभ मंत्र	२५ घोमे मारनेका मंत्र
२६ अश्वसंज्ञपनं	२६ घोमेके मारनेकी विधि
२७ अश्व मनुष्यअज गो पशु प्रशंसा	२७ घोमा, मनुष्य, बकरा, गौ इन सर्वके यज्ञकी विधि
२८ आदित्यदेवताक पशु	२८ सूर्यदेवताके वास्ते पशु यज्ञ
२९ सोमसव	२९ सोमदेवताके वास्ते यज्ञ
३० बृहस्पतिसव	३० बृहस्पति देवताका यज्ञ

उपर प्रमाणे अनेक यज्ञ याग इष्टि मख क्रतु उत्तरक्रतु सव इत्यादि अनेक प्रकारके याग वेदमें बतलाये है. तिन सर्वमें हिंसा पशुवध और मांसभक्षण प्राप्त होता है.

दयालु ईश्वर-के बनाये वेद नहीं है.

इस वास्ते वेद ईश्वर दयालुके बनाये कथन करे हूये नहीं है. इन पूर्वोक्त कथनोंसें तो ऐसा सिद्ध होता है कि वेद किनही मांसाहारी और निर्दय पुरुषोंके कथन करे हूये है. जेकर कोई कहे कि हम हिंसाका भाग छोड देवेंगे और अहिंसादि भाग अलग काढ लेवेंगे फेर तो हमारे वेद खरे अछे रहे जावेंगे इनको हम कहते हैवि०

उत्तर—जब तुम वेदोंमेंसे हिंसाके भाग काढ गेरोंगे तब तो पीछे कुछभी रहनेका नही क्योंकि जिसमें हिंसा न होवे ऐसा तो वेदका कोइभी भाग नही है.

तथा पशुके मारणेके वास्ते वेदमें पांच शब्द कहे है.

आलभन १ करण २ उपाकरण ३ शमन ४ संज्ञपन ५

मुन्तका यज्ञेश्वरशास्त्रीनें आर्यविद्यासुधाकर नामक ग्रंथ थोडे दिनोंमें प्रसिद्ध करा है. तिसमें अनेक प्रकारके यज्ञोंकी विधि है. पशुयाग अंग छेदन इत्यादिक वेदमें लिखे मूजब विधि बनाई है. तिसमें आलभन शब्दका अर्थ लिखा है. सो नीचे लिखेमें जानना.

उपाकरणं नाम देवकर्मोपयोगित्वसंपादकः पशोः संस्कारविशेषः पुनरस्मिंसंज्ञपन पर्यंतः क्रियाकलाप आलभनशब्देनाभिधीयते । प्रकाश २ पृष्ठ १ ॥

अर्थ—देवताके अर्थ पशुको संस्कार करके वध करे तहां तक जो जो क्रिया होती है तिन सबको आलभन कहते है.

नरमेधको कर्म जहां वेदमें लिखा है तिसमें अनेक प्रकारकी जातिके अनेक स्वरूपके अनेक पेशेके होमो दश आदमी २१२ लिखे है. ये सब पुरुष अर्थात् यज्ञस्तंभमें बांधे जाते है और तिनका मोक्षण पुरुषसूक्त मंत्रसें करणा लिखा है. तिनोंके अंगे पशुओंके बांधके छोड देना तिनको उत्सर्ग कहते है लिखा है परंतु

यह गौण पक्ष है, मुख्य पक्ष नहीं. कितनीक जगें विकल्प करके लिखा है परं मूल वेदके मंत्रमें आलम्भन इसी शब्दका प्रयोग है; तिस वास्ते मुख्य पक्ष हिंसाहीका मालुम होता है. इसीतरें यजुर्वेदांतरगत तैतरेय शाखाका ब्राह्मण जिसमें संहिताके मंत्रोंका विनियोग लिखा है तिसकों निश्चय करता सर्व यथार्थ मालुम पमता है. ।

इसी शाखाका आरण्यक दस अध्यायरूप है. तिन दसोंके अलग अलग नाम है. पांच उपनीषद् गिणनेमें आते है और पांच कर्मोपनीषद् गिणते है. तिनमें छठा ६ अध्याय पितृमेध विषे है. तिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य मर जावे तब किस रीतीसें बालना तिसकी विधि लिखी है. तिस उपर भारद्वाज तथा बौधायन सूत्र है तिसमें इस अध्यायमें जो जो मंत्र है तिनका उपयोग बतलाया है. तिसमें ऐसा लिखा है कि मुरदेके साथ एक गाय मारके तिसके अंग प्रेत अर्थात् मुरदेके अंगो उपर गेरणे. और पीछे चिताकों आग लगानी. और प्रेतकों गाडे में घालके अथवा शूद्रके स्कंधे उपर उठवाके ले जाना और इस मरणेवाले पुरुषकी स्त्रीकोंभी स्मशान तक साथ ले जाना और तिसकों ऐसा कहनाकि तेरा पति मर गया है इस वास्ते जेकर तूनें पुनर्विवाह करना होवेतो सुखसें करले, इसतरेंसें उपदेश करां पीछे पाछी ले आवनी ऐसें लिखा है. इस ग्रंथ उपर सायनाचार्यने भाष्य करा है. तिसमें तपशीलवार अर्थात् विवरणसहित वेदके सूत्र मेलके अर्थ व्याख्यान करा हूवा है. पुरुषके मरा पीछे तिनके बारवें दिनमें जब तथा बकरेके मांसका भक्षण मरणेवालेके संबंधियोंको कराना लिखा है. यह पुस्तक वेदके सर्व पुस्तकोंसें अधिक पवित्र गिणनेमें आता है. वैरी अर्थात् जैन बौद्धादि मतवाले शत्रुयोंके कानमें इसका एकभी शब्द पमने

नही देते है. और किसी एकांत स्थल जंगलमें पढनेमें आता है. वैयरी शत्रु और शूद्रके कानमेंभी नही पडने देते है. सन्नामें जब ब्राह्मण एकठे होते है तब संहितातो पढते है परंतु आरण्यक नही पढते है. पितृमेधके अध्यायमें जो गाय चालनी मुरदेकेसाथ लिखी है तिसके नाम नीचे मूजब समजणाः—

१ राजगवी. २ अनुस्तरणी. ३ सयावरी.

इस अध्यायमें कितनेक मंत्र नाष्य सहित नीचे लिखनेमें आते है.

१ परेयुवा १ संप्रवतो। तैत्तरेय आरण्यक अध्याय ६

॥ नाष्य ॥

पितृमेधस्य मंत्रास्तु दृश्यंतेऽस्मिन् प्रपाठके पितृमेधमंत्राविनियोगो नरद्वाजकल्पे बौधायनकल्पे चान्निहितः।

अर्थ—पितृमेधके मंत्र इस प्रपाठकमें दिखते है. और पितृमेध मंत्रोंका विनियोग नारद्वाज और बौधायन सूत्रोंमें कहा है,

२ अपेत दूहय दिहाविभः पुरा तै०आर ०अ ० ६

कल्प। दासाः प्रवयसो वहेयुः अथैनं अनसा वहंतीत्येकेषां

अर्थ—मुरदेको शूद्रवहे कितनेक कहते है गाममें घालकेलेजाना

३. इमौ युनज्मि ते वन्हि असुनी थाय वाढेवे

॥ नाष्य ॥

इमौ वलीवर्दौ शकटे योजयामि। यह दो वेल गाममें जोततांहुं.

४ पुरुपस्या सयावरी विते प्राणमसिस्रंसां आरण्यके

कल्प। अथास्याः। प्राणान्विस्रंसमाना ननु मंत्रयते हे पुरुपस्य सयावरी—राजगवी तव प्राणं शिथिलं कृतवानस्मि—पितॄन् उपेहि अस्मिन् लोके प्रजया पुत्रादिकया सह क्षेमं प्रापय॥

अर्थ—अब इस गायके प्राणाकों विनाश अर्थात् हनने दुर्थ

कों अनुमंत्रते हे अर्थात् मंत्रसें संस्कार करते हे. हे पुरुषकी स-यावरी अर्थात् राजगो में तेरे प्राणांकों शिथिल अर्थात् हणता हूं तूं पितरांको प्राप्त हो और इस लोकमें अपने संतान करके क्षेम-कों प्राप्त कर ॥

कल्प—अत्र राजगवी मुपाकरोति भुवनस्य पत्ते इति जरवीं मुख्यां तज्जघन्यां कृष्णां कृष्णाक्षीं कृष्णवालां कृष्णखुरामपि वा अजां वालखुरमेव कृष्णं एवं स्यादिति पाठस्तु तस्यां निहन्यमा-नायां सव्यानि जानून्यनुनिघ्नंतः ॥

अर्थ—भुवनपति कुं राजगवी देना. ओ राजगवी मुख्य हे काले नेत्रवाली और काले खरी और वालवाली गाय अथवा एसी वकरीवी लेना एसा पाठ हे. इसका जानु में मारना.

५ उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकं

॥ भाष्य ॥

हेनारि त्वं उत्तिष्ट. त्वं दिधिषो. पुनर्विवाहेच्छो पत्युः जनित्वं जायात्वं सम्यक् प्राप्नुहि ॥

अर्थ—हे स्त्री, तुम उठो. तेरी पुनर्विवाहकी इच्छा हे वास्ते पु-नःपतिका स्त्रीपणां अच्छीतरे प्राप्त करो.

६ अपश्याम युवतिमाचारंती ॥ ६ प्रपा० १२ अनु.

राजगव्या हननमुत्सर्गश्चेति द्वौ पक्षौ—तत्र हननपक्षे मंत्राः पूर्वमेवोक्ताः अथोत्सर्गपक्षे मंत्रा उच्यंते ॥

अर्थ—राजगवीका हणना और छोडना ऐसा दो पक्ष हे तिनमें हणनेका मंत्र आगे कहा हे, छोडनेका मंत्र कहते हैं.

७ अजोसि० हेपा १ सी

८ यवोसि० हेपांसी

सर्व पुस्तक देखा पीछे माध्यंदिनी शाखाकी संहिता वा-

चीस अध्यायकी है तिसके साथ चौदह अध्यायका शतपथ ब्राह्मण है तिसकों देखते है. तिसमें क्या लिखा और जो दयानंद सरस्वती स्वकपोलकल्पित वेदभाष्यभूमिकादिमें जगें जगें शतपथ ब्राह्मणकी साखी देते है सोभी मालुम पम जायगा कि शतपथ ब्राह्मणभी ऐसा हिंसक यजुर्वेदका हिस्सा है.

वेदका तीन भाग व्यासजी ने बनाया है.

ऐसा सुननेमें आता है कि व्यासजीनें ऋषियोंसे लेके सर्व वेद मंत्राको एकठे करके तिनके तिन ग्रंथ बनाये. एकका नाम ऋग्वेद रख्खा सो पैल ऋषिको दीनां. दूसरेका नाम यजुर्वेद रख्खा सो वैशंपायन ऋषिकों दीना-तिनके पास एक याज्ञवल्क्य नामका शिष्य था ते याज्ञवल्क्य तथा सर्व ऋषि आपसमें बहुत लडे तब याज्ञवल्क्यनें वेदविद्या वम दीनी तिस विद्याकों तीतरोंने चुगके गायन करी तिस्सेंतो तैतरेय कृष्ण यजुर्वेद तैतरेय ब्राह्मणादि बनायेगये. और याज्ञवल्क्यनें सूर्यकी उपासना करके नवां वेद रचा तिसका नाम शुक्ल यजुर्वेद रख्खा. शतपथ ब्राह्मणमें सर्वसें पीछेका यह वाक्य है सो नीचे लिखे जाता है.

१ आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषी वाजसनेयेन याज्ञवल्कीयेनाख्यायंते । शतपथ० १४ अध्या०

इस वेदकी संहितामें चालीस अध्याय है तिनकी अनुक्रमणिका.

दर्शपौर्णमास १-२	आधान ३
अग्नीष्टोम ४	आतिथ्येष्टि ५-६
उपांशुग्रहमंत्र ७	आदित्यग्रहमंत्र ८
राजसूयसौत्रामणि यज्ञ १०	चयन ११
चिति १२-१३-१४-१५	शतरुद्रीयमंत्र १६

चितिवसोर्धारा १७-१८	सौत्रामणी १९-२०-२१
अश्वमेध २२	अश्लीलनारायण २३
पशुप्रकरण २४	अश्वमेध २५-२६-२७-२८-२९
पुरुषमेध ३०-३१	सर्वमेध ३२-३३
पितृमेध ३४-३५	शांतिपाठ ३६
प्रायश्चित्त ३७-३८-३९	ज्ञानकांड ४०

इस वेद उपर भाष्य है. एक महिधरका, दूसरा मन्हटका तिसरा सायन, चौथा कर्क, इनके विना छिवेदांग और देवयाज्ञिक ये दो दूसरे है, ऐसें कहनेमें आता है, इस वेदमेसें कितनेक वाक्य नीचे लिखे जाते है.

१ ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुंचामिधर्षा मानुषः ६ अध्या०

हे देव हविः देवानां हविरूपयज्ञस्य पाशेन त्वां प्रतिमुंचामि। एवं पशुं संवोध्य मित्रे समर्पयति । व्यामद्वयपरिमितया कुशकृतया रज्वा नागपाशं कृत्वा श्रृंगयोरंतराले पशुं शगं वध्नाति पाशं प्रतिमुंचेदिति । सूत्रार्थः महीधर वेददीपे ६ षष्टे अध्याये ॥

भावार्थ—पशुकों भावकी रस्सीसें यूपके बांधणा और पीछे शामित्र अर्थात् मारणेवाले पुरोहितको सोंप देना ॥ और पशुकों कहना तूं देवका भक्ष है. ऐसें संबोधन करणा.

२ देवस्य त्वा सवितुः ० ६ अध्यायमें

यूपे पशुं वध्नाति इति सूत्रार्थः यूपमें पशु बांदे यह सूत्रार्थहै.

३ अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि ६ अध्याये

अग्निषोमदेवताभ्यां जुष्टमभिरुचितं पशुं नियुनज्मि वध्नामि।

अर्थ—अग्नि षोम देवतांको जिसकी रुचि है ऐसे पशुकों बांधताहुं.

४ अद्भ्यो स्वौषधीभ्यो अनुवामाता०

पशुं प्रोक्षणीभिः प्रोक्षतीति मेध्यं करोति । पशु ऊपर पाणी छांटी पोक्षण करना लिखा है.

५ वाचं ते शुंधामि । प्राणं ते शुंधामि०

पत्नि मृतस्य पशोः प्राणान्मुखादीन्यष्टौ प्राणा यतनानि प्रति मंत्रं शुंभाति अद्भिः स्पृशति

अर्थ—पशु मर गया पीछे यज्ञ करने वालेकी स्त्रीके हाथसें मार्जन करावना.

६ घृतेन द्यावापृथिवी०

ज्ञाप्य ॥ वपामुत्खिद्य—द्यावा पृथिवी इति । पशूदरात् वपां निष्काश्य आच्छादयेत् ॥

अर्थ—पशुकी वपा अर्थात् कलेजा काढके तिसके ऊपर घी गेरके तिसका होम करना.

७ अश्वस्तुपरोगो मृगस्ते प्राजापत्याः । २४ अध्याय

अश्वमेधिकानां पशूनां देवतासम्बन्धविधायिनोऽध्यायेनोच्यन्ते । तत्राश्वमेधएकविंशतिर्यूपाःसन्ति तत्रमध्यमे यूपे सप्तदशपशवोनियोजनीयाः । शतत्रयसंख्याकानां पशूनां मध्ये पंचदश पंचदश पशुनैकैकस्मिन्यूपे युनक्ति.

८ रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते रोहितः सर्वरक्तः ॥

धूम्रवर्णः इत्यादि पशुवर्णनं.

९ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो०

इत्यादि शुभ्रवालः मणिवर्णकेशः इत्यादि ॥

१० प्राश्निस्तिरश्चीनि०

विचित्रवर्णा

११ कृष्णग्रीवा आग्नेयाः ॥

कृष्णग्रीवाः इत्यादि आग्नेयाः

१२ उन्नत ऋषभो वामनस्त० ॥ उन्न ऋषभः त्रय ऐन्द्रा वैष्णवाः

१३ कृष्ण भौमा०

१४ धूम्रान्वसंतायालभते०

१५ अग्नयेऽनिकवते प्रथमजालभते०

१६ धूम्रा बभ्रुनिकाशाः पितृणां० । इत्यादि पशवः॥

१७ वसंताय कपिलानालभते०

अथारण्याः पशव उच्यन्ते कपिंजलादित्रयोदश

१८ सोमायहंसानालभते

१९ अग्नये कुकुटानालभते

२० सोमायलवानालभते०

२१ भूम्या आखूनालभते०

२२ वसुभ्य ऋश्यानालभते०

२३ ईशानाय परस्वत आलभते०

२४ प्रजापतये पुरुषान्हस्तिनालभते

२५ ऐण्यन्हो मण्डुको

२६ श्वित्र आदित्या मुद्रो

२७ खङ्गो वैश्वदेव

एवंत्रयधिकं शतत्रयमारण्याः सर्वे मिलित्वा षट् शतानि नवाधिकानि पशवो भवन्ति तेष्वारण्याः सर्वे उत्स्रष्टव्या नतु हिंस्याः

२८ देवः सवितः प्रसुवः। यजुर्वेद अध्याय ३०

इत उत्तरं पुरुषमेधः चैत्रशुक्लदशम्यारंन्नः अत्र यूपैकादशिनि न्नवन्ति एकादशाग्निषोमियाः पशवो न्नवन्ति तान्नियुक्तां पुरुषां सहस्रशीर्षा पुरुष इति आलंन्नक्रमेण यथादेवतं प्रोक्षणादिपर्यग्निकरणानन्तर इदं ब्रह्मणे इत्येवं सर्वेषां यथा स्वस्वदेवतोद्देशेन त्यागः ततः सर्वान्यूपेन्यो विमुच्योत्सृजति ततः एकादशनैः पशुन्निः संज्ञपनादि प्रधानयागांतं कृत्वा संन्यसेत् अथवा गृहं व्रजेत् इति महीधरन्नाष्यं.

२९ वहं वपा जातवेदः यजु० अध्याय ३५ मंत्र २०

मध्यमाष्टका गोपशुना कार्या तस्या धेनोर्वपां जुहोति वहं वपामंत्रेण ॥

सातवे मंत्रसें लेकर एकुनतीसवे मंत्र तकका न्नावार्थ लिखते है.

६०ए छत्तो नव अश्वमेधमें अन्य पशु चाहिये तिनके नाम लिखे है तिनमें अनेक रंगके बकरे और बलद तरेंह तरेंहके पक्षी तथा अनेरे छोटे जानवर मूसे तथा मेंरुक, ऊंट तथा गेंमा इत्यादि सर्व जातके पशुयोंका वध करणा लिखा है. वे सर्व ३०७ जंगलके जीव है वे छोम्देने, एसे न्नाष्यकार महीधर पंमितने लिखाहै और अठावीसमे मंत्रमें नरमेध चैत्र शुदि १० मी के दिनसें करना लिखा है. तिसमें पशुयोंकों बांधनेके इग्यारह ११ यूप स्तंन्न करणे और तिनसें इग्यारा बकरे तथा २०० दोसो माणस बांधके तिनका प्रोक्षण त्याग निवेदन करके जितने माणस बांधे होवे तिनकों छोम् देना और इग्यारह ११ बकरे जो शेष रहे है तिनका वध करके होम करणा ऐसें महीधर न्नाष्यकार लिखता है. और २९ एकुनतीसवे मंत्रमें माणसके दाह करनेके वखतमें गायकी वपा अर्थात् गायका कलेजा काढके होम करना लिखा है. इस

पूर्वोक्त अनुष्ठानका नाम पितृमेध है. जिस ठिकाने पशु शब्द आवे है तिस ठिकाने तिसका अर्थ बकरा करणा ऐसा जज्ञेश्वर शास्त्री आर्यविद्यासुधारक ग्रंथमें लिखता है ॥

यत्र पशुसामान्योक्तिस्तत्र छागः पशुर्ग्राह्यो भवति ॥

पृष्ट ७१ अर्थ–जिसमें सामान्य पशु ऐसा कहा है तिसमें मेंढा लेना.

यह यजुर्वेदमें के के जगे पर ऐसी बीभत्स श्रुतियां है कि अज्ञजनकोभी वांचनेसें बहुत लज्जा आवे. मर्यादासे अतिरिक्त कैसा कैसा बीभत्स वाक्य है सो पंडितजनको इस यजुर्वेदका तेइसवा अध्याय वांचनेसे मालुम हो जावेगा. इस अध्यायका इस जगे पर उतारा करनेको हमको बहुत लज्जा आती है.

यज्ञ करनेसें बडा पुण्य होता है ऐसा धर्मशास्त्र तथा पुराणोंमें लिखा है जहां कहीं बडे भारी पुण्यका वर्णन करा है तिस ठिकानें यज्ञकी तुलना करी है. और यज्ञ करनेसें इंद्रपदवी मिलती है तिस वास्ते इंद्रका नाम शतक्रतु अर्थात् सौ यज्ञ करनेवाला ऐसा अर्थ ब्राह्मण करते है. सर्व यज्ञोंमेंसे अश्वमेध यज्ञका फल बहुत बडा लिखा है. गंगाकी यात्रा करने जावे तो तिसको पिंगपिंगमें अश्वमेध यज्ञका फल लिखा है. " पदेपदे यज्ञफलमानुपूर्व्यां लभंति ते " । पाराशर अध्याय १ श्लोक ४०

तिस अश्वमेधका वर्णन ऋग्वेद संहिता अष्टक २ अध्याय १ वर्ग ७. ८, ९. १०. ११, १२, १३ में है सो नीचे लिखा जाता है.

अश्वमेध दीर्घतमा औचथ्यः त्रिष्टुप् ॥ एष छागपुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः । यदश्वस्य क्रविषो मक्षिका शयद्यास्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति । यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु । यद्-

वध्यमुदरस्या पवातिय आमस्य क्रविपो गंधो अस्ति ॥ सुकृता तच्छमितारः कृण्वंतूत मेधं शृतपाकं पचंतु। चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबंधोर्वंक्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ॥ अछिद्रा गात्रावयुना कृणोतपरुष्परुरनुघुष्या विशस्त। सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्रां उत विश्वा पुषंरयि ॥ अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान्। अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यंतिरेभा. ॥ उपप्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वां अच्छा पितरं मातरं च। आद्या देवाञ्जुष्टतमोहिगम्या अथाशास्ते दाशुपे वीर्याणि ॥

अर्थ—घोडेके आगे यह बकरा पूषा और अन्यदेवतायोंको वान्ने ल्याये हैं. इस घोडेका जो कुछ मांस मक्षीया खायेंगी और जो कुछ बुरेका लगा रहेगा और जो कुछ अश्वके मारनेवालेके नखोंमें रहेगा सो घोडेके साथ स्वर्गमें जावेगा. इस घोडेके पेटमेंसे जो कुछ कच्चा घास निकलेगा और जो कुछ काचा मांस निकलेगा सो स्वच्छ करके अच्छी तरें रांधना. घोडेके शरीरमें ३४ पांसलीयां हैं तिनमें छुरा अछी तरेंसे फेर फेरके कोई हिस्सा बिगाडना नही. अंग अलग अलग काटने. इस अश्वमेधके करनेसें हमको बहुत दौलत मिलेगी और गाय और घोडे और आरोग्य और सन्तान हमको प्राप्त होवेगे. घोडेके आगे बकरा बांधना और तिसके पीछे मंत्र पढनेवाला ब्राह्मण खडा रहे. इस घोडेके मारनेसे जहां इस घोडेके मातापिता है ऐसा जो देवतायोंका स्थानक तहां यह घोडा जावेगा, और होम करनेवालेको लाभ देवेगा.

अतीत कालमें भरत राजानें जिसके नामसें इस खंमको भरतखंम कहते है तिसने ५५ अश्वमेध यज्ञ करे, यह कथन ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें है.

भरतो दौष्यंतिर्यमुनामनु। गंगायां वृत्रघ्ने बनात्पंचपंचाशतं हयान्—महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः॥ ८ पंचिका, खंड २३.

अर्थ—दुष्यंतका लमका भरते गंगाका तीरपर पंचावन अश्वमेध कीया है. ए भरतका महा कर्म दुसरा किनेबी नहीं कीया है.

तथा रामचंद्र और पांमवोने अपनी हत्या उतारनेंको अश्वमेध यज्ञ करा ऐसे कथानक पुराणोंमें अनेक जगें लिखे है.

यजुर्वेदका शतपथ ब्राह्मण है और तिसके उपर कात्यायनी सूत्र है. ये दोनो ग्रंथ वमे महाभारत समान है. तिनमें तमाम यज्ञकी क्रिया बतलाई है. तिनकी हिंसक श्रुतियां सर्व लिखीये तो थक जाईये परंतु पूरी नही होवे. इस वास्ते पांच वाक्य लिखताहुं

१ पंचचित्तयः स्तय पशुशीर्षाण्युपधाय ॥ २ ॥ श्रितिःश्रिनोत्येतैरेव तच्छीर्षभिरेताकुसिंधानि संदधाति. अध्याय ६॥ १-४-११. ३ यदेकादशिनान्पशूनालभते–१३ अ १-१४-२॥ ४ शतमालभत॥ १३ अ० १-१४-४॥५ गव्या उत्तमेहन्नलभत १३ अ २-७-३ इति यजुर्वेदः

अथ सामवेदका वर्णन.

ताण्म महाब्राह्मण ॥ यह ग्रंथ सामवेदके अंतर्गत है. तिसके उपर सायनाचार्यका करा भाष्य है. यह सायनाचार्य ५०० वर्ष

पहिलां कर्णाटप्रांतमें विजयनगरमें बुक्क राजाका आश्रित था इसको माधवजी कहते है. और सन्यासी हुवा पीछे विद्यारण्य स्वामीजी कहते है. ईस ग्रंथमें अनेक क्रतुके ज्ञेद लिखे है तिनका नाम.

१ अग्निष्टोमादि सप्तक्रतु, १ औपसदक्रतु, १ चतुष्टोमक्रतु, १ छन्नाव्हलज्ञितक्रतु, १ इंद्रस्तोमक्रतु, १ निधनक्रतु, १ वशिष्ठक्रतु-चतुरात्र, १ विश्वामित्र संजय चतुरात्र, १ पंचशारदीय पंचरात्र, १ विश्वजित् एकादश रात्र, १ मह्याख्यक्रतु १ चैत्ररथक्रतु, १ गर्गक्रतु, १ अंगिरसामयनक्रतु, शतरात्रक्रतु, द्वादशसंवत्सरसत्र, पट्त्रिंसत्संवत्सरसत्र, सारस्वतसत्र, १ राटक्रतु, १ ज्योतिक्रतुः १ ऋषज्ञाख्यक्रतु १ कुलायाख्यक्रतु, १ त्रिककुक्रपद्रात्र, १ प्रजापतिसप्तरात्र, १ ऐंद्रसप्तरात्र, १ जनकसप्तरात्र, १ देवनवरात्र, १ विंशतिरात्र, १ त्रयस्त्रिंशतिरात्र, १ चत्वारिंशद्रात्र, १ एकषष्टिरात्रक्रतु, १ सहस्रसंवत्सरसत्र, सर्पसत्र, विश्वसृजमयनक्रतु, आदित्यपृष्ठ्यमयनक्रतु, संवत्सरसत्र.

सर्व सूत्रोंमें ब्राह्मणक्षत्रिय वैश्य इन त्रिवर्गका कर्म उपनयन विवाह अंत्येष्टि इत्यादि थोमासा फरकसें वताई है. यज्ञ करनेकाज्ञी इन तीनो वर्णको अधिकार है.

तांड ब्राह्मणके वचन नीचे लिखे है.

१ परिश्वौ पशून्नियुंजन्ति । अध्या. १७ खंड १३ मंत्र४

२ वैश्यं याजयेत १८-४-५

३ एतद्वै वैशस्य समृद्धं यत्पशवः पशुभिरेवैनं समेधयति १८-४-६

४ ज्योतिर्वा एषोऽग्निष्टोमो ज्योतिष्मंतं पुण्यलोकं जयति,यएवं विद्वानेतेन यजते १९–११–११

५ स्वाराज्यं गच्छति य एवं वेद १९–१३–२

६ परमेष्ठितां गच्छति य एवं वेद १९–१३–४

७ अथैष विघनः १९–१८–१

८ इंद्रोऽकामयत पाप्मानं भ्रातृव्यं विहन्यामिति स एतं विघनमपश्यत् १९–१८–२

९ एकादशना एकादश पशवः एकादश युपा भवन्ति २०–२–४

१० तया समुचतया रात्र्या यं यं कामं कामयते तं तमभ्यश्नुते य एवं वेद २०–२-५

११ अजोऽग्निषोमीय २१–१४–११

१२ ऐंद्रा मारुता उक्षणी मारुत्यो वत्सतर्यः २२-१४ ११

१३ पशुकामो यजेत् २२–६–२

१४ सोमपौषं पशुमुपालभ्यमालभेरन् २३-१६-४

एक एक क्रतु करनेमें फल लिखा है. किसीसे इंद्रपद, किसीसे ब्रह्माका पद, किसीसे प्रजा, पशु. अन्न, राज्य, अधिकार इत्यादि प्राप्त होते हैं. सो विशेष करके अर्थवादरूपसें प्राचीन इतिहास कल्पित लिखे है कि प्रजापतिने वर्षा रोकी तब अमुक यज्ञ करा तो वर्षा हूई. जानवरमरीमें जानवरोंका रुद्रदेवता पशुपति तिसके वास्ते यज्ञ करा तब जानवर मरते रह गये, और वृद्धि हूई. ऐसी

ऐसी कथाभी लिख छोडी है. तिससें कर्मका प्रयोजन बांधा है. विधान और मंत्र विनियोग लिखा है. इसीतरें अनेक प्रकारके क्रतु चारो वेद और सूत्रोंमें लिखे है. वेद और सूत्रोंमें यही विषय सर्व ठिकाने है.

उपर लिखी १४ श्रुतियांका अर्थः–

१ यूप न होवे तो परिधिक जानवर बांधना. १७–१३–४
२ वाणियेंनेभी यज्ञ करना. १८–४–५
३ तिससें वाणीयेकी लक्ष्मीकी वृद्धि होती है. १८–४–६
४ अग्निष्टोम यज्ञ करनेसें मनुष्य पुण्यलोकमें जाता है १९–११–११
५ यह बात जो जानता है सो स्वर्गमें जाता है. [illegible]–१३–[illegible]
६ ब्रह्मदेवके स्थानमें जाता है. १९–१३–७
७ विघन यज्ञ बताता हूं. १९–१८–१
८ पूर्वे इंद्र देवें इच्छा करी कि अपना शत्रु किस रीतिसें मरेगा तब तिस इंद्रनें यह यज्ञ विधिसें करा. १९–१८–१
९ इग्यारे रस्सोंसें इग्यारे पशु इग्यारे यूपसें बांधने २०-२-४
१० यह यज्ञ करें मनोकामना सिद्ध होती है. २०–२–५
११ अग्निषोम देवनें बकरा देना. २१–१४–११
१२ इंद्र और मरुत देवको गाय देनी और मरत देवको वछ्डा देना. २२-१४-११.
१३ जिसको पशुयोंकी वृद्धिकी इछा है तिसने यज्ञ करणा २२–६–२
१४ सोम अने पूषा देवतायोंके अर्थे पशु मारणा. २३–१६–४

इसी तरह सामवेदकी संहिता और तिसके अंतर्गत आठ

ब्राह्मणोमें यज्ञक्रिया लिखी हूई है. इस वास्ते अधिक लिखनेसें कुछ प्रयोजन नही.

चौथा वेद अथर्वण और तिसके अंतर्गत गोपथ ब्राह्मण इन दोनो ग्रंथोमें ऐसा हि विषय है, और बहुलता करके एक वेदके मंत्र दूसरे वेदमें इसी मूजब भेल संभेल हूआ होया है. तिसके जनावने वास्ते गोपथ ब्राह्मणमेंसे तीन वाक्य नीचे लिख दिखाते है.

१ ॐ सा ऽ सीयंन्ति वा आहिताग्नेरग्नयः त एनमेवाग्नेऽभिध्यायन्ति यजमानं च एतमैन्द्राग्नं पशु षष्टे षष्टे मासे आलभते ॥ गोपथ ब्राह्मण द्वितीय प्रपाठक ॥ २ ॥

भावार्थः—प्रत्येक छ छ मासमें ऐंद्राग्नि देवताकी प्रीति वास्ते पशु बकरेका वध करके यज्ञ करणा. गोपथ ब्राह्मणके २ प्रपाठकमें कहा है.

२ अथातः सवनीयस्य पशोर्विभागं वक्ष्यामः। उद्धृत्यावदानानि ॥ हनू साजिह्वे प्रस्तोतुः कण्ठः सकाकुदः प्रतिहर्तुः श्येनं वक्ष उद्गातुर्दक्षिणं पार्श्वं सांसमध्वर्योः सव्यमुपगातृणांसव्योंऽसः प्रतिप्रस्थातुर्दक्षिणा श्रोणि रथ्या स्त्री ब्रह्मणो वरसक्थं ब्राह्मणाछंसिनः उरुः पोतुः सव्याश्रोणि होतुरवसक्थं मैत्रावरुण्यो रुरछावकस्य दक्षिणा दोर्नेष्टुः सव्या सदस्यस्य सदञ्चानूकञ्च गृहपते जाघनी पत्न्यास्तांसा ब्राह्मणेन प्रतिग्राहयति वनिष्टुर्हृदयं वृक्कौचाङ्गुल्यानि दक्षिणो बाहुरग्नीध्रस्य सव्य आत्रेयस्य दक्षिणौ पादौ गृहपते व्रतप्रदस्य सव्योपादौ

गृहपत्न्या व्रतप्रदायाः सहैवैनयोरोष्ठस्तं गृहपतिरेवानु शास्ति मणिजाश्च स्कन्धास्तिस्त्रश्च ग्रावस्तुतस्तिस्त्रश्चैकीकसा अर्द्धञ्चापानश्चोन्नेतुरत उर्द्धं चमसाध्वर्यूणां क्लोमाः शमयितुः शिरः सुब्रह्मण्यस्य यश्चसुत्यामाहूयते तस्य चर्म इत्यादि। गोपथ ब्रा० १ प्रपाठ खंड १८

इसका भावार्थः—प्रस्तोता प्रतिहर्ता उद्गाता अध्वर्यु उपगाता प्रतिप्रस्थाता ब्रह्मा ब्राह्मणाछंसीहोता मैत्रावरुण अछावक नेष्टा सदस्य आग्नीध्र ग्रावस्तोता उन्नेता अध्वर्यु शमिता सुब्रह्मण्य गृहपते व्रतपद प्रमुख यज्ञ करनेमें मददगार जो पुरोहित उपर लिखे है वे सर्व जिसतरें यज्ञमें वधकरे पशुके अंग आपसमें छुरीयोंसे काट काटके वांटा करते है जो जो अंग हनु सजिव्हा प्रमुख जिसजिसके वांटेमें आता है तिन पुरोहिताका और तिन अंगाका नाम लिखा है, और यज्ञ करने वालेकी प्रशंसा लिखी है.

२ अथातो यज्ञक्रमा अग्न्याधियमग्ना धीयात्पूर्णाहुति। पूर्णाहुतेग्निहोत्रमग्निहोत्राद्दर्शपौर्णमासौ दर्शपौर्णमासाभ्या माग्रयणं आग्रयणाच्चातुर्मास्यानि। चातुर्मास्येभ्यःपशुवन्धः पशुवंधादग्निष्टोमो अग्निष्टोमाद्राजसूयो राजसूयाद्वाजपेयः। वाजपेयादश्वमेधः। अश्वमेधात्पुरुषमेधः। पुरुषमेधात्सर्वमेधः। सर्वमेधाद्दाक्षिणावन्तो। दक्षिणावद्भ्यो दक्षिणाअदक्षिणा सहस्रदक्षिणे प्रत्यतिष्ठंस्ते वा एते यज्ञक्रमः ॥ ५ प्रपाठक ७ खंड ॥

इनका अर्थ सुगमही है इसवास्ते नही लिखा है. उपर लिखे प्रमाणे यज्ञका विस्तार बताया है. सो चारों वेदोंमें एक

सरीखा है. शाखाभेद वा वेदके भेदसें कर्मकांडमें थोडासा पर-
चूरण वातोंमें फर्क है. कोइ कहता है, घीका वासन वामें पासे
रखना कोइ दाहने पासे रखना कहता है. कोइ खडा होके मंत्र
पढना कहता है. कोइ बैठके पढना कहता है. ऐसी ऐसी वातोंमें
फेर है. इसीका ब्राह्मणोंकों आग्रह है. ब्राह्मण विना औरोकों वेद
पढनेकी आज्ञा नही । इति अथर्वण वेदः ॥

अथ वेदोत्पत्ति.

मूलमें वेदके मंत्र एकके वनाये नही है. अनेक ऋषियोंने
वेद मंत्र वनाये है. अनेक ऋषियोंके पास थे. वेद परमेश्वरके व-
नाये हूये नही किंतु अनेक ऋषियोंके वनाये हूये है. पूर्वमीमांसा
के कर्ता वेदोंकों ईश्वरके कहे मानते है, परंतु यह मत वहुत पु-
राणा नही और वनानेंवाले ज्ञानीभी नही थे किंतु अज्ञानीयो
समान थे, ऐसा मोक्षमुलर पंडित अपनें वनाये संस्कृत साहित्य
ग्रंथमें लिखता है. अथाग्रे वेदके कर्ता ऋषि है. ऐसें वहुत जगें
वेदोंमें लिखा है. शौनकोक्त सर्वानुक्रमपरिशिष्ट परिभाषा खंडमें
लिखा है—

यस्य वाक्यं स ऋषिः या तेनोच्यते सा देवता यदक्षर
परिमाणं तच्छंदः तथा नमो वाचस्पतये नम ऋषिभ्यो मं-
त्रकृद्भ्यो मंत्रपतिभ्यो मामामृषयो मंत्रकृतो मंत्रपतयः प-
रादुर्मा ॥ तैतरेय आरण्यके ४ प्रपाठक १ अनुवाक १.

ऋग्वेदसंहितामें वहुत जगे ऐसें लिखा है कि वेदमंत्र ऋ-
षियोंनें उत्पन्न करे हैं. तिनमेंसें एक वचन नीचे लिखा जाता है.

ऋषेमंत्रकृतास्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः ॥

जो कहते है वेद ब्रह्माके मुखसें उत्पन्न हूये है तिसका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण जो है वे ब्रह्माका मुख है इसवास्ते जो कुछ ब्राह्मणोंने कहा सो ब्रह्माके मुखनें कहा. शौनक ऋषिनें जब वेदोंका अनुक्रम लिखा तब उसनें ऐसा ठहराव करा वेद मंत्रमें जिस पदार्थका नाम आवे सो तिस मंत्रका देवता इस वास्ते कितनेक मंत्रोका धाम देवता ठहराया. कितनेक मंत्रोका मेंडक देवता हूआ. इसी तरें अग्नि, मरुत, इंद्र, वरुण, सूर्य, प्रजापति धुरीलोचन, यनुर्वेद नान्दीमुख, पुरुर्वाश्व इत्यादिक अनेक देवते ठहराये तिनकी भक्ति, यज्ञ और होमद्वारा करनी ठहराई है. जिस ऋषिने जो मंत्र बनाया सोइ तिस मंत्रका ऋषि ठहराया. और जैनमतवाले जिस तरें वेदोंकी उत्पत्ति मानते है सो जैनतत्वादर्श नाम पुस्तकमें लिखी है. परंतु यहांतो जिस तरेंसें ब्राह्मण लोक वेदोंकी उत्पत्ति मानते है और जैसा हमनें निगमप्रकाशादि पुस्तकोंमें लिखा देखा है तेसें ही लिखेंगे. जैसे गीतामें लिखा है.

"ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक् "

अनेक छंदमें ऋषियोंने गायन करा और ऋषि ईश्वर के मुख है सो भारतमें लिखा है.

"ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रं कृत्स्नमुरुदरं विशः पादौ यस्याश्रिताः शूद्रास्तस्मै वर्णात्मने नमः " अर्थ—ब्राह्मण जिसका मुख है. क्षत्रिय भुजा है. वैश्य उदर है और जिसका पांव शूद्र है एसा चार वर्णरूप विष्णुमें नमस्कार है. मोक्षधर्मपर्व १८

इस वास्ते वेदमंत्रोंके कर्ता ऋषि है ये सर्व मंत्र व्यासजीने एकत्र करके चार वेदकी संहिता बांधी और अपने जो शिष्य थे तिनमेंसें चार जनाकों एकेक संहिता पाठ करी तिनके नाम.

पैलऋषिकों ऋग्वेद दीना १ ऐतरेय २ भेद ८॥ वैशंपायनकों यजुर्वेद १ तैतरेय २ भेद ८६ जैमिनिकों सामवेद १ ताणु २ भेद १००० सुमंतुकों अथर्व वेद १ गोपथ ब्राह्मण २ भेद ९॥ सो एकेक आचार्यके पेटेमें अनेक भेद उपर लिखे प्रमाणे शाखाके हूये है तिनकी संख्या प्राचीन ग्रंथोमें लिखी है. जित प्रमाणें शाखा लिखी है तेती अब देखनेमें नही आती है. परंतु वर्तमानमें जो शाखा मिलती है तिनके नाम आगे लिखे जाते है.

ऋग्वेद—सांख्यायनी १ शाकल २ वाष्कल ३ आश्वलायनी ४ मांडुक ५. यह पांच शाखा ऋग्वेदकी इस कालमें मालुम होती है.

यजुर्वेद कृष्ण तैतरेय। आपस्तंब १ हिरण्यकेशी २ मैत्राणी ३ सत्यापाढ ४ बोधायनी ५ ये पांच कृष्णयजुर्वेदकी शाखा है. यजुर्वेद शुक्लवाजसनेयी याज्ञवल्क्यने करा तिसकी शाखा कण्व १माध्यंदिनी २ कात्यायनी ३ सर्व यजुर्वेदकी ८ शाखा॥

सामवेद—कौथुमी १ राणायणी २ गोभिल ३।

चौथा अथर्व वेद—तिसकी शाखा दो पिपलाद १ शौनकी २॥

एकेक शाखाके जो आचार्य हो गये है तिनोने अपनी अपनी शाखाके वास्ते एकेक सूत्र बनाया है तिसके अनुसार ब्राह्मण लोग यज्ञादि कर्म करते है। तिससें हरेक ब्राह्मणका नाम होता है तिसका वेरवा तपसीलवार नीचे लिखा जाता है.

नाम १ उपनाम २ गोत्र ३ प्रवर ४ सूत्र ५

दामोदर पंड्या कपि अंगीरस आमहियव ऋक्षयस सांख्यायन

वेद ६	शाखा ७	मत ८	कुलदेव ९	जाति १०
ऋग्	सांख्यायन	स्मार्त	शिव	नागर

वैशंपायन ऋषि और याज्ञवल्क्य ऋषि आपसमें लडे तिसमें यजुर्वेदमें शुक्ल यजुर्वेद उत्पन्न हूआ. तिसमें १७ शाखा है. तिनका नाम वाजसनेय पडा तिनमेंसें पंदरांका तो ठिकाना

नहो है और दो शाख चलती है. तिनका नाम कण्व और माध्यंदिनी.

वेदके हिस्से हेठ लिखे जाते है.

संहिता १ ब्राह्मण २ आरण्य ३ उपनीषद् ४ परिशिष्ट ५ इनमें चौथे और पांचमें भागमें सेलभेल बहुत हूआ है. जिसकों वेदका आश्रय चाहियेथा तिसनें यह ग्रंथ नवीन रच लीया इस बातमें प्रमाण अल्लोपनिषदका. यह उपनिषद अकबर बादशाहे बनवाई है.

तथा ॥ त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति मंत्रब्राह्मणकल्पैश्च ॥ वेदतुल्य इति यास्काचार्येणोक्तः ॥

अर्थः—यज्ञरूपी धर्म, मंत्र ब्राह्मण और कल्प ये तीन पुस्तकसें होता है. इस वास्ते कल्प अर्थात् सूत्र जे है वे वेद तुल्य है. ऐसें यास्काचार्यने लिखा है. इस वास्ते प्रथम ऋग्वेदका सूत्र आश्वलायन तिसके उदाहरण लिखते है. हरएक शाखाका सूत्र है तिसमें दो भाग होते है. एक श्रौत १ दूसरा गृह्य २. तिनमें श्रौतमें तो यज्ञक्रिया लिखी हूई होती है, और गृह्यमें गृहस्थका धर्म लिखा हूआ होता है. इस ग्रंथकों स्मृतिमें गिणते है. परंतु अन्य ग्रंथोंसें सूत्रकी बडी योग्यता है. सूत्र वेदतुल्य गिना जाता है. अनेक शाखाके अनेक सूत्र है. तिन सबका विषय एक तरेका है. तिस वास्ते इन सूत्रोमेंसें प्रथम आश्वलायन शाखाका श्रौतसूत्र तिसके वाक्य लिखते है. इसमें यहभी मालुम पड जावेगाकी जो दयानंद सरस्वतीजीनें अपने बनाये वेदभाष्यभूमिकामें लिखा है कि अग्निहोत्रसें लेके अश्वमेधके अंत पर्यंत जोजो कर्म करते है वे सर्व श्रौत गृह्य सूत्रोंसें करणे. यहभी मालुम हो जावेगा कि श्रौत गृह्य सूत्र ऐसे दयाधर्मीके बनाये हूये

है. स्वामि दयानंदने जब वेदोंके मंत्रोंके अर्थ स्वकल्पनासें बदल डाले तो सूत्रोंकी क्या गिनती है. यहतो सत्य है परंतु जो निःपक्षपाती है वे तो विचार करेंगे कि यह सूत्र दयाधर्मी आस्तिकोंके बनाये है, वा निर्दयोंके बनाये है. प्रथम आश्वलायनश्रौत सूत्रम्

१ दैव्या शमितार आरभत्वं० १ अध्याय ३ कं.

२ दैवतेन पशुनात्वं, ३ अध्याय ७ कं.

३ षाण्मास्यः सांवत्सरोव ३-८

सोऽयं निरूढपशुः षट्सु षट्सु मासेषु कर्तव्यः । संवत्सरे संवत्सरे वा । नारायणवृत्तिः ॥

४ सौत्रामण्यां ३-९

५ आश्विनसारस्वतैंद्राः पशवः वार्हस्पत्यो वा चतुर्थ. ऐंद्रसावित्रवारुणाः पशुपुरोडाशाः ३-९

६ दर्शपौर्णमासाभ्यामि ष्टेष्टि पशु चातुर्मास्यैरथ सोमेन ४-१

७ अथ सवनीयेन पशुनाचरंति ५-३

८ अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थः षोडशी वाजपेयो अतिरात्रोऽप्तोर्याम इति संस्थाः ६-११

९ आग्नेयैंद्राग्नैकादशिना पशवः उत्तरषट्क ३-२

१० वायव्यपशुः उत्तरषट्क ३-२

११ सज्ञप्तमश्वं पत्न्यो धून्वंति उत्त० ४-८

१२ तस्य विभागं वक्ष्यामः उत्त० ६-९,

अर्थ—१ पशुकों मारो. २ देवतायोंको अलग अलग तरेके पशु चाहिये. ३ छठे महिने कि वरसोवरसें निरूढ पशु करणा.

४ सौत्रामणी अर्थात् मदिरे पीनेके यज्ञका विधान. ५ आश्विन, सारस्वत, इंद्र इन तीनों देवतायोंके वास्ते पशुका बलिदान देना. और बृहस्पतिको चौथा पशु देना इंद्र, सविता तथा वरुण इन देवतायोंकोभी पशु देना चाहिये.

६ पूनम तथा अमावासके दिनमें और चातुर्मास अनुष्ठानमें पशु मारणा.

७ सवनी अनुष्टानमें पशुवध करणा.

८ सात यज्ञांकी संस्था कहते है. तिनके नाम अग्निष्टोम १ अत्यग्निष्टोम २ उक्थ ३, षोडशी ४, वाजपेय ५, अतिरात्र ६, अप्तोर्याम ७,

९ अग्नि तथा इंद्राग्नि इन देवतांको इग्यारा पशु चाहिये.

१० वायु देवतांको एक पशु चाहिये,

११ मरा हुआ घोडा और यज्ञ करनेवालेकी स्त्री दोनोंको वस्त्र नीचे ढांकना.

१२ वध करे हूए पशुके टुकडे करके यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण आपसमें कौन कौनसें बांटा करणा तिसका प्रकार कहा है.

आश्वलायन श्रौतसूत्रके बारां अध्याय है तिनमें छमें पूर्वक्रतु-का स्वरूप लिखा है, और अन्य छमें उत्तरक्रतु लिखे है तिनके नाम—

१ राजसूय, २ गवामयन, ३ गोमेद, ४ अश्वमेध, ५ अंगिरसक्रतु, ६ शाकमेध, ७ पंचशारदीय, ८ विश्वजित्, ९ पौंड्रिक, १० सत्रद्वादशाह, ११ संवत्सरसत्र, १२ महाव्रत, १३ रात्रिसत्र, १४ शतरात्र, १५ स्तोम, १६ द्वादशसंवत्सर, १७ सहस्रसंवत्सर.

आश्वलायन श्रौतसूत्र उत्तरषट्क ६ अध्यायमें कंडिका.

१३ चैश्वकर्मणमृषभं महाव्रते ॥ नारायण वृत्ति । ए ते सर्वे गोपशवः ८ अन्वहं चैककश एकादशिनाम् ॥ नारायण वृत्ति । एकादशिनामेव एकैकमादित आरभ्य अहन्यहनी क्रमेणालभेरन्.

उत्तरषट्क ३ अध्यायमें। सूर्यस्तुतायशस्काम.—गोसव विवधो पशुकामः—वाजपेयेनाधिपत्यकामः—अध्याय ४ में ज्योतिर्वृद्धिकामस्य नवसप्तदशः प्रजापतिकामस्य । पंचमें अध्याये । आङ्गिरसं स्वर्गकामः—चैत्ररथमन्नाद्यकामः—अत्रेश्चतुर्वीरं वीरकामः—जामदग्नंपुष्टिकामः ऋतूनां षडहं प्रतिष्ठाकामः—संभार्यमायुष्कामः—संवत्सरप्रवल्हं श्रीकामः अथ गवामयनं सर्वकामः—

अर्थ—महाव्रत यज्ञमें ऋषभ अर्थात् बलद देना चाहिये। आश्वलायन.

पशु एकादशीमें नित्य एक एक पशु मारणा. आ०
सूर्यस्तुता यज्ञ करे यश मिलता है. आ०
गोसव यज्ञ करनेसें पशु प्राप्ति होते हैं. आ०
वाजपेय यज्ञ करनेसं अधिकार मिलता है. आ०
ज्योति यज्ञ करनेसें समृद्धि होति है. आ०
नवसप्त दश यज्ञ करनेसें प्रजा होती है. आ०
आङ्गिरस यज्ञ करनेसें स्वर्ग प्राप्त होता है. आ०
चैत्ररथ यज्ञ करनेसें धान्यवृद्धि होती है. आ०
अत्रेश्चतुर्वीर यज्ञ करनेसे धर्यवृद्धि होती है आ०

जामदग्न्यसें प्रकृति अछी होती है. आ०
पडङ्गयज्ञ करनेंसें प्रतिष्टा मिलती है. आ०
सँत्रार्य यज्ञ करनेंसें आयुष्य प्राप्ति होती है. आ०
संवत्सर प्रवर्द्ध करनेंसें लक्ष्मी मिलती है. आ०
गवामयन यज्ञ करनेंसें सर्व कामना सिद्ध होती है. आ०

इसके विना चार अध्याय गृह्यसूत्रके है. तिनमें गृहस्थ का धर्म लिखा है. गृह्यमें और श्रौतमें इतनाही फरक है कि जो ब्राह्मण एक अग्निको कुंरू जिसका नाम स्मार्ताग्नि जिसमें रखते है तिनका नाम गृहस्थ। यह अग्नि लग्न विवाहके दिनमें उत्पन्न होती है. और जो गृहस्थ तीन अग्नि उत्पन्न करके अग्निहोत्र लेता है, तिसकों श्रौताग्नि कहते है. तिनका नाम.

दक्षिणाग्नि—गार्हस्पत्य—आहवनीय.

ऐसे अग्निहोत्रीकों यज्ञ करनेका अधिकार है। तिस अग्निहोत्रीके कर्म श्रौतसूत्रमें वर्णन करे है. और गृहस्थाश्रमीका धर्म गृह्यसूत्रमें है। बहुते गृहस्थ हालमें अग्नि उपासना करनें वास्ते रखते नही है। तिस बाबतका प्रायश्चित करते है। जिस दिन तक जो गृहस्थ अग्नि न रखे सो शूद्र हो जाता है ऐसें धर्मशास्त्रमें कहा है. गृहस्थाश्रम विवाहदिनमें शुरु होता है. और लग्न हुआ पीछे प्रजा उत्पन्न होती है तिस प्रजाके ब्राह्मण बनाने वास्ते सोलें संस्कार लिखे है. गृह्यसूत्रमें यह संस्कार लिखे हूए है, तिनका नाम ॥

गर्भाधान—पुंसवन—जातकर्म—अन्नप्राशन—चूडा—उपनयन —विवाह—अंत्येष्टि—इत्यादि लिखे है ॥

आश्वलायन आचार्यका सूत्र केवल ऋग्वेदका सार है, ऐसा-

कहा जाता है. तिसका श्रौत न्यागका स्वरूप उपर लिखा है. और अग्निहोत्रिके विना गृहस्थका धर्म गृह्यसूत्रमें किस रीतीका वर्णन करा हूआ है, तिसका स्वरूप नीचे लिखा जाता है.

१ अथ पशुकल्पः १अ-११-१.

२ उत्तरतो अग्नेः शामित्रस्यायतनं कृत्वा । पशुमाल्याव्य । सपलाशयार्द्रशाखया पश्चादुपस्पृशेत् । त्वाजुष्टं उपाकरोमीति । १—११—१

३ व्रिहीयवमतिभिरद्भिः पुरस्तात् प्रोक्षति अमुष्मै त्वाजुष्टं प्रोक्षामि १—११—१

४ अत्रैव पर्यग्नि कृत्वोदञ्चं नयंति १-११-५.

५ तस्य पुरस्तादुल्मुकं हरन्ति ॥ १-२१—६.

६ शामित्रएप भवति.

७ वपाश्रपणीभ्यां कर्ता पशुमन्वालभते ॥ १-११-८

८ पश्चाच्छामित्रस्य प्राक्शिरसंप्रत्यक्शिरसं वोदक् पादं संज्ञप्य पुरानाभेस्तृणमंतर्धाय वपामुत्खिद्य १-११-१०

नारायणवृत्ति ॥ शामित्रस्य पश्चिमे देशे बर्हिरूपस्तृणतिकर्ता ॥ तं यत्र निर्हनिष्यन्तो भवंति तदध्वर्युर्बर्हिरधःस्तादुपास्यति इति श्रुतेः॥ततस्तस्मिन् बर्हिपि प्राक्शिरसंवोदक् पादं पशुं शमयति शमिता वपास्थानंज्ञात्वा तिर्यक् छित्वावपांउद्धरेत्शामित्रे प्रताप्यतां वपामभिधार्यजुहुयात्॥

१. अर्थ–गृह्यसूत्रके प्रथमाध्यायकी इग्यारमी कांन्किाके प्रथम सूत्रमें पशुके यज्ञकी विधि विधान लिखा है.

२ अग्निके उत्तर पासे पशु वध करनेकी जगा बनानी और पशुकों स्नान कराणा और पलाशकी गीली मालीसें तिसका स्पर्श करणा और कहना कि तूं देवका न्नक्ष है. इस वास्ते तुज कों न्नक्षण योग्य करता हुं.

३ सही तथा जव पाणीमें गेरके सो पाणी पशु उपर गंटना.

४ जलती माल लेके पशुकी प्रदक्षिणा करणी.

५ वोही जलता माल लेके पशुके आगे चलणा.

६ पशुकों वध करणेके विकाने ले जाना.

७ वपा कलेजा यज्ञका मंत्र पढना.

८ वध करके पशुकी नान्निके विकानें वपा कलेजा होता है सो विकाना छेदके वपा काढनी.

नारायण वृत्तिका अर्थ–वधस्थलमें माल विगनी. तिसके उपर पशुकों मारणा एसी वेदकी आज्ञा है. तिस वास्ते तिस मुजब करके पीछे पेट छेदन करके वपा अर्थात् कलेजा काढना और वधस्थलके नजीक अग्नि उपर तपाके तद पीछे तिसके उपर घृत गेरके अग्निमें होम करणा.

दूसरे अध्यायमें छोकरके अन्न प्राशन संस्कार लिखा है तिसके सूत्र नीचे लिखे जाते है.

१ षष्ठेमास्यन्नप्राशनं ॥ १ अ० १६ क १ सू.

२ आजमन्नाद्यकामः ॥ १-१६-२.

३ तैत्तिरं ब्रह्मवर्चसकामः १-१६-३.

अर्थ—१ जन्मसें छठे मासमें अन्न प्राशन संस्कार करणा.

२ बकरेका मांस इस संस्कारमें खवरावें तो धन धान्यकी वृद्धि करे है.

३ तीतर पक्षीका मांस खानेको देवेतो ब्राह्मणमें ब्रह्मतेजकी वृद्धि होती है.

गृह्यसूत्र के प्रथमाध्यायकी चोवीसमी कंडिकामें मधुपर्क विधि लिखी है तिसके सूत्र नीचे लिखे प्रमाणें है.

१ ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत् १, २४, १.

२ स्नातकायोपस्थिताय ॥ १-२४-१

३ राज्ञेच १-३

४ आचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानां च ४

५ आचान्तोदकाय गां वेदयन्ते २३

६ हतो मे पाप्मा पाप्मा मेहत ॥ इति जपित्वोंकुरुतेति कारयिष्यन् २४

नारायणवृत्ति—इमं मंत्रं जपित्वा ओंम्कुरुतेति ब्रूयात् यदि कारयिष्यन् मारयिष्यन् भवति तदा च दाता आलभेत.

७ नामांसो मधुपर्को भवति ॥ २६

नारायणवृत्ति—मधुपर्कांगंभोजनं अमांसं न भवतीत्यर्थः पशुकरणपक्षे तन्मांसेन भोजनं उत्सर्जनपक्षे मांसान्तरेण ॥

अर्थ—१ यज्ञ करने वास्ते ऋत्विज खमा करते वखत तिसकों मधुपर्क देना चाहिये. इसी तरें विवाह वास्ते जो वर घरमें आवे तिसको मधुपर्क और राजा घरमें आवे तिसको देना चाहियें.

४ आचार्य गुरु घरमें आवे अथवा श्वसुर घरमें आवे अ-

थवा काका मामा घरमें आवे तो तिनकों मधुपर्क देना चाहिये.

५ मुख साफ करने वास्ते पाणी देकर तिसके आगे गाय खमी रखनी चाहिये.

६ सूत्रमें लिखा मंत्र पढके ओम् कहके घरके स्वामीनें गायका वध करणा.

७ मधुपर्कके अंगमें जो जीमणवार होती है ते मांस विना नही होती. इस वास्ते पशुके वधपूर्वक मधुपर्क करा होवे तो तिसही पशुका मांस जिमणवारके काममें और पशुकों छोमी दिया होवेतो अन्य रीतीसें मांस लाके ज्ञोजन कराना चाहिये.

दुसरे अध्यायकी चौथी कंडीकामें अष्टका विधान लिखा है. तिसमें पशुका वध करणा लिखा है तिसका सूत नीचे मुजब जानना.

पशुकल्पेन पशुं संज्ञप्य प्रोक्षणोपाकरणवर्जं वपामुत्खिद्य जुहुयात्॥ २-४-१३

अर्थ—पिछले अध्यायमें पशुवधका विधान बताया है. तिसी तरें पशु अर्थात् बकरा मारके तिसका कलेजा काढके तिसका होम करणा.

फिर दूसरे अध्यायकी पांचमी कंमीकाके प्रथम सूत्रमें अन्वष्टका अनुष्टान लिखा है. तिसमें नीचे प्रमाणे लिखा हूआ है.

१ अपरेद्युरन्वष्टक्यं ॥ २-५-१

२ तस्यैव मांसस्य प्रकल्पः २-५-२

नारायणवृत्ति—अपरस्मिन्नहनि नवम्यामन्वष्टक्यं नाम कर्म कार्यमित्यर्थः ॥ योऽष्टम्यां पशुः कृतः तस्यैव मांसं ब्राह्मणज्ञोजनार्थं प्रकल्पः संकल्पोत्यर्थः ॥

अर्थ—१ नवमीके दिनमें अन्वष्टका कर्म करणा.

२ जिस पशुका वध करा होवे तिसका मांस ब्राह्मणोंको जिमावना.

फिर चौथे अध्यायकी प्रथम कंडिकामें अग्निहोत्री ब्राह्मण मरे तो तिसके, जालनेकी विधि लिखि है. सो नीचे प्रमाणे सूत्र है.

१ आहिताग्निश्चेदुपतपेत्प्राच्यामुदीच्यामपराजितायां वादिश्युदवस्येत् । अ० १—१

२ अगदः सोमेन पशुनेष्ट्येष्ट्वावस्येत् ॥ ४-१-४

३ अनिष्ट्वा, ४—१—५

४ पिंठचक्रेण गोयुक्तेनेत्येके,—४—२—३

५ अनुस्तरणीं ४

६ गां ५

७ अजां वैकवर्णाम् ६

८ कृष्णामेके ७

९ सव्ये बाहुवध्वानुसंङ्कालयन्ति ८

१० अनुस्तरण्यां वपामुत्खिद्य शिरोमुखं प्रछादयेत ४—३—१९

११ वृक्का उधृत्य पाण्योरादध्यात् २०

१२ हृदये हृदयं २१

१३ सर्वंयथाङ्गं विनिक्षिप्यचर्मणाप्रछाद्ये २४

१४ ताउत्थापयेद्द्वर ॥ उद्दीर्पनार्यभि० ४-२-१८

१५ स एवं विदादह्यमानः सहैव धूमेन स्वर्गलोकमेती-
तिहविज्ञायते ४-४-७

अर्थ—१ श्रोत्री ब्राह्मण रोगी होवे तो तिसको अग्निसहित गाम बाहिर कोइ ठिकानें लेजाके रख देना.

२ जेकर निरोग हो जावेतो एक पशुकी इष्टि करके घरमें ले आना.

३ कदापि मर जावे तो—

४ गार्मीमें गालके स्मशानमें ले जाना.

५ अनुस्तरणी अर्थात् एक जानवर साथमें ले जाना.

६ यह जानवर गाय चाहिये.

७ अथवा एक रंगकी बकरी चाहिये.

८ और सो बकरी काली चाहिये.

९ तिस जानवरके गलेमें दोरी बांधके मृतकके दाहिनें हाथसें बांधनी तिसको मुरदेके साथ चलावना.

१० अनुस्तरणीका वध करके तिसका कलेजा काढना, तिससें मुरदेको माथा ढांकनां.

११ तिसका यकृत काढके मुरदेके हाथमें देना.

१२ हृदय मुरदेके हृदय ऊपर देना.

१३ इसी तेरें सर्व अंग मुरदेके अंगो ऊपर गेरने, अनुस्तरणीका चर्म तिससें मुरदेका सर्व अंग ढक देना.

१४ मुरदेकी स्त्रीकों पुनर्विवाह करणेका उपदेश करके काढदेनी.

१५ इस तेरें जिसका मुरदा बाला जावे सो मनुष्य स्वर्गमें जाता है.

गृह्यसूत्रके चौथे अध्यायकी नवमी कंमीकामें शूलगव नामक यज्ञ लिखा है, तिसके सूत्र नीचे लिखे प्रमाणे है.

१ अथ शूलगवः ४-९-१

२ शरदि वसन्ते वार्द्रया २

३ श्रेष्ठं स्वस्य यूथस्य. ३

४ अकुष्ठि पृपत् ४

५ कल्माषमित्येके ५

६ कामं कृष्णमालोहवांश्चेत् ६

७ व्रीहियवमतीभिरद्भिरभिषिच्य ७

८ शिरस्त आभसत्त ८

९ रुद्राय महादेवाय जुष्टो वर्धस्वेति ९

१० प्रोक्षणादि समानं पशुना विशेन्वक्ष्यामः १५

११ पात्र्या पालाशेन वा वपां जुहुयात् इति विज्ञायते १६

१२ हराय मृडाय सर्वाय शिवाय भवाय महादेवायो ग्राय भीमाय पशुपतये रुद्राय शंकराये शानाय स्वाहेति १७

१३ सएषशूलगः वोधन्यो लोक्यः पुण्यः पुत्र्यः पश-व्य आयुष्यो यशस्यः ३६

१४ इष्ट्वान्यमुत्सृजेत् ३७

अर्थ—१ शूलगवअनुष्ठान इस रीतीसें करना.

२ शरद ऋतु अर्थात आसोज कार्तिक तथा वसंत अर्थात् चैत्र वैशाख मासमें अथवा जिसदिन आर्द्रा नक्षत्र होवे तिस दिनमें शुलगव यज्ञ करणा.

३ जोरावर बलवान सांढ होवे सो लेना.

४ सो सांढ रोगी न होना चाहिये.

५ फेर वो सांढ कबरे रंगका चाहिये.

६ काला जामनके रंग समान होवे तोभी ठीक है.

७ सही तथा जवका पाणीसें सांढ उपर अभिषेक करणा.

८ मस्तकसें पूंछतक.

९ महादेवके ग्रहण करणे योग्य हो यह मंत्र पढना.

१० अन्य पशुका प्रोक्षण तथा वध अन्य ठिकाणे कहा है तिस मुजब करना.

११ पलासकी लकडीके वासणमें तिसका कालेजा रखके होम करना.

१२ होम करना सो शिवके बारां नाम लेके करना.

१३ इस रीतीसें शुलगव नामक यज्ञ करे तिसको धान्य, कीर्ति, पुण्य, पुत्र, पशु, समृद्धि, आयुष्य, वृद्धि तथा यश प्राप्त होता है.

१४ उक्त प्रमाणे यज्ञ करके फिरसें यज्ञ करने वास्ते दूजा सांढ अर्चके छोड देना.

ऋग्वेदकी दो ऋचा निचे लिखी है । सो आश्वलायन गृह्यसूत्रके प्रथमाध्यायके प्रथम कांडिकाके पांचमें सूत्रमें दाखल करा हूआ है सो आगे लिखा जाता है.

विश्वमना ऋषिः इंद्रोदेवता ॥ अगोरुधाय गविषेद्युक्षायदस्म्यं वचः घृतात्स्वादियो मधुनश्च वोचते ॥ ऋग्वेद अष्टक ६ अध्याय २ वर्ग २० ॥

भारद्वाज ऋषिः अग्नि देवता॥ आते अग्नऋचाह विद्दातछंभरामसी ॥ ते ते भवंतूक्षण ऋषभा सोवशाउत ॥ ऋग्वेद । अष्टक ४ अध्याय ५ वर्ग १८ ऋच् ४७ आश्वलायन ॥

नारायण वृत्ति । अस्य मंत्रस्य तात्पर्यं उक्तादिमांसेन तव यावती प्रीतिस्तावती तव विद्यायां भवतीत्यर्थः ॥

अर्थ—हे इंद्र ! हे अग्नि ! तुमारी बलद और गायके मांस उपर प्रीति है. तिसी तरें हमारी विद्या उपर प्रीति होवे, यज्ञको देवयज्ञ कहते है. गृहस्थ लोक राजा श्रोत्रिय ब्राह्मणकों धन देके यज्ञ करवाते है, वाम मार्गीयोंसे पूजन करवाते है. तिससें अपणा कल्याण समजते है. श्राद्ध अर्थात् पितृयज्ञ इसमेंभी अनुस्तरणी इत्यादिकमें मांस खाते है, इसको पितृमेधभी कहते है. सर्व पूर्वोक्त ऋग्वेदी आश्वलायन ब्राह्मणका धर्मसूत्रका अर्थ उपर लिखा है. पुराणोमें बहुत ठिकाने ऋषि राजा वगैरे घरमें आयें मधुपर्क सहित पूजा करके सत्कार करा ऐसा लिखा है. इस वास्ते आगे मधुपर्क करणेकी रीती बहुत थी ऐसा मालुम होता है. कितनेक ब्राह्मण आपस्तंब शाखाके कहाते है. तेलंग और महाराष्ट्र देशमें इस शाखाके ब्राह्मण बहुत है. तिनका आपस्तंबीय धर्मसूत्र नामक शास्त्र है. तिस उपर हरदत्त नामक टीका है, सो सूत्र सरकारी तर्फसें मुंबईमें छपा है, तिसमेंसें थोडेक सूत्र नीचे लिखते है.

१ धेन्वनडुहौ भक्ष्यम् प्रश्न १ पटल ५ सूत्र ३०.

२ क्याक्वभोज्यमिति हि ब्राह्मणम् २८

३ मेध्यमानडूहमिति वाजसनेयकम् ३१

४ गोमधुपर्कार्हो वेदाध्यायः २-४-१

५ आचार्य ऋत्विक् स्नातको राजा वा धर्मयुक्तः २-४-६

६ आचार्यायर्त्विजेच शूराय राज्ञ इति परिसंवत्सरादुपतिष्ठद्भवो गौर्मधुपर्कश्च २-४-७

७ धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च १-२-२

अर्थ—१ गाय तथा बलद भक्षण करणे योग्य है.

२ पक्षी भक्षण योग्य है ऐसें ब्राह्मणग्रंथमें है.

३ बलद यज्ञपशु है ऐसें वाजसनीय कहे है.

४ गायका वध करके मधुपर्क करणा यह वेदाज्ञा है.

५ आचार्य, ऋत्विज, वर, तथा राजा इनकों मधुपर्क देना चाहिये.

६ श्वशुर इत्यादि एकैक वर्षांतरे घरमें आवे तो मधुपर्क करना.

७ धर्म जाननेकी जिसकों इच्छा होवे तिसनें वेदका प्रमाण रखना.

कात्यायनकल्पसूत्रम्

षडर्घ्या भवंति आचार्य ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियस्नातक इति गौरितित्रिः प्राह आलभेत् । अन्नप्राशन.

भारद्वाजमांसेन वाक्यं सारिकामद्गुकपिंजलमांसेनान्नाद्य-कामस्य मत्स्यैर्जवनकामस्य कृकरवेराऽयुःकामस्य शूलगवः स्वर्ग-पशव्यः रौद्रं पशुमालभेत.

नवकंडिकाश्राद्धसूत्रं ॥

अथ तृप्तिः-छागो मेषानालभ्य न स्वयमृतानाहृत्य पचेन्मा-सद्वयं तु मत्स्यैर्मासत्रयं हारिणेनचतुरः औरभ्रेण पंच शाकुनेनषट् छागेन सप्त कौर्मेणाष्टौ वाराहेण नव मेषमांसेन दश माहिषेणैका-

१ आचार्य ऋत्विक् विवाह के योग्य पुरुष, राजा, प्रियमित्र, और स्नातक—ए छ अर्घ देनेके लायक है. तिनकुं गाय मरना चाहीये—सारिक, मत्स्य, कपिंजलका मांससे अन्नादि मीलते है. मत्स्यसें वेग मीलते है. कृकवाकुना मांससें आयुष्य वधते है. शूलगवनें स्वर्ग मिलते है. रुद्रके वास्ते पशुमारना

दश पार्षतेन संवत्सरं तु वार्ध्रीणसमांसेन द्वादश वर्षाणि खड्गमांसं कालशाकंलोहछागमांसंमधुमहाशल्कोऽक्षयतृप्तिः ॥ इति सूत्रम् ॥ अर्थ—मरनारकुं वकरेसें तृप्ति होती है. मरेलाको निमित्त दो मास मनुष्यका मांस, तीनमास हरिणकामांस, चारमास नीलकामांस, पांचमास पक्षीकामांस, छठे वकरेकामांस, सातमे कूर्मकामांस, आठमें वराहकामांस, नवमें मेंढाकामांस, दशमे पाडाकामांस अगीयारमें पर्षतकामांस और बारमें सवत्सरीमें वार्धीनकामांस ए वारमासे मांस देनेसें अक्षय तृप्ति होती है.

माध्यंदिनी शाखाके जो ब्राह्मण है, वे कात्यायन सूत्रका उपयोग करते है. तिनमें मधुपर्क अन्नप्राशन शूलगव श्राद्ध यह चारों अनुष्ठानमें हिंसाका प्रतिपादन करा है. सो आश्वलायन सूत्र समान जान लेना, इस वास्ते विस्तार नही लिखा है. तत्रा संस्कृत शब्दोहीसें जान लेना. कात्यायन यजुर्वेदका सार सूत्र है.

अथ सामवेदका लाट्यायन ऋषिका करा लाट्यायन सूत्र है तिसकाभी किंचित्मात्र स्वरूप नीचे लिखते है,

लाट्यायनीय श्रौतसूत्रम्

१ उक्षा वेदनूवंध्य औक्ष्णोरन्ध्रे १–६–२२
२ ऋषभ आर्षभं १–६–२३
३ अज आजिगं १–५–२६
४ मेष औणविय‍ं १–६–२७
५ वपायां हुतायां धीष्णयानुपातिष्टेरन् २-२-१०
६ न शूद्रेण संभाषेरन् २-२-१६
७ गोष्टे पशुकामः ३-५-२१
८ स्मशानेऽभिचरन् ३-६-२३

९ अनुबंध्य वपायां हुतायां दक्षिणे वेदतेके श्मश्रूणि वापयेरन् ४-४-१८

१० प्रथमश्चाभिप्लवं पंचाक्षं कृत्वा मासान्ते सवनविधः पशुः ४-८-१४

११ यथा चात्वाले तथा यूपे शामित्रे च पशौ ५-१-९

१२ वपायां हुतायामिदमाप इति चत्वाले मार्जयित्वा सर्वपशूनां यथार्थःस्यात् ५-३-१७

१३ अग्निषोमीयवपायां हुतायां यशोतमुदङ् अतिक्रम्य चात्वाले मार्जयेत् ५-९-१४

१४ जनोतिस्रो वसतीति राजन्यबंधुर्जनो ब्राह्मणः समान जन इति शाण्डिल्यः ८-२-१०

१५ विवाह्यो जनः सगोत्रः समानजन इति धानंजप्यः ८-२-११

१६ प्रतिवेशो जनपदो जनो यत्र वसेत् स समानजन इति शाण्डिल्यायनः ८-२-१२

१७ एतं मृतं यजमानं हविर्भिः सह जीपे यज्ञपात्रे श्चाहवनीये प्रहृत्य प्रव्रजेयुरिति शाण्डिल्यः ८-८-६

१८ आस्ये हिरण्यमवधायानुस्तरणिक्या गोर्मुखं वपया प्रच्छाद्य तत्राग्निहोत्रहवनीं तिरश्चीम् ८-८-२२

१९ वैश्यं यं विशः स्वराजानः पुरस्कुर्वीरन् स गोसवेन यजेत ९-४-२२

२० विघ्नाभ्यां पशुकामे यजेताभिचरन्वा ९-४-२३

२१ राजाश्वमेधेन यजेत ९-९-१

२२ पंचशारदीये पशुंवन्धर्यजेत ९-१२-१०

॥ लाटयायन सूत्रका अर्थ ॥

१ वलदका यज्ञ करतां वलदका मंत्र पढना.

२ सांडका यज्ञ करतां सांडका मंत्र पढना.

३ वकरेका यज्ञ करतां वकरेका मंत्र पडना.

४ मेंडका यज्ञ करतां मेंढका मंत्र पढना.

५ कलजेका होम करतां उपस्थान मंत्र पढना.

६ यज्ञ दीक्षा लियां पीछे शूद्रसें न वोलना.

७ गाय वांधनेकी जगें यज्ञ करे पशु वृद्धि होती है.

८ स्मशानमें करनेंसें शत्रुका नाश होता है.

९ पशुका कालेजा होमें पीछे वतु कराना.

१० एक मास पीछे पशु करना.

११ पशु उपर पाणी छांटना.

१२ अग्निपोम देवकों कलेजेका होम करतां पाणी छांटना.

१३ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनो समान है ऐसा शांडि-ल्य आचार्यनें कहा है.

१४ सगा मित्र येन्हि समान है ऐसा धानंजप्य आचार्यने कहा है.

१५ स्वदेशीजन समान है ऐसा शांडिल्य आचार्यनें कहा है.

१६ यज्ञ करतां यजमान मरे जाये तो तिसके उपर यज्ञके यत्र गेर देनो.

१७ तिसके मुखमें सुवर्ण डालके गायका कलेजा काढके तिसके मुख उपर गेरणा. इस गायका नाम अनुस्तरणी है.

१८ वाणीयाने गोसव करणा.

१९ विघन यज्ञसें पशु वृद्धि होती है.

२० राजा अश्वमेध करे.

२१ पंचशारदीय यज्ञमें पशु मारणा. इति लाटयायनः ॥

ब्राह्मणोंकी जितनी शाखा है तितनेही तिनके सूत्र है तिन सर्वका हाल लिखा नही जाता है इस वास्ते इनको छोडके स्मृतियोका हाल देखते है. स्मृति नामके ग्रंथ पचास वा साठ है हरेक ऋषिके नामसें पिछाना जाता है. परंतु तिनमें मनु और याज्ञवल्क्य ये दो श्रेष्ट गिने जाते है. वेदोमेंभी लिखा है कि जो मनुने कहा है, सो ठीक है इस वास्ते प्रथम मनुकेही थोडेसे श्लोक लिखते है.

१ तैलैर्व्रीहियवैर्माषैराद्भिर्मूलफलेन वा ।
दत्तेन मासं तृप्यंति विधिवत्पितरो नृणां ॥ अ० ३-२६७

२ द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् हारिणेन तु ३-२६८

३ षण्मासांछागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै ३-२६९

४ दश मासान्तु तृप्यंति वराहमहिषामिषैः ।
शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु ॥ ३-२७०

५ वर्धिणशस्यमांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ३-२७१

६ कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु ।
आनंत्यायैव कल्प्यंते समुत्पन्नानि च सर्वशः ॥ ३-२७२

अर्थ—तिल, सही, जव, उरुद वा मूलफल इनमेंसे हरेक वस्तु शास्त्र रीतीसे देवेतो पितर एक मास तक तृप्त रहते है.

१ मछके मांससे दो मास, हिरणयके मांसके तिन मास, तृप्त रहते है.

३ छाग मांससे छ मास और चित्र मृगके मांससें सात मास,

४ सूयर तथा भैंसके मांससें दश मास तृप्त रहते है और ससे तथा कछुके मांससें इग्यार मास तृप्त रहते है.

५ लांबे कानवाले धवले वकरेके मांससें बारा १२ वर्ष तृप्त रहते है.

६ कालशाक महाशल्कनामा मत्स्य अथवा गेंडा, लाल वकरा इनमेंसें हरेकका मांस देवे मधुसें और सर्व प्रकारका ऋषिधान्य और वनस्पति रुप जो जंगलमें स्वयमेव होता है सो देवेतो अनंत वर्ष तक पितर तृप्त रहते है.

इसी तरें मनुस्मृतिमें अनेक जगें जीव मारने और मांस खानेकी विधि लिखी है, सो जान लेनी.

अथ याज्ञवल्क्य स्मृतिमें आचार अध्याय है, तिसके वचन नीचे लिखे जाते है.

गृहस्थ धर्म प्रकरण.

महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत् ॥ १०८ घशेश्वर शास्त्री पत्र ३५.

प्रतिसंवत्सरं त्वर्घ्याःस्नातकाचार्यपार्थिवाः ।
प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञे प्रत्यृत्विजः पुनः ॥ १०९

अर्थ—श्रोत्रिय अर्थात् अग्निहोत्री ब्राह्मण अपने घरमें आवे तो वडा बलद अथवा वकरा मोटा तिसके भक्षण वास्ते देना.

इस उपर टीकाकार ऐसा लिखता है-"अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्नत्विति" निषेधाच्च.

स्नातक, आचार्य, राजा, मित्र, जमाइ इनकों मधुपर्कपूजा प्रतिवर्ष करणी तथा ऋत्विजकी प्रत्येक यज्ञमें करणी ऐसे लिखके आश्वलायन सूत्रका वचन दाखल करा है.

अथ भक्ष्याभक्ष्य प्रकरणमें याज्ञवल्क्य स्मृतिके श्लोक लिखते है.

भक्ष्याः पंचनखा सेधागोधाकछपशल्लकाः ।
शशश्च मत्स्येष्वपिहि सिंहतुंडकरोहिताः १७६
तथा पाठीनराजीवसशल्काश्च द्विजातिभिः ।
अतः शृणुध्वं मांसस्य विधिं भक्षणवर्जने ॥ १७७
प्राणात्यये तथा श्राद्धे प्रोक्षितं द्विजकाम्यया ।
देवान् पितॄन् समाभ्यर्च्य खादन्मांसं न दोषभाक् ॥ १७८
वसेत्स नरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः ।
समितानि दुराचार यो हंत्यविधिना पशून् ॥ १७९
सर्वान् कामानवाप्नोति हयमेधफलं तथा ।
गृहेपि निवसन् विप्रो मुनिर्मांसविवर्जनात् ॥ १८०

अर्थ—१ पांच नखवाला जीवमें सेह, गोह, कछु, शल्क, ससा, गेंडी ये प्राणी भक्षण करणे योग्य है. और पाठीन और राजीव ये दोनो जातके मछ ब्राह्मणोंने भक्ष्य है.

२ मासके भक्षणकी तथा परित्यागकी विधि सुण लो.

३ प्राणसंकटमें तथा श्राद्धमें मांस भक्षण करना. प्रोक्षित मांस तथा ब्राह्मण भोजन वास्ते अथवा देवपितृकार्यके वास्ते सिद्ध करा मांस देवपितरकी पूजा करा पीछे वाकी रहा होवे सो भक्षण करे तो दोष नहीं. प्रोक्षितं अर्थात् प्रोक्षण नामक संस्कार करके यज्ञकार्य करा पीछे वाकी रहे सो प्रोक्षित मांस कहा जाता है. तिसका अवश्य भक्षण करना, कारण न करे तो यज्ञकी समाप्ति न होवे.

४ जो आदमी विधि विना पशु मारता है सो नरकमें जाता है.

५ जो मांसका त्यागी है, तिसको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है. और सो गृहस्थही थका मुनि जानना. यह वचन टीकाकार लिखता है कि अवश्य भक्षण करना चाहिये. प्रोक्षितादि मांसका त्याग नही.

हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् ।
मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनछागपार्षतैः ॥ २५७
२ ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम् ।
मासवृध्याभितृप्यंति दत्तैरिह पितामहाः ॥ २५८ ॥
३ खड्गामिषं महाशल्कं मधुवन्यान्नमेवच ।
लोहामिषं महाशाकं मांसं वार्ध्रिणसस्य च ॥ २५९ ॥

अर्थ—१—२ अन्नसें एक मास, क्षीरसें एक वर्ष, मत्स्य, हरिण, मींढा पक्षी, वकरा, काला हरिण, सांवर, सूयर ससा, इन जीवांको मांस पितरांको देवे तो मास अधिकअधिक वृद्धिके हिसावसें पितर तृप्त रहते है.

३ गेंडेका मांस, महाशल्क मत्स्यकी जाति है तिसका मांस मध, और वनमें उत्पन्न हूआ अन्न, लाल रंगके वकरेका मांस, कालशाक और वार्ध्रीण अर्थात् धौले वकरेका मांस देवे तो अनंत फलदायक है.

विनायकशांतिका पाठ नीचे लिखते है.

मत्स्यान्पक्वांस्तथैवामान्मांसमेतावदेव तु ॥ २८६ ॥
पुष्पांश्च सुगंधं च सुरां च त्रिविधामपि ॥ २८७ ॥

अर्थ—कच्चा पक्का मछ, और तैसाही मांस, पुष्प, सुगंधी पदार्थ, और तीन प्रकारका मदिरा अर्थात् गुड, महूआ, अन्न इन तीनोंका निकला मदिरा इनको विनायक और तिनकी माता अंबिकाको चढाना.

अद्दयज्ञ करनेकी विधिमें लिखा है कि

गुमौदनं पायसं च हविष्यं क्षीरपाष्टिकं ।

दध्यौदनहविश्चूर्णं मांसं चित्रान्नमेव च ॥ १०३ ॥

दद्याद् ग्रदक्रमादेव द्विजेन्यो ज्नोजनं द्विजः ।

शक्तितो वा यथालाज्नं सत्कृत्य विधिपूर्वक-

म् ॥ १०४

अर्थ–गुम, क्षीर, ऋषिधान्य, दूध, दही ज्ञात, घी ज्ञात, चटनी, मांस, केशरीज्ञात इत्यादि ग्रहतृप्ति करणे वास्ते ब्राह्मणोंको पूर्वोक्त पदार्थोंसें जिमावना. इति याज्ञवल्क्य स्मृतिमें है.

अत्र स्मृतियां पीछे पुराणोंका पाठ कुछक लिखते हैं. प्रथम मत्स्यपुराणके १७ में अध्यायमें श्राद्धकल्प लिखा है तिसके श्लोक नीचे लिखे हैं.

अन्नं तुसदधि क्षीरं गोघृतं शर्करान्वितं ॥

मांसं प्रीणाति वै सर्वान् पितृनित्याह केशवः ॥ अ० ७. श्लोक० ३०

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान् हारिणेन तु ।

औरभ्रेणाय चतुरः शाकुनेनाथ पंच वै ॥ ३१ ॥

षण्मासं छागमांसेन तृप्यन्ति पितरस्तथा ।

सप्त पार्षतमांसेन तथाष्टावेणजेन तु ॥ ३२ ॥

दश मासांस्तु तृप्यंति वराहमहिषामिषैः ।

शशकूर्मजमांसेन मासानेकादशैव तु ॥ ३३ ॥

संवत्सरंतु गव्येन पायसा पायसेन तु ।

व्याघ्र्याः सिंहस्य मांसेन तृप्तिर्घादशवार्षिकी ॥ ३४ ॥

कालशाखेन चानंता खड्गमांसेन चैव हि ।

यत्किंचन्मधुनंमिश्रं गोक्षीरं घृतपायसं ॥ ३५ ॥

दत्तमक्षयमित्याहुः पितरः पूर्वदेवताः ॥ ३६ ॥

इन श्लोकोंका अर्थ उपर स्मृतिश्लोकवत् जान लेना.

अथ मारकंड ऋषिका पुराण है तिसके १३ में अध्यायमें देवीका महात्म्य है तिसको चंडिपाठ कहते है, सो लोक बहुत वांचते है. और तिस उपरसें जप होम पूजा आदि अनुष्टान करते है. तिसमें नीचे लिखे हूये श्लोक है.

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे। अ. १२ श्लो. १०

पशुपुष्पार्घधूपैश्च गंधदीपैस्तथोत्तमैः ॥ १२–१०

रुधिरोक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप । १५–१८

अर्थ–देवीकी पूजामें बलिप्रदान करणा और गंध पुष्प तथा जानवरभी देने और लोहूयुक्त मांस और मदिरा देवीको अर्पण करणा.

भारत यह बडा इतिहासका ग्रंथ है. तिसमेंभी जो जो राजे बहुत शिकार करते थे और बहुत जानवर मारते थे तिनकी कीर्ति व्यासजीने बहुत वर्णन करी है. तिसके थोडेसे वचन लिखते है.

१ ततस्ते यौगपद्येन ययुः सर्वे चतुर्दिशं ।

मृगयां पुरुषव्याघ्रा ब्राह्मणार्थे परंतपाः ॥ ४ ॥ भारते द्रौपदीप्रमाथे १ सर्गे.

२ ततो दिशः संप्रविहृत्य पार्थाः, मृगान्वराहान्महिषांश्च हत्वा ।
धनुर्धराः श्रेष्ठतमाःपृथिव्यां, पृथक् चरन्तः सहिता बभूवुः ॥ १ ॥ द्रौपदी प्रमाथे पञ्चसर्गे–

३ ततो मृगसहस्राणि हत्वा स बलवाहनः । राजा मृगप्रसङ्गेन वनमन्याद्विवेश ह ॥ १ ॥ शकुन्तलोपाख्याने सर्गः प्रथम श्लोक

अर्थ–१ ब्राह्मणोंके वास्ते बहुत हरिण मारके ल्याये.

२ धनुर्धर श्रेष्ट राजायोनें बहुत हरिण तथा सूयर तथा जंगली न्नैंसो मारके ख्यानी ॥

३ इन वलवान राजायोनें हजारों मृग मारके अन्योंके मारने वास्ते वनमें चले है.

तथा इसी न्नारतके न्नीष्म पर्वमें न्नगवद्गीता नामक ग्रंथ प्रसिद्द है. सो वेदांति तथा न्नक्तिमार्गवाले दोनो मानते है. तिसमें निचे प्रमाणे लिखा है.

सहयज्ञा प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोस्तिष्ठ कामधुक् ॥ १०—अ० ३॥ यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्बिषैः ॥ यज्ञान्नवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुन्नवः ॥ १४ ॥ यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् यज्ञो दानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ॥ अध्याय १८ श्लोक ५ ॥

अर्थ—१ ब्रह्माने सृष्टि उत्पन्न करी तिसी वखत यज्ञ करनेकी आज्ञा करी कि यज्ञ करो, तिससें देवता प्रसन्न होके तुमारी मनोकामना पूरी करेंगे.

२ यज्ञ करके बाकी जो रहे सो खावे तिसका सर्व पाप क्षय हो जाता है. यज्ञ करनेंसेंही वर्षा होती है और यज्ञ ब्रह्मदेवकी आज्ञा मूजब है.

३ यज्ञदान तथा तप मनुष्यकों पवित्र करते है. तिस वास्ते पूर्वोक्त कर्मका त्याग कदापि न करना. कर्म अवश्यमेव करना. इति गीता.

न्नारते। युधिष्ठिर उवाच ॥ गार्हस्थ्यस्य च धर्मस्य योगधर्मस्य चोन्नयोः। अदूरसंप्रस्थितयोः किंस्वित् श्रेयः पितामह ॥ १ ॥

न्नीष्म उवाच—उन्नौ धर्मौ महान्नागावुन्नौ परमकुश्चरौ ॥ उन्नौ महाफलौ तौ तु सन्निराचारितावुन्नौ ॥ कपिल उवाच। नाहं वेदान्वि

निंदामि नः विवक्षामि कांश्चित् । प्रवृत्त्याश्रमिणां कर्माण्येकार्थानी-
ति न श्रुतं ॥ स्थूलदर्शित्वात् । स्वर्गकामो यजेतेति सततं श्रू-
यते श्रुतिः । फलं प्रकल्प्य पूर्वं हि ततो यज्ञः प्रतायते ॥ १ ॥
अजश्चाश्वश्चौवमेषः प्राणस्यान्नमिति श्रुतिः । तथैवान्नं ह्यहरहः
सायं प्रातर्निरूप्यते ॥ पशवश्चाथ धान्यं च यज्ञस्यांगमिति श्रुतिः ।
एतानि सह यज्ञेन प्रजापतिरकल्पयत् ॥ तेन प्रजापतिर्देवान् यज्ञे-
नायजत प्रभुः । ततोऽन्योन्यवराः सर्वे प्राणिनः सप्त सप्तधा ॥ यज्ञेषु
पाक्तं विश्वं प्राहुरुत्तमसंज्ञितं । एतच्चैवाभ्यनुज्ञातं पूर्वैः पूर्वतरैस्त-
था ॥ को जातु न विचिन्वीत विद्वान्स्वां शक्तिमात्मनः । पशवश्च
मनुष्याश्च द्रुमाश्चौषधीभिः सह ॥ स्वर्गमेवाभिकांक्षंते न च स्वर्ग-
स्ततो मखात् । ओषध्यः पशवो वृक्षा वीरुदाज्यं पयो दधि ॥ हवि-
र्भूमिर्दिशः श्रद्धा कालश्चैतानि द्वादश । ऋचो यजूंषि सामानि य-
जमानश्च षोडश ॥ अग्निर्ज्ञेयो गृहपतिः स सप्तदश उच्यते । अंगा-
न्येतानि यज्ञस्य यज्ञो मूलमिति श्रुतिः ॥ यज्ञार्थानि हि सृष्टानि
यथावच्छ्रूयते श्रुतिः । एवं पूर्वतराः सर्वे प्रवृत्ताश्चैव मानवाः ॥
यज्ञांगान्यपि चैतानि यज्ञोक्तान्यनुपूर्वशः । विधिना विधियुक्तानि
धारयंति परस्परं ॥ न तस्य त्रिषु लोकेषु परलोकभयं विदुः ।
इति वेदा वदंतीह सिद्धाश्च परमर्षयः । इति श्री महाभारते शांति
पर्वणि मोक्षधर्मे गोकपिलीये अष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः
॥ २६८ ॥

स्थूलदर्शित्वात्—यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवंति जंतवः । एवं
गार्हस्थ्यमाश्रित्य वर्तंत इतराश्रमाः ॥ गृहस्थ एव यजते गृहस्थ-
स्तप्यते तपः । गार्हस्थ्यमस्य धर्मस्य मूलं यत्किंचिदेजते ॥ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

प्रोक्तस्त्वया श्राद्धविधिः पुरा । अदत्वाच कुतो मांसमेवमेतद्विरुध्यते ॥ जातो नः संशयोधर्मे मांसस्य परिवर्जने । दोषो भक्षयतः कः स्यात्कश्चाभक्षयतो गुणः ॥ भीष्म उवाच—अप्रोक्षितं वृथा मांसं विधिहीनं न भक्षयेत् । प्रवृत्तिलक्षणो धर्मः प्रजार्थिभिरुदाहृतः ॥ तथोक्तं राजशार्दूल न तु तन्मोक्षकांक्षिणां । हविर्यत्संस्कृतं मंत्रैः प्रोक्षिताभ्युक्षितं शुचि ॥ वेदोक्तेन प्रमाणेन पितॄणां प्रक्रियासु च । अतोन्यथा वृथा मांसमभक्ष्यं मनुरब्रवीत् ॥ एतत्ते कथितं राजन् मांसस्य परिवर्जने । प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च विधानमृषिनिर्मितं ॥ इति महाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मे मांसभक्षणनिषेधे पंचदशाधिकशततमोऽध्यायः ११५.

युधिष्ठिर उवाच—किं चाभक्ष्यमभक्ष्यं वा सर्वमेतद्वदस्व मे । दोषा भक्षयतो येपि तान्मे ब्रूहि पितामह ॥ भीष्म उवाच—एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत । न मांसात्परमं किंचिद्रसतो विद्यते भुवि ॥ सद्यो वर्धयति प्राणान्पुष्टिमग्र्यां दधाति च । न भक्ष्योभ्यधिकः कश्चिन्मांसादस्ति परंतप ॥ विवर्जिते तु बहवो गुणाः कौरवनंदन । ये भवंति मनुष्याणां तन्मे निगदतः शृणु॥ विधिना वेददृष्टेन तद्भुक्तेह न दुष्यति । यज्ञार्थे पशवः सृष्टा इत्यपि श्रूयते श्रुतिः ॥ अतोन्यथाप्रवृत्तानां राक्षसो विधिरुच्यते । क्षत्रियाणां तु यो दृष्टो विधिस्तमपि मे शृणु ॥ वीर्येणोपार्जितं मांसं यथा भुंजन्न दुष्यति । आरण्याः सर्वदेवत्याः सर्वशः प्रोक्षिता मृगाः ॥ अगस्त्येन पुरा राजन् मृगयायेन पूजिता । अतो राजर्षयः सर्वे मृगयां यांति भारत ॥ न हि लिप्यन्ति पापेन नचैतत्पातकं विदुः । पितृदैवतयज्ञेषु प्रोक्षितं हविरुच्यते ॥ प्राणदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति । अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं

नाम भारत ॥ सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वाप्लुतं । सर्वदान फलं वापि नैततुल्यमहिंसया ॥ इति श्री महाभारते अनुशासन-पर्वणि दानधर्मे अहिंसाफलकथने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

व्यास उवाच— यज्ञेन तपसा चैव दानेनच नराधिप । पूयंते नरशार्दूल नरा दुष्कृतकारिणः ॥ राजसूयाश्वमेधौ च सर्वमेधं च भारत । नरमेधं च नृपते मत्वाह्व च युधिष्ठिर ॥ यजस्व वाजिमेधेन विधिवद्दक्षिणावता । बहुकामान्नवित्तेन रामो दाशरथिर्यथा ॥ इति श्री महाभारते आश्वमेधिके पर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥

ततो यूपोच्छ्रये प्राप्ते षड्बिल्वान् भरतर्षभ । खादिरान् बिल्वसमितांस्तावतः सर्ववर्णिनः ॥ देवदारुमयौ द्वौतु यूपौ कुरुपते मखे । श्लेष्मांतकमयं चैकं याजकाः समकल्पयन् ॥ शुशुभे चयनं तत्र दक्षस्येव प्रजापतेः । ततो नियुक्ताः पशवो यथाशास्त्रं मनीषिभिः ॥ तं तं देवं समुद्दिश्य पक्षिणः पशवश्च ये । ऋषभाः शास्त्रपठितास्तथा जलचराश्चये ॥ यूपेषु नियता चासीत्पशून त्रिंशतिस्तथा । अश्वरत्नोत्तरा यज्ञे कौंतेयस्य महात्मनः ॥ स यज्ञः शुशुभे तस्य साक्षाद्देवर्षिसंकुलः । सिद्धविप्रनिवासैश्च समंतादभिसंवृतः ॥ तस्मिन् सदसि नित्यास्तु व्यासशिष्या द्विजर्षभाः ।सर्वशास्त्रप्रणेतारः कुशला यज्ञसंस्तरे ॥ नारदश्च बभूवात तुंबरश्च महाद्युतिः । इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वमेधारंभे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ८८

वैशंपायन उवाच—श्रपयित्वा पशूनन्यान्विधिवद्द्विजजातयः । ततः संश्रप्य तुरगं विधिवद्याजकास्तदा ॥ उपासंवेशयन् राजंस्ततस्तां द्रुपदात्मजां । उद्धृत्य तु वपांतस्य यथाशास्त्रं द्विजातयः ॥ उपाजघ्रुर्यथाशास्त्रं सर्वपापापहं तदा । शिष्टान्यंगानि यान्यासंस्त-

स्याश्वस्य नराधिप ॥ तान्यम्नौ जुहुवुर्धीराः समस्ताः पोमशार्त्विजः । व्यासः सशिष्यो न्नगवान् वर्धयामास तं नृपं ॥ ततो युधिष्ठिरः प्रादात् ब्राह्मणेन्यो यथाविधि । गोविंदं च महात्मानं बलदेवं महाबलं ॥ तथान्यान्वृष्णिवीरांश्च प्रद्युम्नाद्यान् सहस्रशः । पूजयित्वा महाराज यथाविधि महाद्युति ॥ एवं बन्नूव यज्ञः स धर्मराजस्य धीमतः । बहूवन्नधनरत्नाद्यैः सुरान्नैरेयसागरः ॥ सर्पिःपंका ह्रदा यत्र बन्नूवुश्चान्नपर्वताः । पशूनां वध्यतां चैव नांतं ददृशिरे जनाः ॥ विपाप्मा न्नरतश्रेष्ठः कृतार्थः प्राविशत्पुरं । तं महोत्सवसंकाशं हृष्टपुष्टजनाकुलं ॥ इति श्री महान्नारते आश्वमेधिके पर्वणि अनुगीतापर्वणि अश्वमेधसमाप्तौ एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

अर्थ—युधिष्टिर धर्मराजा न्नीष्माचार्यकों प्रश्न करता न्नयाकि गृहस्थ और साधु इन दोनोमेंसें न्नत्तम धर्म किसका है? न्नीष्मनें न्नत्तर दीनाकी दोनो धर्म अछे है. पीछे कपिलची बोलाकि मैं वेदाकी निंदा नही कर शकता हूं. आश्रम प्रमाणे धर्म होता है. स्यूमरश्मि बोलाकि स्वर्गमें जाने वास्ते यज्ञ करो. इसतरें सदा वेद कहता है. तिससें परंपरासें यज्ञ करते आये है. बकरेका, घोन्नेका, न्नेडका, गायका, पक्षीयोंका यज्ञ होता है. गाममें और सीमामें जो जानवर है वे सर्व न्नक्षण करने योग्य है; ऐसा वेदमें कहा है. और जानवर और धान्य इन दोनोंसें यज्ञ होता है; ऐसा वेदनें कहा है. इसतरें प्रजापति देवनें ठहराव करके यज्ञविधि जानवर और धान्य ये सर्व न्नत्पन्न करे. तिसी तरें देवते यज्ञ करने लगे. यज्ञमें जो जीव मारे जाते है वे सर्व ब्रह्मदेवकी आज्ञासें है. और तिसीतरें पूर्वज करते आये है. जनावर, मनुष्य, वनस्पति ये सर्व स्वर्गमें जानेकी इछा करते है जनावर धान्य इत्यादि १२ प्रकारकी सामग्री यज्ञमें चाहिये सो और

वेद मिलके सर्व १६ सोले और सत्तरमी अग्नि इतनी सामग्री यज्ञकी वेदमें लिखी है. तिससें प्रथम मनुष्य यज्ञ करने लगे. ये सर्व पदार्थ यज्ञार्थ करे है. ऐसे वेदोमें लिखा है. इसीतरें सर्व वेद सिद्ध पुरुष महाऋषि इनका यही कहना है तो फेर इसमें पातक कहांसें होय? यज्ञसें परभवमें अछा होता है. शांतिपर्वमें इसतरें कथा २६० में अध्यायमें है.

स्यूमरश्मि ऋषि कहे है, कि सर्व जीव माताके आश्रयसें जीवते है. तिसीतरे गृहस्थके आश्रय सर्व साधु जीवे है. गृहस्थसें यज्ञ होता है. तप होता है, तिस वास्ते गृहस्थाश्रमी लोक धर्मका साहाय्य देते है. यह सर्व शास्त्रानुसारे मैंनें कहा है. इसतरें कथा २३ए में अध्यायमें है. धर्मराजा कहता है, हे आचार्य! अहिंसा बडाधर्म है ऐसे तो बहुत वार तुमनें कहा है. और तुमनेंही श्राद्धमें अनेक प्रकारका मांस खानेकी छुटी दिनी है. तब हिंसा करां विना मांस क्योंकर मिल शकता है. मेरा यह संशय दूर नहीं होता है इस वास्ते इस वातका खुलासा करो. भीष्मने उत्तर दीना यज्ञ विना और शास्त्रने जो छुट्टि दीनी है तिसके विना मांस न खाना इसका नाम प्रवृत्तिधर्म है; परंतु मोक्षकी इछा होय तिसका यह धर्म नहीं. वेदमंत्रसें पवित्र हूआ और पाली छांटके प्रोक्षण करा हूआ मांस पवित्र है, तिसके खानेमें पाप नहीं. इस उपरांत मांस नहीं खाना. प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो धर्म ऋषियोंने कहे है. अनुशासनपर्वमें ये कथा ११५ में अध्यायमें है.

धर्मराजा पूछे है कि हे आचार्य! क्या खाना और क्या न खाना यह मुजको कहो. भीष्मने उत्तर दीना कि हे धर्मराजा! इस पृथ्वीमें मांस समान कोई उत्तम पदार्थ नहीं. जीवको पुष्टि देनेवाला. शरीरकी वृद्धि करनेवाला. तोभि तिसके त्याग

करनेमें बहुत धर्म है. वेदाज्ञा प्रमाणे मांस खानेमें दोष नही. क्योंकि यज्ञ वास्ते परमेश्वरनें पशु जनावर उत्पन्न करे है, ऐसा वेदमें लिखा है. तिसके विना मांस खाना ये राक्षसी कर्म है अव क्षत्रियका कर्म कहता हूं. तिसने अपने बलसें जीव मारा होवेतो तिसके खानेमें दोष नही. अगस्ति ऋषिनेंभी सर्व मृग पक्षीयोंका मांस दीनाथा. सर्व राजार्षि शिकार करते है. शिकार मारनेंमें तिनकों पाप नहीं. श्राद्धमें यज्ञमें मांस खाते है, सो देवोंका उच्छिष्ट खाते है. प्राण सर्वकों वल्लभ है, इसवास्ते प्राणरक्षण यह बमा धर्म है. अहिंसा पालनेसें सर्व यज्ञ, तप, तीर्थका फल मिलता है. ऐसी कथा ११६ में अध्यायमें है.

व्यासजी कहता है. पापी जो है सो यज्ञ तप दानमें पवित्र होता है. राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, नरमेध यज्ञ, ऐसें अनेक प्रकारके यज्ञ है, तिनमेंसे घोमेका यज्ञ तूं कर. पूर्वे रामचंडजीनेंभी यह यज्ञ कराया. यह कथा अश्वमेध पर्वके १ अध्यायमें है.

बिल्वका, खैरका, देवदारुका अनेक यूप यज्ञमें करेथे, सोनेकी ईंटा बनाईथी, चयन कुंम सुंदर बनाया था, और एकेक देवताके वास्ते पशु, पक्षी, बैल, जलचर, जनावर सर्व तीनसो ३०० बांधेथे. तिनमें घोमा बहुत शोभावंत दीख पडता था. सिद्ध और ब्राह्मण, व्यासजी और तिसके बहुत शिष्य सर्व कर्मके जाणकार और नारदजी बमा तेजस्वी और तुंबरू ऋषिभि सभामें थे. यह कथा ८८ में अध्यायमें है.

वैशंपायन कहता है कि पीछे ब्राह्मणोंनें सर्व जनावरका मांस रांधके तैयार करा और शास्त्र प्रमाणे घोमेका मांसभी रांधा राजा और द्रुपदीराजपत्नीकों अवदान संस्कार हूआ. तदपीछे घोमेका कलेजा काढके ब्राह्मणोंनें राजाके हाथमें दीना. तिसमें

राजेका सर्वपाप गया. अन्द अंगोंके मांसकों सोले याज्ञिकोंनें मिलके हवन करा. तिस सन्नामें कृष्ण, बलन्नद्र, प्रद्युम्न वगेरेन्नी थे. तिस पीठे ब्राह्मणोंकि पूजा और दान करा. इसतरें धर्मराजाके घोमेका यज्ञ हूआ. तिसमें धनधान्य रत्न और दारू पीनेको बहुत दीना था. और घीका कर्दम हूआ था और अन्नके पर्वत हूये थे. और जनावर इतने मारेथे कि तिनकी संख्या नहीं. ऐसा यज्ञ करनेसें राजाका सर्व पाप गया. यह कथा ८९ में अध्यायमें अश्वमेध पर्वमें है.

रामायण नामक काव्य ग्रंथ है. सो मूल वाल्मीक ऋषिका हूआ है. और तिस उपरसें अनेक रामायण करी है. तिनमें मुख्य अध्यात्मरामायण है. तिसके उत्तरकांडमें रामचंद्रजीनें रावणको जीत सीताकों ल्याकर अयोध्यामें आये, तव विश्वामित्र, भृगु, अंगिरस, वामदेव, अगस्ति इत्यादि ऋषि रामचंद्रजीको आशिर्वाद देनेको आये तिस वखत मधुपर्क पूजा रामचंद्रजीवें ऋषियोंकी करी सो श्लोक ॥ " दृष्टवा रामो मुनीन् शीघ्रं प्रत्युत्थाय कृतांजलिः । पाद्यार्घ्यादिभिरापूज्य गां निवेद्य यथाविधि " ॥ उत्तरकांड अ० १ श्लोक १३ ॥ टीका " गां मधुपर्कार्थें वृषभं च महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेदिति स्मरणात् " ॥

अर्थ—रामचंद्रजी मुनीयोंकों देखके खमा हूआ, हाथ जोमके पग धोनेको पाणी और इत्यादि पूजा करके विधिसें गाय निवेदन करी. इस उपर टीकाकार लिखता है कि मधुपर्क पूजा करने वास्ते गाय अथवा वलद और वकरा देना चाहियें, ऐसी विधि स्मृतिमें कही हूइ है.

स्मृति, पुराण, इतिहास, तथा काव्य येह ग्रंथ ऋषियोंके करे है. तिस वास्ते आर्ष कहे जाते है. तिस पीछे लोकोंने यह मानाकि अब जगतमें ऋषि नही है, मनुष्य है. तिनके करे ग्रंथ पौरुष कहे जाते है. तिसी तरेंके ग्रंथोको निबंधन्नी कहते है. वे ग्रंथ संस्कृतमें है. और माधव हेमाद्रि कमलाकर इत्यादि ग्रंथकार बहुत हो गये है. तिनोंने आर्ष ग्रंथोकी गया लेके अनेक तरेंके ग्रंथ रचे है. ऐसे निबंध ग्रंथोमें कौस्तुन्नकार विवाह प्रकरणमें गपा हुया ग्रंथ तिसके पत्रे २१७ में लिखा है—

"अत्र जयंतः गोः प्रतिनिधित्वेन गग आलन्यते, उत्सर्जन पक्षेपि गग एव निवेदनीय इति ॥ गौगौरितिगविमनसि धृतायां द्वात्रिंशत्पणात्मकनिष्क्रयगगे मनसि धृते पणात्मको निष्क्रयो देयः। नामांसो मधुपर्को न्नवति इति सूत्रात् ॥ उत्सर्जनपक्षेपि अन्येन मांसेन न्नोजनादानमिति। वृत्तिकृज्जयंतादिन्निरमिधानाच्च"

अर्थ—गायके विकाने बकरा मारना चाहिये जेकर गाय गोंडनेका पक्ष लीना होवेतो तिसके रुपइये ३२ बत्तीस देनें और बकरेके बदले रुपक १ एक देना. मांस विना मधुपर्क होता नही, ऐसा आश्वलायन सूत्रमें लिखा है. इसवास्ते उत्सर्जन पक्ष जेकर माने तोन्नी अन्य तरेंका मांस ल्याके न्नोजन कराना, ऐसें जयंतादि वृत्तिकारोंने कहा है.

॥ श्राद्ध विवेकमें लिखा है ॥

अथ मांसानि ॥ गंमकमांसं विशाणसमयानुस्थितशृंगगाग मांसं सर्वलोहितगगमांस हरिणविचित्रहरिणकृष्णहरिणशंबर

मृगमेषशशककूर्माऽरण्यवराहमांसानि तित्तिरिलावकवर्तकशल्ल-कीक्रकराः एषां पक्षिणां मांसानि क्रकरः करात इति प्रसिद्धः वार्ध्रिणसं मांसं " त्रिपिबंत्विंद्रि प्रक्षीणं श्वेतं वृद्धं अजापतिं वार्ध्रि-णसं तुतं प्राहुर्याज्ञिकाः पितृकर्मणि " कृष्णग्रीवो रक्तशीर्षः श्वेतपक्षो विहंगमः। स वै वार्ध्रिणसः प्रोक्त इत्येषा नैगमी श्रुतिः॥ छागपक्षि णौ वार्ध्रिणसौ तयोर्मांसं मंत्रसंस्कृतमांसं यदा छागादिकं पशुमा-लभ्य मांसमुपादीयते तदा प्रथमं मंत्रेण पशुप्रोक्षणं कर्त्तव्यम्। मंत्रश्च " ओम् पितृभ्यस्त्वाजुष्टं प्रोक्षामि"॥ एकोद्दिष्टे तु पित्रे त्वाजु-ष्टं प्रोक्षामीत्यादिरूपः अनालंभपक्षे सिंहादिहतमांसादिषु न मंत्र संस्कारापेक्षेति सिंहव्याघ्रहतहरिणमांसं लब्धक्रीतछागादिमां-सम् पस्तरायनिपातछागादिमांसं ॥ अथ मत्स्याः महाशल्क-रोहितराजीवपाठीनश्वेतशल्का अन्येपि ॥ काशीके छापेकी पु-स्तकके पत्रे १६ ॥

अर्थ—श्राद्धविवेक नाम एक पुस्तक है. तिसमें मातपिताके श्राद्धकी विधि अनेक प्रकारकी लिखी है. तिसमें श्राद्धमें अनेक प्रकारके जनावरोका मांस भक्षण करना लिखा है. तिनका नाम जंगली भैंस, बकरा, हरिण, रोझ, मींढा, शशा, कछु, जंगली सूयर, और तीतर, लावक इत्यादिक पक्षी और जानवर मंत्रसें पवित्र करी पाखी छागके ऐसा मंत्र पढनाकि मैं पितरोंके वास्ते तुजकों पवित्र करता हुं. ऐसें पढके तिसका मांस लेना अथवा पशुहिंसा करने योग्य न होवतो व्याघ्र या सिंहका मारा हुआ जानवरका मांस लेना. और ऐसा जनावर तिसको मंत्र पढनेकी जरूर नहीं. अथवा मांस लेना है सो इसी। तथा महाशल्क—[illegible] [illegible] राजीव तथा पाठीन इत्यादि भक्षण योग्य है [illegible] [illegible]

टक लिखा है सो प्रसिद्ध है. सरकारी शालामेंन्नी पढाया जाता है. तिसके चौथे अंकमें वशिष्टके शिष्य सौधातक और ज्ञांमायन इन दोनोंका संवाद लिखा है. तिसमें प्रसंग ऐसा है कि राजा दशरथ वशिष्ट मुनिके घरमें आया तब वछडा मधुपर्क वास्ते मारा तब पीछे जनकराजा आया तब मधुपर्क नही करा. क्यों कि यह राजा निवृत्ति मार्गका माननेवाला था. इसवास्ते मधुपर्क न करा. तिसका संवाद नीचे लिखे मुजब जान लेना.

सौधातक—मया पुनर्ज्ञातं व्याघ्रो वा वृको वा एष इति ।

ज्ञांमायण—आः किमुक्तं ज्ञवति

सौधातक—तेन सा वत्सतरी ज्ञक्षिता

ज्ञांमायण—समांसमधुपर्क इत्याम्नायं बहु मन्यमानाःश्रोत्रिया यान्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा महाजं वा निर्वपंति गृहमेधिनः ॥ तं हि धर्मसूत्रकाराः समामनंति ।

सौधातक—येन आगतेषु वशिष्टमिश्रेषु वत्सतरी विशसिता । अद्यैव प्रत्यागतस्य राजर्षिजनकस्य ज्ञगवता वा ल्मीकिनापि दधिमधुज्ञिरेव निर्वर्त्तितो मधुपर्कः

ज्ञांडायण—अनिवृत्तमांसानामेवं कल्पमृषयो मन्यंते । निवृ त्तमांसस्तु तत्रज्ञवान् जनकः ॥

अर्थ—राजादशरथने जब बछडेका मांस खाया तब सौध तकने कहा. यह राजा व्याघ्र या ज्ञेमीया है. तब ज्ञांडायनने कहा. हा यह तुमने क्या कहा. तब सौधायक बोला—इसने बछडे ज्ञक्षण करी तब ज्ञांमायन बोला—श्रोत्रिय अर्थात् अग्निहोत्रि ब्राह्म ण और अन्यागतके वास्ते बछडी देई जाती है. बमा बलद व बमा बकरा गृहस्थ पुरुषोंको मधुपर्कके वास्ते मारके देता है. कि

धर्मको आश्वलायनादि सूत्रकार सम्मत करते है. तब सौवातके बोला जिस वाल्मीकनें वशिष्टादिकोंके आये वछडी मारी तिसी वाल्मीकने आजही पीछा आयें राजऋषि जनककों दहीं मधुतें मधुपर्क करा. तब भांडायन बोला-जिनोंनें मांस खाना नहीं त्यागा तिनका कल्प ऋषिलोक वैसाही करते है, और राजा जनक मांसका त्यागीथा. इस वास्ते दहीं मधुतें मधुपर्क करा.

पद्मपुराणके पातालखंडनें रामाश्वमेधकी कथा है. तिसके साठ अध्याय है तिनमेंसें सातमें अध्यायमें ऐसा लिखा है कि रामचंद्रजीनें अयोध्यामें आया पीछे बहुत पश्चात्ताप करा कि मैंनें युद्धमें अपनें हाथसें बहुत ब्राह्मण रावणादिक मारे तिनका पाप क्योंकर उतरेगा, ऐसा प्रश्न ऋषियोंसें करा. तब ऋषियोंनें जवाब दीनाकि ये सर्व पाप नाश करनें वास्ते तुं अश्वमेध यज्ञ कर. अन्य कोइभी पाप दूर करणेका उपाय नहीं और आगे जो वडे वडे राजे हो गये है तिनोंनें अश्वमेध यज्ञ करके स्वर्गवास पाया है. तिनकी तरें तूंभी अश्वमेध कर तो सर्व पाप नष्ट हो जावेगे. सर्व कथन नीचे लीखा जाता है ॥

राम उवाच ॥ ब्राह्मणास्तु पूजार्हा दानसन्मानभोजनैः । ते मया निहता विप्राः शरसंघातसंहितैः ॥ कुर्वतो बुद्धिपूर्वंमे ब्रह्महत्यास्तु निंदिता ॥ इति ॥ प्रोक्तवंतं रामं जगाद स तपोनिधिः । शेष उवाच ॥ श्रृणु राम महावीर लोकानुग्रहकारक । विप्रहत्यापनोदाय तव यद्वचनं ब्रुवे । सर्वं सपापंतरति योश्वमेधं यजेत वै । तस्मात्त्वं यज विश्वात्मन् वाजिमेधेन शोभिना ॥ स वाजिमेधो विप्राणां हत्यापापापनोदनः । कृतवान्यं महाराजो दिलीपस्तव पूर्वजः॥ मनुश्च नगरो राजा मरुतो नहुषात्मजः । एते ते पूर्वजाः सर्वे यज्ञानूकृत्वा पदं गताः ॥ २६ अध्याय ७ में ॥

धर्मशास्त्रमें सूत्रग्रंथ वेदोंके बराबर माने है. वेदार्थ लेकेही सूत्र रचे है और सूत्रोंसें श्लोकबंध स्मृतियां बनाई गई. पीछे पुराणादि बने है. जब वेदोंको देखिये तो मांस और जीवहिंसा करनेका कुछभी निषेध नहीं. जिस वखत स्मृतियोंके बनानेका काल था तिसमें अर्थात् कलियुगके आरंभमें एक बडा उपद्रव वैदिक धर्म उपर उत्पन्न हूआ. सो जैन बौध धर्मकी प्रबलता हूई. जैन बौधोने वेदोंके हिंसक शास्त्र अनीश्वरोक्त पुनरुक्त अज्ञोंके बनाये सिद्ध करे, जिसका स्वरूप उपर कुछक लिख आये है. इस भरत खंडमें प्रायः हिंसक धर्म वेदोहिंसें चला है. जब वैदिक धर्म बहुत नष्ट हो गया तब लोगोंनें ब्राह्मणोंसें पूछा कि तुमतो वेद वेदोक्त यज्ञादिक धर्म ईश्वरके स्थापन करे जगतके उद्धार वास्ते कहते थे वे नष्ट क्यों कर हो गये. क्या ईश्वरसेंभी कोई बलवान् है, जिसने ईश्वरकी स्थापन करी वस्तु खंडन कर दीनी. तब ब्राह्मणोंनें उत्तर दियाकि यह बुधभी परमेश्वरका अवतार है. सोइ गीत गोविंद काव्य ग्रंथकी प्रथम अष्टपदीमें दशावतार वर्णन करे है तिसमें बुध वास्ते ऐसें लिखा है॥ "निंदसि यज्ञ विधेरहह: श्रुतिजातं सदयहृदयदर्शितपशुघातं केशव धृतबुद्धशरीरं" ॥ गीतगोविंद ॥

अर्थ—भगवान विष्णुने बुद्धका रूप धारके वेदमें कही यज्ञ विधिकी निंदा करी कारण कि यज्ञमें पशु मारे जाते है, तिनकी भगवानकों दया आई. इसी ग्रंथमें एक श्लोकमें दश अवतारका वर्णन करा है, तिनमें बुद्ध विषय ऐसा जयदेव स्वामीनें लिखा है, " कारुण्यमातन्वते " अर्थ—बुद्धनें दया धर्म प्रगट करा, इससेंभी यह सिद्ध होता है दया धर्म आगे बहुत लुप्त हो गया था और वैदिक ब्राह्मणोंनें बहुत जगें हिंसक धर्म अर्थात् हिंसक वैदिक यज्ञ धर्म फैला दिया था. सो सर्व हिंदुस्थान, फारस, रुम, अरब वगैरे दे-

शोंमें फैल गया था. सोई कितनेक देशोमें अवन्नी यज्ञकी कुरवानी प्रमुख करते है, और वेदमंत्रोंकी जगे बिसमिल्लाह प्रमुख शब्द उचारते है. क्योंकि भारत और मनुस्मृतिमें लिखा है—शक यवन और कामभोज पुंड्रक अंबष्ठविरु यवनशक पारद पलव चीन किरात दरद खस ये सर्व क्षत्रिय जातिके लोक थे. ब्राह्मणोंके दर्शन न होनेसें म्लेछ हो गये. इससें यह सिद्ध हूआ कि जिस जगे अवन्नी जानवरोंकी बलि देते हैं अर्थात् कुर्बानीयां करते है ये सर्व ब्राह्मणोनेही हिंसक धर्म चलाया है. और यहभी सिद्ध होता है कि जिस समयमें मनुस्मृति बनाई गई है तिस समयमें इन पूर्वोक्त देशोमें ब्राह्मणोंका वेदोक्त धर्म नहीं रहा था. जब जैन बौधोंका जोर हूआ, तब बौध मतके आचार्य मोद्गलायन और शारिपुत्र प्रमुख पंडितोंनें देशोमें फिरफिरके अपने उपदेशद्वारा उत्तर पूर्वमेंतो चीन ब्रह्मातक बौधधर्म स्थापन करा और दक्षिणमें लंकातक स्थापन करा. उधर जैनाचार्य औरजैन राजे संप्रति प्रमुखोने उपदेशद्वारा बंगालसें लेकर काबूल, गजनी, हिरात, बुखारा, शक पारसादि देशोंतक और नेपाल स्वेतांबिका तक, दक्षिणमें गुजरात, लाट, कोंकण, कर्णाट, सोपारपत्तन तक जैन मतकी वृद्धि स्थापन करी. तब हिंदुस्थानके ब्राह्मण कहनें लगेकि कलियुग उत्पन्न हूआ, इस वास्ते वैदिक धर्म डूब गया. कलि अर्थात् जैनबौधमतकी प्रबलता, क्या जानें ब्राह्मणोंने यह युग जुदा इसी वास्ते माना हो, जैन बौध मतकी प्रबलतामें एक और ब्राह्मणोंकी जानकों क्लेश उत्पन्न हुआ कि कितनेक लोकोंने सांख्य शास्त्रका अभ्यास करके कहने लगे के ब्राह्मण लोग अग्नि, वायु, सूर्य इत्यादि अनेक देवतायोंकी उपासना करते है, और तिनके नामसें यज्ञ याग करते है. परंतु ये देवते कहां कहे है. ये तो पदार्थ है. इनके वास्ते जीवहिंसा करनी और

धर्म समजना यह बहुत बडा पाप है, इस वास्ते वेदोक्त धर्म ठीक नहीं. जिसकों मोक्षकी इच्छा होवे सो प्रकृति पुरुषके ज्ञानसें और त्याग वैराग्यसे लेवे परंतु जीववध करनेंसें कदापि मुक्ति नहीं होवेगी. तब तो चारों ओरसे वैदिक धर्मवाले ब्राह्मणोंकी निंदा होनें लगी, और तिनकों लोगोंनें बहुत धिक्कार दिया. तिससें वेदोंके पुस्तक ढांकके रख छोडनेकी जरूरत हो गइ. और कितनीक वेदोक्त विधियां त्याग दीनी, और स्मृति, पुराण वगैरे बनाके तिनमें लिख दिया कि कलिमें फलानी फलानी चीज करनी और जो जो बाते जैन बौध धर्मकी साथ मिल जावे ऐसी दाखल करी, और कितनीक नवी युक्तियां निकाली, वे ऐसी कि अगले ऋषि जो यज्ञ करते थे वे जनावरोकों मारके उनका मांस खाके फिर जिता कर देते थे, वे बडे सामर्थ्यवाले थे. कितनेक कहने लगे कि मंत्रोका सामर्थ्य तिन ऋषियोके साथही चला गया. परंतु यह सर्व कहना ब्राह्मणोंका जुठा है शास्त्रोंमेंसें यह प्रमाण किसी जगेमें नही मिलता है. परंतु यह प्रमाणतो मिलता है कि ऋषि जनावरोंको मारके होम करते और तिनका मांस खाते थे, तिस वखतमें जो वेद थे वेही वेद इस वखतमेंभी है. परंतु वेदोक्त कर्म जो कोई आज करे तो तिसकी बहुत फजीती होवे. मधुपर्क, अनुस्तरणी, शूलगव, अश्वमेधमें संवेशन प्रकार, अश्लील भाषण इत्यादि वेदोक्त कर्म आज कोई करें तो तिसकी संगत कोई लोकभी नही करे, और तिसके साथ व्यवहारभी नही रख्खे. और यह पूर्वोक्त कर्म देखिये तो बहुत बुरा दिख पडता है. गर्भाधान संस्कारमें ऋग्वेदका मंत्र पढते है सो यह है.

तां पूषं शिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्यावपंति॥

यानउविंशति विश्रयाते यस्यामुशंतः प्रहारमेशपं ॥ ऋ-ग्वेद० अ० ८॥ इसका अर्थ वहोत बीनत्स है.

निगमप्रकाशका कर्त्ता लिखता है कि ऐसे मंत्रका अर्थ लिखीये तो वहुत अमर्यादा होवे इस वास्ते छाना है सोही नला है.

१२०० सो वर्ष पहिलां शंकर स्वामी हूये तिनोने राजायोंकी मदतसें बौद्द धर्मवालोंकों कतल करना शुरु किया, परंतु जैन धर्म सर्व देशोमें दक्षिण, गुजरातादिक देशोमें वना रहा. शंकर स्वामीजी वेदोक्त हिंसाको अच्छी मानते थे, क्योंकि शंकर विजय नामक ग्रंथ शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिका करा हुआ है तिसके छव्वीसमें अध्यायमें बौधोंके साथ संवाद जिसतरेंसें हूआ है सो लिखा है. शंकरस्वामीनें कहा है कि वेदमें जो हिंसा लिखी है सो हिंसा नही, यह तो धर्म है. सो संनाषण नीचे लिखा जाता है. " इदं आह सर्वप्राण्यहिंसा परमो धर्मः । परमगुरुनिरिदमुच्यते ॥ रे रे सौगत नीचतर किं किं जल्पसि । अहिंसा कथं धर्मो नवितुमर्हति । यागीयहिंसायाधर्मरूपत्वात् तथा हि अग्निष्टोमादिक्रतुः छागादिपशुमान् यागस्य परमधर्मत्वात् । सर्वदेवतृप्तिमूलत्वाच्च । तद्द्वारा स्वर्गादिफलदर्शनाच्च पशुहिंसा श्रुत्याचारतत्परैरपिकरणीया तद्व्यतिरिक्तस्यैव पाखंरुत्वात् तदाचाररता नरकमेव यान्ति ॥ " वेदनिंदापरा ये तु तदाचारविवर्जिताः ते सर्वे नरकं यांन्ति यद्यपि ब्रह्मबीजजाः "॥ इति मनुवचनात् ॥ हिंसा कर्तव्येत्यत्र वेदाः सहस्रं प्रमाणं वर्तते ब्रह्मक्षत्रवैश्यशूद्राणां वेदेतिहासपुराणाचारः प्रमाणमेव तदन्यः पतितो नरकगामी चेति सम्यगुपदिष्टः सौगतः परमगुरुं नत्वा निरस्तसमस्ताभिमानः पद्मपादादिगुरुशिष्याणां पादरक्षधारणाधिकारकुशलः सततं तदु-

भिन्नावजनकुणपुष्टतनुरजवत् ॥ इत्यनन्तानंदगिरिकृतौ षड्विंश प्रकरणं ॥ २६ ॥

अर्थ—सौगत कहता है अहिंसा परम धर्म है, तब शंकर कहता है, रे रे सौगत नीचोंमे नीच, क्या क्या कहता है ? अहिंसा क्योंकर धर्म हो सकता है यज्ञ हिंसाको धर्मरूप होनेसे, सोई दिखाते है—अग्निष्टोमादि यज्ञमें छागादि पशुका मारना परम धर्म है, और सर्व देवता तृप्त हो जाते है. और इस हिंसासें स्वर्ग मिलता है, इस वास्ते धर्म है. पशुहिंसा श्रुतिका आचार है, अन्य मतवालोंकोभी अंगीकार करणे योग्य है. वैदिक हिंसासें उपरांत सर्व पार्वंम है. जे पार्वंम मानते वे नरकमें जाते है. जो वेदकी निंदा करते है और जो वेदोक्ताचार वार्जित है वे सर्व नरकमें जायेंगे, ब्रह्माका बीज क्या न हो ? यह मनुनें कहा है. हिंसा करनी इसमें वेदोंकी हजारों श्रुतियां प्रमाण देती है. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र इनको वेद, इतिहास, पुराणोंका कहा प्रमाण है, इससे अन्य कुछ मानेतो नरकगामी है. यह सुणके सौगत शंकरके पद्मपादादि शिष्योंका नौकर बनके उनकी जूतीयोंका रखनेवाला हूआ. और उनकी जूठ खाकर मस्तरहने लगा.

अब विद्वानोंको विचारना चाहिये कि शंकरस्वामी आनंदगिरि ये से कैसेक अकलवंत थे क्योंकि प्रथम जो संबोधन नीचतरका करा है यह विद्वानोंका वचन नही, फेर अहिंसा धर्मका निषेध करा यह वचन निर्दयी शौकरिक, कसाई, भंगी, ढेड, चमारों और बावरीयोंका है कि जिनोंने जीवहिंसाहीसें प्रयोजन है और यज्ञकी हिंसा बहुत अच्छी करी, सो अप्रमाणिक है. और इस जो मनुका प्रमाण दीया सो गया है, जैसा कोईभी कहा हमारा गुरु नरक नरक है, इसमें प्रमाण, मेरा आत्मा जो कहता है के

गुरु सच्चा है. श्रुतिका जो प्रमाण दीया सो ऐसा है कि मेरी भार्या जो कहती है गुरु सच्चा है. क्या विद्वानोके यही प्रमाण होते है ? जो प्रतिवादीके खंडन करनेकों अपणे शास्त्रका प्रमाण देना यहतो निकेवल अन्यायसंपन्नताका लक्षण है. क्योंकि जब प्रतिवादि अन्यमतके शास्त्रोंकोही नही मानता तो फेर वो उसके प्रमाणकों क्यों कर मानेगा ? इसी आनंदगिरिने अगले प्रकरणमें जैनमतका खंडन लिखा है. वो बिलकुल जूठ है. जो उसने जैनमतकी तर्फसें पूर्वपक्ष करा है, सो उसके जैनमतके अनभिज्ञताका सूचक है. क्योंकि जो उसने पूर्वपक्ष जैनमतकी तर्फसें करा है वो पक्ष न तो किसी जैनीनें पीछे माना है और न वर्त्तमानमें मानते है, और न उनके शास्त्रोमें ऐसा लिखा है. इस वास्ते शंकर और आनंदगिरि ये दोनो परमतके अजाण और अभिमानपूरित मालुम होते है; जो मनमें आया सो जूठा उतपटंग लिख दिया. जैसें वर्त्तमानमें दयानंद सरस्वतीने अपने बनाये सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथमें चार्वाकमतके श्लोक लिखके लिख दीयाकि ये श्लोक जैनीयोंके बनाये हूये है. ऐसेहि आनंदगिरि और शंकर स्वामीने जो जैनमतका पूर्वपक्ष लिखा है सो सदा जूठ लिखा है. इस वास्ते मैंने विचाराकि ऐसे आदमीयोंका लिखा खंडन लिखके मै काहेकों अपना पत्रा विगाडुं.

माधवाचार्यने दूसरी शंकरदिग्विजय रची है शंकर और आनंदगिरिकी अज्ञता छिपाने वास्ते; क्योंकि माधवाचार्यने कितनीक बाते जैनमतकी पूर्वपक्षमें लिखी है. पर शंकरदिग्विजय अहंकार आदिके उदयमें बनी है ने कुमतोंके खंडन करनेमें. जैसे दयानंदने दयानंद दिग्विजयार्क रचवाती है. दयानंदने जिसमतको लीना है सो सर्व लोग जानते है. तिसका प्रकाशका कर्ता लिखता है कि शंकरस्वामी वाममार्गी थे ऐसे लोक कहते है. क्योंकि

जहां जहां शंकरस्वामीका मठ है तहां शक्तिकी उपासना विशेष करके चलती है. और द्वारकामें शंकरस्वामीका शारदामठ है. तहां श्रीचक्रकी स्थापना पत्थर कोरके करी है. और बहुत परमहंस, कौलिक, अघोरी, वाममार्गी, सर्वंगी, इत्यादि सर्व ब्रह्ममार्गी, कहे जाते है. परंतु मदिरा मांस खूब पीते खाते है. श्रीचक्र वाममार्गीयोंके पूजन करनेका देव है, सो शंकरस्वामीनें स्थापन करा है, यह कथन शंकरविजयके चौराठमें तथा पैंसठ ६४ । ६५ में प्रकरणमें है सो निचे लिखा जाता है.

" या देवी सर्वभूतेषु ज्ञानरूपेण संस्थिता। इति मार्कंडेयवचनात् परा देवता कामाक्षीति " अध्याय १४ में । एवमेतस्मिन्नर्थे निष्पन्ने परशक्तिस्वरूपाभिव्यंजकं श्रीचक्रनिर्माणं क्रियते भगवद्भिराचार्यैः तत्रश्लोकः " बिंदुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म, मन्वस्त्रनागदलसंयुतषोडशारम् । वृत्तत्रयश्च धरणीसदनत्रयश्च श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः " ॥ श्रीचक्रं शिववपुः ॥ इत्यादि वचनैः श्रीचक्रस्य शिवशक्त्यैकरूपत्वात् मुक्तिकांक्षिभिः सर्वैः श्रीचक्रपूजा कर्तव्येति सर्वेषां मोक्षकामार्थे दर्शनाय श्रीचक्रं आचार्यैर्निर्मितमिति ॥ पंचषष्टी प्रकरणं ॥

इस लिखनेसें यह सिद्ध होता है कि शंकरस्वामी वाममार्गीयोंकाभी आचार्य था, जब ऐसा हूआ तबतो शंकरस्वामीने अनुचित कर्म किया होगा. शंकरस्वामीनेतो हिंसाहीकों धर्म माना, जबसे शंकराचार्यको राजा लोगोंकी बहुत मदत मिली तब बौद्धोंसे लडाई करी और बौद्ध लोगोंको विना गुनाहके कतल कर डाला. यह कथन माधवाचार्य अपने बनाये दूसरे शंकरविजयमें लिखता है. वे श्लोक ये है–" आसेतुरातुषाराद्रि बौद्धानां वृद्धबालकं। न हंति यः स हंतव्यो भृत्यं इत्यन्वशात् नृपः ॥ न वेदवादिनां नाशं प्राप्ते

कंठगतैरपि। हस्तिना ताड्यमानोपि न गच्छेज्जैनमंदिरं ॥ तद पिछे बौद्धधर्म हिंदुस्थानसें दूर हो गया और उपनिषदोंका मत चला परंतु सो मत लोगोंकों अछा नही लगा, तव लोगोंने भक्तिमार्ग निकाला. यज्ञके ठिकाने पूजा सेवा स्थापी और ब्राह्मण कर्मकांडमें जहां दर्भ वापरता था तहां भक्तिमार्ग वाले तुलसीदल वापरनें लगें, और पुरोडाश अर्थात् यज्ञका शेष भागके वदले प्रसाद दाखल करा. और अग्निकी जगें विष्णु रामचंद्रजीकी स्थापना करी. और महाक्रतुकी जगें छपन भोग इत्यादि महोत्सव शुरू करे. और वेदोंके पाठके ठिकानें माला फेरणी ठहराई, और प्रायश्चित्तकी जगें नामस्मरण ठहराया, और अनुष्ठानोंकी जगें उपर भजन ठहराया, और मधुपर्ककी जगें अर्घ्य अर्थात् पाणीका लोटा भरके देना ठहराया. उपनिषदके मतकों अद्वैतमत कहते है और भक्तिमार्गकों द्वैतमत कहते है, परंतु ये दोनों मत कर्मकांडके खंडन करने वाले हे. और जैनमतभी वैदिक यज्ञादि कर्मका खंडन करने वाला है. तिस वास्ते ब्राह्मणोंका मत वहुत नष्ट हो गया तिससें ब्राह्मण पोकार करणे लगे कि कलियुग आया, वैदिक धर्म डूवने लगा, तव यह श्लोक लिख दीया.

"धर्मः प्रव्रजितः तपः प्रचलितं सत्यं च दूरं गतं
पृथ्वी मंदफला नृपाः कपटिनो लौल्यं गता ब्राह्मणाः।
नारी यौवनगर्विता पररताः पुत्राः पितुर्द्वेपिणः
साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्रायः प्रविष्टे कलौ"॥ [१] ॥

१. धर्म चल गया, तप चालित हुवा, सत्य दूर हो गया, पृथ्वी मंदफल पामी हुइ, राज लोक कपटी हुवा, ब्राह्मण लुब्ध हो गया, स्त्री यौवनका गर्व करने वाली ओर परासक्त हुइ, पुत्र पिताका द्वेषी हुवा. साधु दुखी है और दुर्जन सुखी होता है, एसा कलिकाल प्रविष्ट होनेसे हुवा है.

कर्मकांमकी निंदा करने वाला सर्व देशोमें उत्पन्न हो गये, दक्षिण देशमें तुकाराम साधु हुआ तिसनें बहुत वैदिक कर्मकांडकी निंदा करी है तथा कमलाकर ज्नट्ट निर्णयसिंधुके तिसरे परिछेदमें प्रथम प्रकरणमें अंतमें अनेक पुराणोंमें जो काम कलियुगमें नही करणे वे सर्व इस जगें एकठे करे है; तिनमेंसें कितनेक वचन लिखते है. ॥ १ ॥समुद्रयातुः स्वीकारः कमंडलुविधारणं । द्विजानां सर्ववर्णानां सा कन्यापयमस्तथा ॥ देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः । मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥ दत्ताक्षतायाः कन्यायाःपुनर्दानं परस्य च । दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधको॥ महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः । इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥ यद् वृद्धनारदपुराणे ॥ २ ऊढायाः पुनरुद्वाहं ज्येष्ठांशं गोवधं तथा । कलौ पंच न कुर्वीत भ्रातृजायां कमंमलुं ॥ हेमाद्रि ॥ ३ ॥ गोत्रान्मातृसपिंडाच्च विवाहो गोवधस्तथा ॥ नरमेधोऽश्व मधं च कली वर्ज्यां द्विजातिभिः ॥ ब्राह्मे॥ ४ ॥ विधवायां प्रजोपत्ती देवरस्य नियोजनं। बालायाः क्षतयोन्यास्तु न रेणान्येन संस्कृतिः ॥ कन्यानां सवर्णानां विवाहश्च द्विजन्मभिः। आततायिद्विजाग्र्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् ॥ द्विजस्याब्धौ तु नौयातुः शोधितस्याप्यसंग्रहम् । सत्रदीक्षा च सर्वेषां कमंमलुविधारणं ॥ महाप्रस्थानगमनम् गोसंज्ञप्तिश्च गोसवे । सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणंच संग्रहः ॥ अग्निहोत्रहवन्याश्च लेहो लीढापरिग्रहः । वृत्तस्वाध्यायसापेक्ष्यमघसंकोचनं तथा ॥ प्रायश्चित्तविधानंच विप्राणां मरणान्तिकं । संसर्गदोषस्तेयान्यमहापातकनिष्कृतिः ॥आदित्यपुराणे ॥ ५ ॥ वरातिथिपितृभ्यश्च पशूपाकरणक्रिया । दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ॥ शामित्रं चैव विप्राणां सोमविक्रयणं तथा कलौ वर्ज्यं लिख्यते ॥ इति स्मार्तः ॥ महापापे रहस्यकृते-प्रायश्चित्तं नेष्यते ६ अग्निहोत्रं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकं । देवरा-

श्च सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत् ॥ संन्यासश्च न कर्तव्यो ब्राह्मणेन विजानतः । यावद्वर्णविभागोस्ति यावद्वेदः प्रवर्त्तते ॥ संन्यासं चाग्निहोत्रं च तावत्कुर्यात्कलौयुगे । एतेन चत्वार्यब्दसहस्राणि चत्वार्यब्दशतानि च कलेर्यदागमिष्यन्ति तदा त्रेतापरिग्रहः ॥ स्मृतिचंद्रिकायां ॥

अर्थ—एक जगें लिखा है कलियुगमें यह काम नही करणे. समुद्रमें जाना १ सन्यास लेना २ नीच जातिकी कन्यासें विवाह करना ३ देवर पति करना ४ मधुपर्कमें जीव मारना ५ श्राद्धमें मांस खीलाना ६ वानप्रस्थाश्रम लेना ७ पुनर्विवाह करना ८ बहुत वर्षतक ब्रह्मचर्य पालना ९ मनुष्यका यज्ञ करना १० घोडेका यज्ञ करणा ११ जन्म तक यात्रा करणी १२ गायका यज्ञ करना १३. फेर दूसरी जगें कलिमें यह नही करणा लिखा है ॥ विधवाका पुनर्विवाह १ बडे भाईको बडा हिस्सा देना २ सन्यास लेवी ३ भाइकी विधवासें विवाह करना ४ गोवध करना ५ ॥ तीसरी जगें यह लिखा है २ मामाकी बेटीसें विवाह करना १ गो वध करना २ नरमेध करना ३ अश्वमेध करना ४ मदिरा पिना ४ फिर चोथी जगें यह लिखा है ॥ देवरको पति करना १ स्त्रीका पुनर्विवाह करना २ नीच जातीकी कन्यासें विवाह ३ युद्धमें ब्राह्मणको मारना ४ समुद्रयात्रा करनी ५ सत्र नामक यज्ञ करना ६ संन्यासी बनना ७ जन्मतक यात्रामें फिरना ८ गोसव नाम यज्ञमें गोवध करना ९ सौत्रामणी यज्ञमें मदिरा पीना १० अग्निहोत्र ११ मरणप्रायश्चित्त संसर्गदोष १३. दत्त और औरस विना अन्य पुत्र करना १४ शामित्र अर्थात् यज्ञमें पशु मारनेवाला पुरोहित १५ सोमविक्रय १६. पांचमी जगें यह ५ चिजें न करना लिखा है. अग्निहोत्र १ गोवध २ संन्यास ३ श्राद्धमें मांसभक्षण ४ देवरको

पति ५. इस मूजब कर्म नही करना और संसर्ग दोष नही और गना पाप होवे सो पाप नही गिनना. संन्यास तथा अग्निहोत्र वेद तथा वर्ण जहां तक रहे तहां तक करना.

उपरके लिखे कर्मोमेंसें कितनेक अब चलते है और कितनेक नही चलते है. जो चलते है वे ये है. मामेकी वेटीसें विवाह करते है १. वडे जाईकों वडा हिस्सा देते है २. जावजीव ब्रह्मचारी रहते है ३. सन्यास है ४. अग्निहोत्री ब्राह्मण है ५. समुद्रमें जाते है ६. संसर्गदोष गिनते है ७. महाप्रस्थान अर्थात् जन्म तक यात्रा करते है ८. मांसजक्षणजी गौडब्राह्मण, सारस्वत, कान्यकुब्ज, मैथिल और कितनेक उत्कलजी करते है ए पंचडाविडमें यज्ञयागादिक कर्ममें मांसजक्षण करते है १०. कलियुगमें अश्वमेध करणका निषेध है तोजी राजा सवाई जयसिंहे जयपुरमें कराया ११. सोमविक्रय और शामित्र ये १२ । १३ कितनीक जगें होते है. इस वास्ते सर्व शास्त्र ब्राह्मणोंनें स्वेच्छासें जो मन माना सो लिखके बना लीये. जहां कही अडचल पडी वहीं नवा शास्त्र अपने मतवालाका बनाके खडा कर दीया अथवा नव श्लोक बनाके पुराणे शास्त्रोमें मिला दीये. इस वास्ते एक पुराणकी प्रतिमें चार श्लोक अधिक है तो दूसरीमें दश अधिक है. जैसें जैसें काम पडते गये वैसें वैसें बनावटके श्लोक मिलाते गये. श्लोकबद्ध स्मृतियोंमेंजी ऐसी ही गरबड कर दीनी है. और इन पुराणोंमें ऐसे ऐसे कथन लिखे है कि जिसनें सुननेसें श्रोताजी लज्जायमान हो जावे. और सुननेवालेकों अधर्मबुद्धि उत्पन्न हो जावे. और ऐसे ऐसे उतपटंग लिखे है कि कोइ विद्वान सच्चा कर न माने. पुराणोहिमें नही वलके वेदोमें महाहिंसक लज्जनीय पुनरुक्त निरर्थक बहुत वचन है सो उपर लिख आये है. थोमेसें आगेजी लिख दिखाते है.

नमोस्तु सर्वेभ्यो ये केचन पृथ्वी मनु । ये अंतरीक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्वेभ्यो नमः॥ होता यक्षदाश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुपेता ॰ हविर्होतयजहोता यक्षसरस्वतीमेपस्य वपाया मे॰ होता यक्षादिंद्रमृपभस्य वपायामे॰ २१-४१ ॥

यास्मभ्यमरातीयाद्यश्चनो द्वेपते जनः निंद्रायौ अस्मान्धिप्साच्च सर्वतं भस्मसात्कुरु अध्याय ११ । ८० ॥

ये जनेषु मलिम्लवस्तेनासरतस्करावने ॥ यकक्षे वधा यनस्तांस्तदेधामि जंभयोः॥ अध्याय ११-१९ ॥ शुक्लयजुर्वेद संहिता ॥

भावार्थ—प्रथम मंत्रमें सर्पोंकी स्तुति, दूसरे मंत्रमें वपा अर्थात् कलेजेका यज्ञ करना. तीसरेमें शत्रुयोंके नाश करनेका मंत्र है, और चौथेमें चोरांके नाश करनेका वैदिक पुस्तकोंमें जे देवते है और तिनकी उपासना प्रार्थना जो है सो गृह्यसूत्रकी दूसरे अध्यायकी चौथी कांडिकाके प्रथम सूत्रमें तर्पण करणेके देवतायोंकी यादगीरी लिखी है, सो देख लेनी तिसका नमुना नीचे मुजब देते है. प्रजापति १ ब्रह्मा २ वेद ३ देव ४ ऋषि ५ सर्वाणि छन्दांसि ६ ॐकार ७ वषट्कार ८ व्याहृतयः ९ सावित्री १० यज्ञ ११ द्यावापृथिवी १२ अंतरीक्ष १३ अहोरात्र १४ संख्या १५ सिध्दा १६ समुद्रा १७ नद्यः १८ गिरयः १९ क्षेत्रौपधिवनस्पतिगंधर्वाप्सरसो २० नाग २१ वयांसि २२ गावा २३ साध्या २४ विप्रा २५ यक्षा २६ रक्षांसि २७. इस समयके बुद्धिमान लोग कितनेक देवतायोंका छोड कांई और सर्प, नाग, पर्वत, नदी, वनस्पति, संख्या, व्याहृति,

वषट्कार, यज्ञ, इत्यादिकोंको कदापि देवता न मानेंगें, यह भी वेदके सूत्रका कथन है.

तथा प्रार्थना करनेमें शतरुद्रीय कि जिसको रुद्री कहते है यह महामंत्र गिना जाता है. तिसमें शिवका वर्णन है. तिसके थोडेसें वचन आगे लिखते है.

नमोस्तु नीलग्रीवाय, सहस्राक्षाय मीढुषे, विज्यन्धनुः कपर्दिनो नमो हिरण्यबाहवे, वनानां पतये निषंगीणस्ते-नानां पतये, वंचते परिवंचते तस्कराणां पतये, नक्तंचर-द्भ्यः, गिरिचरायतक्षेभ्यः ॥ असौयः ताम्रो अरुणः ॥ अहींश्च सर्वां जंभयं ॥ रथकारेभ्यः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यः श्वपतिभ्यः शितिकंठः कवचिने, आरात्तेगोघ्नउतपूरुषघ्ने, अग्रे वधाय दूरे वधाय, कुल्याय शष्पाय च पर्णाय, सि-कताय, व्रजाय, इषुकृद्भ्यः धन्वकृद्भ्यः गव्हरेष्ठाय धन्व कृद्भ्यः पशूनां माभेर्मा मारीरीषा मानस्तोकेमनाधि भे-षधि विशिखासः असंख्यातानि सहस्राणि ये रुद्राः ये पंथा पथि रक्षये ये तीर्थानि प्रचरंति ये अन्नेषु विविध्यं ति, दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीची दशो र्ध्वा यश्च नो द्वेष्ठित मेषां जंभे दधामि वाजश्च मे क्रतु-श्च मे यज्ञेन कल्पताम्,ओजश्च मे शं च मे, रयिश्च मे, व्रिहयश्च मे अश्मा च मे, अग्निश्च मे आग्रयणश्चमे स्रु-चश्च मे आयुर्यज्ञेन कल्पतां ॥ देवा यद्यज्ञं तन्वाना अब-ध्नं पुरुषं पशुं ॥ रुद्री नारायणसूक्त ॥

अर्थ—नमस्कार करुं तेरे ताइ तेरा कंठ काला है. तेरे हजार आंख है. फेर तु जलकी वृष्टि करनेवाला है. तेरा धनुष तैयार है. तुं जटावाला है, तेरे स्कंध उपर सुवर्णका अलंकार है. तुं जंगलका राजा है, तुं खड्गधारी है और गुप्त चोरोका सरदार है, तुं दगेबाजी करनेवाला और तुं चोरोंका स्वामी है. रात्रीमें फिरनेवाला पर्वतमें फिरनेवाला और सुतारभी तुं है, फेर तुं लाल और भगवांभी तुं है, सर्व जगके सर्पोका मारणेवालाभी तुं है. गाडी बनानेवाला तुं है, कुंभार तुं है, लुहारभी तुं है, तुं कुत्ता है और कुत्तोका पालनेवालाभी तुं है. तुं सफेद गलेवाला है और बकतर पहेरे हूवे है, फेर तुं गायोंका मारनेवाला और पुरुषोंके मारनेवाला, सन्मुख आवे तिसका मारनेवाला और दूर होवे तिसका मारनेवाला झाडोमें रहनेवाला, और घासमें रहनेवाला तुं है. फेर मैदानमें रहनेवाला, रेतमें रहनेवाला, ढोरोंके टोलेमें तीर बनानेवाला, धनुष बनानेवाला, जंगलमें रहनेवाले जनावरोंकों लडाना नही मारना नही मेरे बेटोंको न मारना. तुं वैद्य है. तेरे चोटी नही है. तेरी मूर्तियोंकी गिनती इतनी है. तुं रस्तेमें रहता है कितनेक तीर्थोमें रहता है. कितनीक रसोइयोमें विघ्न करते हो. पूर्व दिशामें तुम दश, दक्षिणमें दश, पश्चिममें दश, उत्तरमें दश. और आकाशमेंभी तुम दश हो. जो हमारा शत्रु होवे तिसकों तुं डाढमें डालके पीसके चाबजेर, अन्न दे, यज्ञ करनेकी शक्ति दे, यज्ञ करने योग्य कर, कल्याण दे, धन दे, सठी दे, तुं पत्थर दे, अग्नि दे. आग्रयण नामक यज्ञ करनेकी सामर्थ्य दे, यज्ञका पात्र दे. आयुष दे. यज्ञके काममें उपयोग आवे ऐसा कर, रुद्रीमें रुद्र देवकी प्रार्थना है. जिसमें यज्ञ करने वास्ते सर्व प्रकारकी सामग्री मुजरों है. और वो सामग्री देखे वास्ते लिखी है सो आगे लिखते है.

इध्मश्च मे वर्हिश्च मे वेदिश्च मे धिष्णियाश्च मे० ॥ शतरुडीय ॥

ऊपर मंत्रका मूल वताया है परंतु मंत्रतो दो तीन वर्गतक लंवा है. इससें यज्ञमें काम आवे ऐसी सामग्री महादेवसें मांगी है. इससें ऐसा मालुम होता है कि आगे हिंसक यज्ञ करनेकी वहुत चाल थी.

प्रथमतो इस जगत नरतखंममें इस अवसर्पिणी कालमें श्री आदीश्वर नगवाननें जैनमत प्रचलित करा तिस पीछे मरीचि के शिष्य कपिलनें अपनें अपनें आसुरी नामा शिष्यको सांख्य मतका उपदेश करा, तव सांख्य मतका पष्टि तंत्र शास्त्र रचा गया. तद पीछे नवमें सुविधिनाथ पुष्पदन्त अर्हतके निर्वाण पीछे जैन धर्म सर्व नरतखंममें व्यवच्छेद हो गया. तिसके साथ चारों आर्य वेदन्नी व्यवच्छेद हो गये. तव जो श्रावक ब्राह्मणके नामसें प्रसिद्ध थे वे सर्व मिथ्यादृष्टी हो गये. चारों आर्य वेदोंकी जगे चार अनार्य वेदोंकी श्रुतियां वना दीनी. महाकालासुर शांमील्य ब्राह्मणका रूप धारके क्षीरकदंवक उपाध्यायके पुत्र पर्वतके साथ मिलके महाहिंसारूप अनेक यज्ञ सगर राजासें करवाये. पीछे व्यासजीनें सर्व ऋषि अर्थात् जंगलमें रहनेवाले ब्राह्मणोंसें पूर्वोक्त सर्व श्रुतियां एकठीयां करके ऋग्, यजुः, साम, अथर्वण नामक चार वेद रचें. फेर वैशंपायन व्यासका शिष्य तिसके शिष्य याज्ञवल्क्यनें वैशंपायनके साथ तथा अन्य ऋषियोंके साथ लढके शुक्ल यजुर्वेद वनाया. और व्यासके शिष्य जैमिनीनें मीमांसा सूत्र रचे. पीछे शौनक ऋषिनें वेदा ऊपर ऋग्विधान सर्वानुक्रम इत्यादिक ग्रंथ रचे है. और शौनक ऋषिके शिष्य आश्वलायनने ऋग्वेदका सारनूत आश्वलायन नामक १२ वारें अध्यायका सूत्र रचा. शौ-

नकस्य तु शिष्योऽभूत् भगवान् आश्वलायनः । कल्पसूत्रं चकारायं महर्षिगणपूजितः" ॥ इसी तरें अकेक शाखाके अपने अपनें वेदों उपर अनेक आचार्योंनें कात्यायन, लाट्यायन, आपस्तंब, हिरण्यकेशी प्रमुख अनेक सूत्र रचे है. इन सूत्रोंमेंभी बहुत जीव हिंसा करनी लिखी है. इन सूत्रोंसे श्लोकबद्ध स्मृतियां बनाई गई है. वे मनु, याज्ञवल्क्य प्रमुख है. मनु १ याज्ञवल्क्य २ विष्णु ३ हरित ४ उशना ५ आंगिरस ६ यम ७ आपस्तंब ८ संवर्त ९ कात्यायन १० बृहस्पति ११ व्यास १२ शंखलिखित १३ दक्ष १४ गौतम १५ शातातप १६ वशिष्ट १७ इत्यादि अन्यभी स्मृतियां नवीन रची गई है. इनमेंभी हिंसा करनी लिखी है. स्मृतियोंमें वेद और सूत्र एक सरीखे माने है. और ६ वेदके अंग माने है. तिनमें व्याकरण वेदका मुख कहेजाता है और सूत्र हाथ, ज्योतिष नेत्र, शिक्षा नाक, छंद पग, निरुक्त कानके कहे जाते है. इस तरेंसें वैदिक धर्म चलता रहा क्योंकि पूर्वके ऋषिलोक सर्वज्ञ ठहराये. उनके वचनोंमें कोई तकरार न करे. तिनको नास्तिक, वेदबाह्य, राक्षस इत्यादिक कर देते थे इस वास्ते बहुत वर्ष तक हिंसक यज्ञ याग करनेकी रीती चलती रही. जब बौध बौधनें जैनमतका जोर बढा तब लोगोंकी वर्षे अर्थात् वैदिक हिंसक यज्ञोंसे श्रद्धा उठ गई. लोगोंको हिंसा बुरी लगी तब विचार करा कि हमारे देव और हमारे अनुष्ठान और हिंसा ये ठीक नहीं तिनसें ब्रह्मविद्याका उद्भव हुई. तिस वास्ते उपनिषद् बनाये और तिनमें यह वचन दाखल करे.

अधीहि भगवन् ब्रह्मेति ॥ न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ॥ ब्रह्मविदाप्नोति परम् ब्रह्मो-जिज्ञासस्व यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ॥ अथातो

न्रह्मजिज्ञासा ॥ इत्यादि ॥

फेरतो न्नी लोगोंकों संतोष न आया तब ईश्वरवादीयोंका मत निकला. यद्यपि इनोंनें वेदोकी निंदा अपने सूत्रोंमें नहीं करी तोन्नी इनके मत वेदसें बहुत विरुद्ध है. न्यायका कर्त्ता गौतम १ योगका कर्त्ता पतंजलि २ वेदांतका कर्त्ता व्यास ३ वैशेषिकका कर्त्ता कणाद ४ इनोंनें एक ईश्वरकों एक माना और वेदोक्त देवताकों नही माना. इनोंके मत चलनेंसें वैदिक कर्मकांम बहुत ढीला पम गया. इनोंने अपनें मतके शास्त्रोंमें शम, दम, नुपरति, तितिक्षा समाधि, श्रद्धा, नित्यानित्य वस्तुका विवेक इत्यादिक साधन लिखके लोगोंकी श्रद्धा दृढ करी. इनोंनें ज्ञानहीकों मुख्य साधन माना परंतु तीर्थादिकोकों मानना छोम दीया. जैसें शिवगीतामें लिखा है.—

" तनुं त्यजंति वा काश्यां श्वपचस्य गृहेयवा । ज्ञानसंप्राप्तसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः ॥ न कर्मणामनुष्ठानैर्लभ्यते तपसापि वा । कैवल्यं लन्नते मर्त्यः किं तु ज्ञानेन केवलं " शिवगीता जो काशीमें चांमालकें घरमें जीसका शरीर छुटे सो ज्ञानप्राप्तिके समयमें मुक्त हो जाता है. कर्मका अनुष्ठानसें और तपसें मनुष्य कैवल्यकुं प्राप्त होता नहीं किंतु ज्ञानसें केवलकुं प्राप्त होता है.

ज्ञानपंथ वालोंने वर्णाश्रम और कर्मकांमका बहुत नुपहास करा. कितनेक वर्षो तक यह ज्ञानमार्ग चला. जब जैनबौधमतका जोर बढा, तब सर्व प्रायें लुप्त हो गये. फेर शंकरस्वामीनें अद्वैतपंथकों फिर बढाया. पीछे न्नक्तिमार्ग वालोंका पंथ निकाला. पीछे नुपासना मार्ग नुत्पन्न हूआ. अगरह पुराण और नुपपुराण ये नुपासना मार्गके प्रतिपादक है. तिनके अंदर शैव वैष्णव ये दो संप्रदाय है, सो बहुत वधी हूइ है. तिनमें शैव मार्ग पुरातन है. और

वैष्णव मार्ग तिसके पीछे निकला है. और वैष्णवमतमें मुख्य चार संप्रदाय है. रामानुज १ निंबार्क २ मध्व ३ विष्णुस्वामी ४. इन चारों जणानें शंकरस्वामीका अद्वैतमत स्थापन करा हूआ खंडन करके द्वैत मत चलाया. इनोने बहुत आधार पुराणोंका लीना, लीना, और श्रुतिके आधार वास्तै इनोंने कितनीक नवी उपनिषद् बनाइ है.

अनेक संप्रदा- यकी उत्पत्ति. जैसें रामतापनी, गोपालतापनी, नृसिंहतापनी इत्यादि बना लीनी. परंतु असली वेदके मंत्रभागमें उपासना विषयक कुछभी मालुम नहीं होता. तिसमें जो उपासना है सो अग्निद्वारा और पांच भूतादिककी है. परंतु पुराणोंके अवतारोंकी नहीं. पुराणोंके अवतारोंकी उपासना तो पुराण हुआ पीछे चली है.

उपास्यदेवोंकी जुदी जुदी मान्यता. आगे उपासनाके इतने फाले फूटे है जिनकी गिनती नही. कोइ शिवमार्गी, कोइ विष्णु, कोइ गणपती, कोइ राधाकृष्ण, कोइ बालकृष्ण, कोइ हनुमान इत्यादि अपणे अपणे उपास्य देवतायोंकों परब्रह्म कहते है, और इन देवतायोंकों ऊंचा नीचा गिनता है. तद्यथा॥" गणेशं पूजयेद्यस्तुविघ्नस्तस्यनबाध्यते। आरोग्यार्थं च ये सूर्यं धर्ममोक्षाय माधवं ॥ शिवं धर्मार्थमोक्षाय चतुर्वर्गाय चंडिकां ॥ भावार्थ—जे गणेशकी पूजा करे उनकुं विघ्न बाधा करते नहीं आरोग्यके वास्ते सूर्यकी, धर्म तथा मोक्षके वास्ते विष्णुकी धर्म. अर्थ. और मोक्षके वास्ते शिव और चतुर्वर्गके वास्ते चंडीकी पूजा करना. पीछे अनेक संप्रदाय वालोंने अपने अपने संप्रदायके चिन्ह ठहराये. शिवमार्गीयोंने भस्म. रुद्राक्ष. बाणलिंग. इत्यादिक रचे और वैष्णवोंने तप्त मुद्रा. तुलसी. गोपीचंदन. शालिग्राम इत्यादिक चिन्ह बनाये. वे चंदन विष्णुपाद-

कृति करते हे, कोइ श्रीका चिन्ह धारण करता हे. इन दोनो पंथोका परस्पर द्वेष बहुत बढा तब एकने दूसरेके विरुद्ध बहुत शास्त्र लिखे वैष्णवोंने शैवोंकी और शैवोंने वैष्णवोंकी निंदा लिखी. पुराण और ऋषियोंकेन्नी दूषण लिखे. कितनेक पुराण तामसी और कितनेक सात्विक ठहराये वे ऐसे हे. "सत्यं पाराशरं वाक्यं सत्यं वाल्मिकमेव च। व्यासवाक्यं कचित् सत्यं असत्यं जैमनीवचः ॥ सात्विका मोक्षदा प्रोक्ता राजसा स्वर्गदा शुन्ना। तथैव तामसा देवी निरयप्राप्तिहेतवे ॥ वैष्णवं नारदीयं च तथा न्नागवतं शुन्नं। गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं राजसं स्मृतम् ॥ अर्थ—पाराशर वचन सत्य हे, वाल्मीकका वचन बी सत्य हे. व्यासका वचन कोइकज सच्चा हे और जैमिनिका वचन असत्य हे. हे देवी, सात्विक मोक्षदायक हे, राजसी स्वर्गकुं देती हे और तामसी नरकनी प्राप्तिका हेतु हे, वैष्णव पुराण, नारदी पुराण और न्नागवत पुराण ए सात्विक हे. गरुड पुराण, और पद्मपुराण तथा वराह पुराण राजस हे.

इत्यादि एकने दूसरेके दूषण काढे हे वे ये हे: ॥ वैष्णवमतमें ॥ ब्राह्मणः कुलजो विद्वान् न्नस्मधारी न्नवेद्यदि। वर्जयेत्तादृशं देवि मद्योच्छिष्टं घटं यथा ॥ वेदांतचिंतामणौ ॥ त्रिपुंड्रूर्ध्वंड्कल्पानां शूद्राणां च विधीयते। त्रिपुंड्रधारणाद् विप्रः पतितः स्यान्न संशयः ॥ २ ॥ यो ददाति द्विजातिन्यश्चंदनं गोपिमर्दितं। अपि सर्पपमात्रेण पुनात्यासप्तमं कुलं ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वपुंड्रविहीनस्य स्मशानसदृशं मुखं। अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥ ४ ॥ यज्ञो दानं तपश्चैव स्वाध्यायः पितृतर्पणं। व्यर्थं न्नवति तत्सर्वमूर्ध्वपुंड्रं विना कृतं ॥ ५ ॥ शालिग्रामोन्नवो देवोदेवो द्वारावतीन्नवः। उन्नयोः संगमो यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः ॥ ६ ॥ शालिग्रामोन्नवं देवं शैलं चक्रांकमन्वितं। यत्रापि नीयते तत्र वाराणस्यां शताधिकं ॥ ७ ॥ म्ले-

च्छदेशे शुचौ वापि चक्रांको यत्र तिष्टति । वाराणस्यां यवाधिक्यं समंताद्योजनत्रयं ॥ ८ ॥ यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये सर्वदेवताः। यदग्रे सर्ववेदाश्च तुलसीं तां नमाम्यहं ॥ ए ॥ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा । वासुदेवादयो देवा वसंति तुलसीदले ॥ १० ॥ तुलसीकाष्टमालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः दृष्ट्वा नश्यंति दूरेण वातधूतं यथा रजः ॥ ११ ॥ तुलसीमालिकां धृत्वा यो नुंक्ते गिरिनंदिनि । सिक्थे सिक्थे स लन्नते वाजपेयफलं शुन्नं ॥ १२ ॥ तुलसीकाष्टमालां यो धृत्वा स्नानं समाचरेत् । पुष्करे च प्रयागे च स्नातं तेन मुनीश्वर ॥ १३ ॥ आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः । इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ १४ ॥ चक्र लांछनहीनस्य विप्रस्य विफलं नवेत् । क्रियमाणं च यत्कर्म वैष्णवानां विशेपतः ॥ १५ ॥ कृष्णमंत्रविहीनस्य पापिष्टस्य डुरात्मनः। श्वानविष्टासमं चान्नं जलं च मदिरासमं ॥ १६ ॥

कुलीन और विद्वान् ब्राह्मण जो नस्मकु धारण करते है. सो ब्राह्मणकुं मद्यका उच्छिष्ट घमाकी माफक छोड देना चाहिए १. वेदांत चिंतामणिमें लिखता है कि–चंद्र कल्प और शूद्रलोककुं त्रिपुंड्र धारण करनेसें ब्राह्मण पतित हो जाता है. इसमे कुछवी संशय नही है. २. जो ब्राह्मणोकुं गोपीचंदन आपते हैं सो गोपीचंदन मात्र सर्पवका दाणा जैसे होवे तोन्नी सात कुलकुं पवित्र करते है. ३. जे ऊर्ध्वपुंड्र (उन्नातीलक) सें रहित है, तिस का मुख श्मशान जैसा हे, तिनको देखनेंसे सूर्यका दर्शन करना चाहिए ४. बुद्धि, दान. तप, स्वाध्याय और पितृतर्पण ओ सव ऊर्ध्वपुंड्र विना करनेसें व्यर्थ होता है. ५ शालिग्राममें उत्पन्न होने वाले देव और द्वारिकाका देव ओ दोनुंका जिसमें संगम होवे, तिसमें मुक्ति [illegible]. ६ शालिग्राम

देख और चक्रांकमंकित शेल सो जिस स्थानमें ले जाय, सो स्थान काशीसेंभी सोगणे अधिक है. ७ म्लेछके देशमें अथवा पवित्र देशमें जिस स्थानमें चक्रांक रहते है, सो वाराणसीका अण यो जनसेंभी अधिक है. ८ जिसका मूलमें सर्व तीर्थो है जिसका मध्यमें सर्व देवता है, और जिसका अग्रभागमें सर्व वेद है एसी तुलसीकुं मैं नमस्कार करता हुं. ९ पुष्करादि तीर्थ, गंगा प्रमुख नदीयां और वासुदेव प्रमुख देवता तुलसीका पत्रमें रहेते है. १० पवनमें जैसें रज दूर होता है, तैसे तुलसीकाष्टकी माला देख कर यमराजका दूत दूरसें नाशते है. ११ हे पार्वति, जे पुरुष तुलसीकी माला धारण करके भोजन करते है, सो पुरुष एक एक ग्रासें वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त करते है. १२ हे मुनीश्वर, जो पुरुष तुलसीकाष्टकीमाला धारण करके स्नान करते है, सो पुरुष पुष्कर और प्रयाग तीर्थमें स्नान करते है. १३ सर्व शास्त्रो देख कर और इसका पुनः पुनः विचार करनेसें एसा निश्चय होता है के सर्वदा नारायणका ध्यान करना चाहीये. १४ जो ब्राह्मण चक्रका लांछनसे रहित है, उसका क्रियमाण कर्म सब निष्फल होता है वैष्णवोमें भी विशेष जाणना " १५ जो पुरुष विष्णुका मंत्रसे रहित होता है, ओ पापी दुरात्माका अन्न श्वानकी विष्टा जैसा और उनका जलपान मदिरा जैसा समजना १६

शिवमतमें ॥ विना भस्मत्रिपुंड्रेण विना रुद्राक्षमालया । पूजितोऽपि महादेवो न तस्य फलदो भवेत् ॥ १ ॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा चोपपातकैः । भस्मस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेंधनं ॥ २ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । शिवलिंगे च संतिष्ठ तानि सर्वाणि नारद ॥ ३ ॥ महापातकनाशनाय ... सर्वार्थसाधकं । अतः सदा भाववानं पूजनीयो महेश्वरः ॥ ४ ॥

अमितान्यपि पापानि नश्यंति शिवपूजया । तावत्पापानि तिष्ठंति न यावच्छिवपूजनं ॥ ५ ॥ लिंगार्चनविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः । ततः सर्वार्थसिद्ध्यर्थं लिंगपूजा विधीयते ॥ ६ ॥ सर्ववर्णाश्रमाणां च कलौ पार्थिवमेव हि । लिंगं महीजं संपूज्य शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७ ॥ दर्शनाद् बिल्ववृक्षस्य स्पर्शनाद् वंदनादपि । अहोरात्रकृतं पापं नश्यति नात्र संशयः ॥ ८ ॥ अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किंचित्कर्म वैदिकं । कुर्वन् विप्रस्तु मोहेन नरके पतति ध्रुवं ॥ ९ ॥ देवाधिदेवः सर्वेषां त्र्यंबकस्त्रिपुरांतकः । तस्यैवानुचराः सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादयः सुराः ॥ १० ॥ विहाय सांबमीशानं यजंते देवतांतरं । ते महाघोरसंसारे पतंति परिमोहिताः ॥ ११ ॥ ते धन्याः शिवपादपूजनपरा अन्यो न धन्यो जनः सत्यं सत्यमिहोच्यते मुनिवराः सत्यं पुनः सर्वथा ॥ १२ ॥ शंखचक्रे तापयित्वा यस्य देहं प्रदह्यते । स जीवन्कुणपस्त्याज्यः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ १३ ॥ यस्तु संततमुद्राभिर्लिंगांकिततनुर्नरः । स सर्वयातनाभोगी चांडालो जन्मकोटिषु ॥ १४ ॥ भक्त्या पंचाक्षरेणैव यः शिवं सकृदर्चयेत् । सोऽपि गच्छेच्छिवस्थानं शिवमंत्रस्य गौरवात् ॥ १५ ॥ पंचाक्षरेण मंत्रेण बिल्वपत्रैः शिवार्चनं । करोति श्रद्धया युक्तो स गच्छेदैश्वरं पदं ॥ १६ ॥

शैवमतमें एसा लिखता है. भस्मका त्रिपुंड्रऔर रुद्राक्षकी माला विना शंकरकी पूजा करनेवालाकुं शंकर कुचभी फल नहीं आपते है. १ महापातक और उपपातक वाले पुरुषभी जो भस्मस्नान करे तब उसका पाप जैसे अग्नि इंधणाकुं दहन करे ऐसें दहन होता है. २ हे नारद. पृथ्वीमें जितना तीर्थ और पवित्र स्थान है. ते सर्व शिवका लिंगमें रहते है. ३ शंकरका आराधन जेसा सर्व अर्थ आपने वाला दुसरा नही है. तिसवास्ते सावधान होकर शंकरकी पूजा करनी चाहए ४ शिवपूजा करनेसें

अपरिमित पाप नष्ट हो जाता है. जबतक शिवका पूजन न होते है, तब लग पाप रेहेते है. ५ जो पुरुष शिवलिंगकी पूजासें रहित है उसकी सब क्रिया निष्फल होती है, तिसवास्ते सर्वअर्थकी सिद्धिका अर्थ लिंगपूजा करनी चाइए ६ सर्ववर्णाश्रमवाले लोक कलियुगमें पार्थिवलिंग पूजनेसें शंकरकी सायुज्यमुक्ति पामते है. ७. बीलीका वृक्ष देखनेसें स्पर्शकरनेसें और वंदन करनेसें अहोरात्रका पाप नाश पामते है. उसमें कुछजी संशय है नही. ८ जो ब्राह्मण रुद्राक्ष धारण कर्या विना जो कुछ वेदका कर्म करते है सो ब्राह्मण मोहसें नरकमें पमता है. ए तीन लोचनवाले और त्रिपुरका नाश करनेवाले शंकर सर्व देवोका देव है. ब्रह्मा विष्णु प्रमुख सर्व देवता उसकाज अनुचर है. १० सांब शंकरकुं छोड कर जो दुसरा देवताकी पूजा करते है, सो मोहसें घोर संसारमें पमते है. ११ हे मुनिवर, में सत्य कहेता हुं के शंकरका चरणकी पूजा करनेमें जो तत्पर होवे सो धन्य है, दुसरा धन्य नही है. १२ शंख औरचक्र तपा कर जिसका देह दग्ध होता है, सो जीवता शब जैसा है. सर्व धर्मसें बाह्य सो पुरुष त्याग करनेकुं योग्य है. १३ जिसका शरीर तप्त मुद्रासें अंकित है, सो सर्व पीमाका जोगी होकरकोटी जन्ममें चांडाल होता है. १४ जो पुरुष जक्तिसें पंचाक्षर मंत्र साथ एक दफे शिवकी पूजा करते है, सो पुरुष शिवमंत्रका गौरवमें शिवका धाममें जाता है. १५ जो पुरुष श्रद्धासें पंचाक्षर मंत्र सहित बीली पत्रसें शिवपूजा करते है, सो पुरुष शाश्वत स्थानमें जाते है. १६

तथा वल्लनाचार्यने इतनें शास्त्र मचे माने है—" वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि । समाधिजाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयं "॥ उत्तरोत्तरतो बलवान्—अर्थ—वेद, गीता, ब्रह्म

सूत्र और भागवत ये चार एक एकसें बलवान अधिक माननें योग्य है.

और स्वामीनारायण सहजानंदनें अपनी लिखी शिक्षापत्रीमें कितनेक शास्त्रोंको सच्चे प्रमाणिक ठहराये है तिनके नाम—"वेदाश्च व्याससूत्राणि श्रीमद्भागवताभिधं । पुराणं भारते तु श्रीविष्णोर्नामसहस्रकं ॥ ९३ ॥ धर्मशास्त्रांतर्गता च याज्ञवल्क्यऋषेः स्मृतिः । एतान्यष्ट ममेष्टानि सच्छास्त्राणि भवंति हि ॥ ९४ ॥ शिक्षापत्रिकाश्लोकः ॥ वेद, व्याससूत्र, श्रीमद्भागवत भारतमें श्रीविष्णुसहस्रनाम, पुराण धर्मशास्त्रमें याज्ञवल्क्य स्मृति ए आठ सत् शास्त्र हमारे इष्ट है. ९३—९४

इस तरें शास्त्र जूठे और सच्चे माने अनेक संप्रदाय निकाले. ऐसा घोर अंधकार भरतखंडके लोगोंके वास्ते गम्मा हूआ कि कोइभी सच्चे जूठे पंथ और शास्त्रोंका निर्णय नही कर सकता है. ऐसे घोरांधकारमें आकुल व्याकुल होकर भक्तिमार्गवालें तथा कबीरजी नानकशाहिव दादू प्रमुख अनेक जनोनें मूर्तिपूजन छोड दिया. और अपनी बुद्धिके अनुसारे अपने अपने देशकी भाषामें भाषाग्रंथ रचे, और ब्राह्मणोंके सर्व मतों छोड दिया. वर्णाश्रमकी मर्यादाभी तोड दीनी. तिनमें नानकशाहिदका पंथ बहुत फैला क्योंकि नानकशाहिजिके पीछे दशमें पाट उपर गोविंदसिंहजी हूये. तिनके वखत बगा पीछे मुसलमानोंका जबर बंद हो गया. और गुरु गोविंदसिंहके सिखोंका जोर पंजाबमें हुआ. इनमेंहीमें महाराजा रणजीतसिंह राजा हो गया. तिसके राजमें नानकशाहिके पंथवालोंको बहुत मदद दीनी. लालस, हाविप, गेरे, जाट प्रमुख लोकों आपस्वार्थने सिर उपर केश रखाके गुरुके सिख बन गये. इनी न-

विविध मतो- की उत्पत्ति.

तमें मूर्तिपूजन नही. अपने दशों गुरुयोंकी चित्रकी मूर्तियां तो रखते है परंतु मंदिरमें मूर्ति बनाके नहि पूजते है, परंतु गुरुके बनाये ग्रंथ साहिबकी बहुत विनय करते है. इनके मूल ग्रंथमें ईश्वरकी महिमा बहुत करी है और इस मतवाले साधुयोंकी बहुत भक्ति करते है, और हरेक भूखेको खानेभी देते है. इनके ग्रंथमें जीवहिंसा और मांस मदिरा खाना पीना निषेध करा है. परंतु कितनेक पापी शिष्य इस कामको करतेभी है.

नानकसाहिबके शिष्य अनुमानसे इग्यारह लाखके लग भग होंगे. ये लोक गुरुके ग्रंथ समान और किसी पुस्तकको उत्तम नही समजते है. और यह ग्रंथ साहिब साधारणसी पंजाबी भाषामें नानक गुरुके शिष्य अंगद साहिबने रचा है, और गुरु अर्जुन साहिबने कागजों उपर लिखा है. इस मतके गुरु दशोंही क्षत्रिय होये है. ब्राह्मण, मुसलमान, जैनी, सूफी, मुसलमान फकीर, जिनको मारफतवालेभी कहते है इनके कुछ कुछ मतकी बातें लेकर रचा है. इनके मतवाले ब्राह्मणोंका बहुत आदर सन्मान नही करते है, जेकर वर्षादि निमणाभी करते है तो गुरुके शिष्योंको भोजन कराते है.

कूकामतका स्वरूप.

इनके मतमेंसे एक रामसिंह नामा गुरुके शिष्यने लोदीहानेसे दश कोसके अंतर भइणी गामके रहने वालेने एक नया पंथ निकाला है. जिसमें इतनी बातें लिखी है—मूर्ति नही पूजनी १, जीवहिंसा नही करनी २, मांस नही खाना ३, मदिरा नही पीना ४, झूठ नही बोलना ५, चोरी नही करनी ६, परस्त्रीगमन नही करना ७, जूआ नही खेलना ८, दिन प्रतिदिन कुछ बेला भजन ध्यान करना ९, ब्राह्मणसें विवाह नही करना १०, विवाहमें सदा [illegible] करना ११, नवमें

इस पंथके चलाने वाले ज्ञाइरामसिंहको सरकार अंग्रेज पकमके ब्रह्माके देशमें ले गये है तबसें यह मत मुस्त पम गया है. तोज्ञी एक लाखके करीब आदमी होंगे. लोकोनें इस पंथका नाम कूका रखा है. क्योंकि इस मतके ज्ञजन बोलने वाले कूक मारते है. इन मतमें ब्राह्मणोंका कदर है नही.

हमारे सुननेमें आया है कि पंजाब देशमें एक वटाला नामका नगर है. तिसका रहनेवाला एक ज्ञ्यालनेमि नामक ब्राह्मण काशीमें वेदांत शास्त्र पढा और रामघाट ज्ञपर जाकर स्नान करती हूइ नग्नस्त्रियोंके अंगोपांग देखनेका लालची बहुत हुआ. विद्यागुरुनें मने करा तोज्ञी न माना, तब गुरुने अपनी शालासें निकाल दीया,

वेदांतिओका प्रचार.

तब ज्ञ्यालनेमिनें क्रोधित होकर सर्व उपनिषद् और वाशिष्ट प्रमुख वेदांत ग्रंथोकी ज्ञापा करके पंजाब देशमें ब्राह्मणसें लेकर जाट, चमार, ज्ञंगीयो तक वेदांत शास्त्र पढाया, ब्राह्मणोंकी बांधी सर्व मर्यादा तोड गेरी. इधर दिल्लीके पास निश्चलदास दादूपंथीने विचारसागर और वृत्तिप्रज्ञाकर ये दो वेदांतके ग्रंथ ज्ञाषामें रचके छपावके प्रसिद्ध करे. इनको वांचके कितनेक लोक वेदांती हो गये है. तिनमें कितनेकतो चालचलनके अच्छे है, परंतु दुराचारी नास्तिकोंके तुल्य बहुत हो गये है. अमृसरमें कितनेक निर्मले फकीर और पुरुष स्त्रियां वमे दुराचारी है. मांस मदिराज्ञी खाते पीते है. और नानकजीके ज्ञदासी साधुज्ञी बहुत वेदांती हो गये है. तथा चक्रुकट १ गेम २ गुलाबदासी ये नास्तिकमती निकले है. तथा गुजरात देशमें स्वामीनारायणका एक नवा पंथ निकला है.

अब जो कोइ सच्चे धर्मको अंगिकार करा चाहे तो इन

वेदमंत्रोंसें आप्यायन संस्कार, प्रोक्षण संस्कार, उपाकरण संस्कार जिस पशुको हुआ हो तिसका मांस हव्य तथा कव्य समजके जक्षण करनेका निषेध नही मानते थे.

इस तरेका वैदिक मत था इस वास्ते वेद हिंसक शास्त्र है विचारे वेगुनाह, अनाथ, अशरण, कंगाल, गरीव, कल्याणास्पद, ऐसे जिवांको मारणा और मांसजक्षण करणा और धर्म समजना यह मंदबुद्धियोंका काम है. और जिस पुस्तकमें हिंसा करणेका उपदेश होवे और मांस मदिराका वलिदान करना लिखा होवे वे शास्त्रजी जूठ है, और वे देवतेजी मिथ्यादृष्टि अनार्य है, और तिस शास्त्रका प्रथम उपदेशकजी निर्दय, निर्लज और अज्ञानी, मांसमदिराका स्वादक और अन्यायशिरोमणि है. परमेश्वरके वचनतो करुणारसजरे, सत्यशील करके संयुक्त, निर्हिंसक तत्वबोधक, सर्व जीवांके हितकारक, पूर्वापर विरोध रहित, प्रमाण युक्ति संपन्न. अनेकांत स्वरूपस्यात् पद करी लांछित, परमार्थ और लौकिक व्यवहारसे अविरुद्ध इत्यादि अनेक गुणालंकृत जगवान अर्हंत परमेश्वरके वचन है. ये पुर्वोक्त लक्षण वेदोंमें नही. लक्षण तो दूर रहे, ऐसे ऐसे वेमर्याद वचन वेदोंमें है कि जो आज कालमें निच लोक होलीमें जी ऐसे निर्लज वचन नही वोलते है. जो कोई ब्राह्मणादि दया धर्म मानते है और प्ररूपते है वे वेदांके विरोधि है. क्योंकी वेदोंमें दयाधर्मकी मुशकजी नही है. जेकर वेदोंमें अहिंसक धर्मकी महिमा होती तो सौगतको काहेको कहेते " अहिंसा कथं धर्मो जवितु मर्हति " अर्थात् अहिंसा कैसे धर्म हो सकता है, अपितु हिंसाही धर्म हो शकता है इससें यह सिद्ध होता है कि शंकरस्वामीजी गाय, वलद, वकरा, उंट, सूयर, प्रमुख जीवांको वे-

वेद हिंसक ठरते है.

होक्त रीतीसें मारके इनका मांस कलेजा आदि भक्षण करनेमें धर्म समजता था.

उपर लिखे मुजब वेद हिंसक शास्त्र है, और जो कहते है वेदोंमें हिंसा नही वो हम सत्य नही समजते है. क्या शंकरस्वामी, उव्वट, महीधर, सायन इनकों वेदांका अर्थ मालुम न हूआ जो उनोनें हिंसाधर्म वेदोक्त माना, और आजकालमें जो स्वकपोलकल्पित वेदोंके नवीन अर्थ दयानंद आदि कहने और बनाने लग रहे है वे सच्चे हो जावेंगे?

स्वामी दयानंद. यद्यपि दयानंद सरस्वतीनें वेदोंके अर्थ जैन बौध धर्मसें बहुत मिलते करे है अर्थद्वारा वेदोंका असली अर्थ भ्रष्ट कर दीया है. यहभी एक जैनमतीयोंकों मदद मिली है. परंतु दयानंदजीने यह बहुत असमंजस करा जे अपनें मतके आचार्योंकों जूठा ठहराया. हां, जिस वखत वेद बनाये गये थे, जेकर उस वखत दयानंद सरस्वतीजी पास होते तो जरूर वेद बनाने वालोंसें झगडा करके अपने मनके माने समान वेद बनवाते वा आप रचना करते. परंतु इस वखतमें वो समय नही इस वास्ते दयानंदजीनें अर्थही उलटपुलट करके अपना मनोरथ सिद्ध कर लिया. यथार्थ तो यह बात है कि वेदोंमें हिंसा अवश्यमेव है. सो उपर अछी तरेंसे लिख आये है. इस हिंसाकी जैनी निंदा करते है इस वास्ते ब्राह्मण लोक जैनीयोंको नास्तिक और वेदबाह्य कहते है, परंतु जैसे वैदिक हिंसाकी निंदा वेद माननेवालोंनें करी है तैसी जैनीयोंनें नही करी. जैनी लो वेदोंके परमेश्वरका कहेया पुस्तकही नही मानते है, क्योंकि वेद कालासुरनें लोगोंके नरक जाने वास्ते महाहिंसासंयुक्त बनाये है ऐसे जैनी लोग मानते है. जो वस्तु स्वरूपसेंही बुरी है फेर तिसकों जो

कोइ बुरी कहे तो इस वातमें क्या निंदा है. वेद माननेवालेजी वैदिक हिंसाकी निंदा करते है—तथा च श्रुतिः–

" प्लवायते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म एतच्छ्रेयो येऽजिनंदंति मूढास्ते जरामृत्युं पुनरेवापि यांति " अर्थ–यह यज्ञरूपी प्लव जो नाव है सो अदृढ कहता दृढ नही और अगरह अध्वर्यु आदि पुरोहित यजमानादिक जो जनोंने करा ऐसा जो कर्म हिंसा रूप सो नीच कर्म है, तिस हिंसामय यज्ञके करने वाले पुरुष वारंवार जन्ममरणको प्राप्त होते है. यह श्रुति वेदकी पुरी 'निंदा' करती है. यह श्रुति किसी दयावान ऋषिनें जैन मतकी प्रबलतामें बनाई है. तथा वैदिक यज्ञ करने वाले मूर्ख अज्ञानी है ऐसेजी एक श्रुतिमें कहा है–" कश्चित्स्वा अस्माल्लोकात्प्रेत्य आत्मानं वेद अयमहमस्मीति कश्चित्स्वं लोकं न प्रतिजानाति अग्निमुग्धो हैव धूमतांत " इति–अर्थ–कोईक अपणा लोक जो ब्रह्मधाम आत्मतत्व वा तिसकों जानता नही जो पुण्यरूप अवांतर फलमें परम फलका माननेंवाला अग्नि साध्य अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्ममें आसक्त होनेंसें नष्ट हो गया है विवेक जिसका, तिसको अंतमें धूममार्ग है अर्थात् पाप है. तथा ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणकी दूसरी पंचिकामें पुरुषमेध लिखा है, तिस पुरुषमेधकी यह श्रुति है.

" पुरुषं वै देवाः पशुमालभंत । "

देवताजी पुरुषकु पशुवत् आलजन करता है.

इस पुरुषमेधका निषेध जागवतके पंचम स्कंधके ठेहेके अध्यायमें निषेधद्वारा नरकमें यम जो पीडा देता है सो लिखी है–

" तथाहि येत्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजंते याश्च स्त्रियो नृपशून् खादंति तांश्च ताश्च ते पशव इह निहताः यमसदने पातयंतो रक्षोगणाः सौनिक इव स्वधितिनावदार्यासृक् पिबंति नृत्यंति गा-

यंति च हन्यमाना यथेह पुरुषादाः ॥ १ ॥ इस लोकोमें जो पुरुष पुरुषमेधका यज्ञ करते है. जो स्त्रीलोक मनुष्य पशुका मांस खाते है, सो पुरुष और स्त्रीयोंकु ओ पशु राक्षस होकर, पीडते है. और यमराजका द्वारमें कसाइकी माफत उसका लोहू पीते है. पीछे गाते है और हर्षसें नाचते है १

तथा सोमक नामा राजा था, तिसके एक पुत्र जंतुनामे था तिसको एक दिन कीडीयोंनें काटा तब तिसने चीसका रुक्का मारा तब राजाने शिर हलाया और कहा कि मेरे एक पुत्र है, सोभी पुत्रोंमें नही. तब राजाके पास जो पुरोहित खडा था तिसनें कहा कि इस पुत्रकों यज्ञमें होमो तो बहु पुत्र होंगे; तब राजानें कहा में होमुंगा, यज्ञ करा. पीछे तीस ब्राह्मणनें यज्ञ करके राजाके पुत्रका होम करा. तद पीछे तिस राजाके १०१ पुत्र हूये. पीछे काल करके ब्राह्मण यज्ञ करानेवाला नरकमें गया, पीछे राजाभी मरके नरकमें गया. तब तीस ब्राह्मण यज्ञ कराने वालेकों देखके राजानें यमराजेको कहा जो तुनमें इस मेरे गुरु ब्राह्मणको किस वास्ते नरकमें गेरा है, तब यमराजानें कहा कि तुमनें पुरुषमेध करा था तिसके पापसें तेरेकों और तेरे गुरु ब्राह्मणकों नरक भोगनी पडेगी. यह कथा भारतके वनपर्वमें विस्तार सहित देख लेनी.

नरमेध यज्ञपर भारतकीकथा.

इसने यह सिद्ध हूआ कि वेदोक्त जो हिंसा करे सो नरकमें जावे इसी वास्ते तो वेद ईश्वरके कहे सिद्ध नही होते है.

तथा प्राचीन बर्हिष राजानें यज्ञ करके पृथ्वीका तला दर्भ करके आच्छादित करा. तिस वेदोक्त कर्म करणेमें जिसका मन आसक्त था ऐसे प्राचीन बर्हिष राजाको देखके कृपालु श्रीमें नारदजी तिसको प्रतिबोध करते हुये. हे राजन् ! किन ...

प्राचीनबर्हि राजाकी कथा.

करनेंसे दुःखहानि और सुखकी प्राप्ति होती है. तब राजाने कहा, महाराज ! मुजको कुछ खबर नही. पीछे नारदजीने यज्ञमें जो राजानें पशु मारे थे वे सर्व प्रत्यक्ष दिखलाये, जे कुठार लेकर राजाके मारने वास्ते खमे है, तिनको देखके कंपायमान हूआ. उक्तं च महाभागवते चतुर्थस्कंधे—" बर्हिषस्तु महाभागो हाविर्धानिः प्रजापतिः । क्रियाकांडेषु निष्णातो योगेषु च कुरुद्वह ॥ १ ॥ यस्येदं देवयजनमनुयज्ञं वितन्वतः । प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृतं वसुधातलं ॥ २ ॥ प्राचीनबर्हिषं राजन् कर्मस्वासक्तमानसं । नारदोऽध्यात्मतत्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥ ३ ॥ श्रेयस्त्वं कतमद्राजन् कर्मणात्मन ईहसे । दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ॥ ४ ॥ राजोवाच न जानामि महाभागो परं कर्मापविद्धधीः । ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ॥ ५ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदारधनार्थधीः । न परं विंदते मूढो भ्राम्यन् संसारवर्त्मसु ॥ ६ ॥ श्री नारदउवाच, भो भो प्रजापते राजन् पशून् पश्य त्वयाध्वरे । संज्ञपितान् जीवसंघान्निर्घृणेन सहस्रशः ॥ ७ ॥ एते त्वां संप्रतीक्षंते स्मरंतो वैशसं तव । संपरेतमयः कूटैश्छिंदंत्युथ्थितमन्यवः ॥ ८ ॥ युधिष्टिरवाक्यं प्रथमस्कंधे, " यथा पंकेन पंकांभः सुरया वा सुराकृतं । भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्माष्टुमर्हति ॥ ९ ॥

अर्थ—महाभाग प्राचीनबर्हिराजा हाथवाला यज्ञोमें, कामधेनुरूप, क्रियाकांडमें प्रजापतिरूप और योगविद्यामें प्रवीण होता देव यज्ञ करनेवाला जीस राजाका प्राचीन (पूर्वदिशामें) जीसका अग्रभाग है, एसा दाभसे सब पृथ्वी आच्छादित होरहीथी एसा कर्ममें आसक्त ओ राजाकुं अध्यात्म तत्त्वकावेत्ता कृपालु नारदमुनि बोध करने लगे–" राजा, तुम अपना कैसा कल्याण कर्ममें प्राप्त कर-

नेकुं चाहते है ? दुःखकी हानि और सुखकी प्राप्ति ओ श्रेय एक-र्मसे नही मीलजाता है प्राचीन वर्हीराजा कहेते है—महाबाहु नारदजी, मेरी बुद्धि कर्मसे नष्ट हो गइ है, उसके लीएमें श्रेयकुं जानता नही है जीससें में कर्मसे मुक्त होजाउ, एसा निर्मल ज्ञान मुजकुं कहो कूट धर्मवाले घरोकी अंदर पुत्र, स्त्री, धन ओ अर्थकी बुद्धिवाला मूढ पुरुष संसारका मार्गमें भ्रमते है, परंतु ओ परमतत्वकुं नहीं प्राप्त करते है तब नारदमुनि कहेते है, हे प्रजापति राजा, देखले ओ पशुओकुं जो हजारो पशुओकुं तुम निर्दय होकर यज्ञमें मारमार्या है, ओ सब अहिं खमे है ओ पशुओ तेरी हिंसाकुं स्मरण करते तेरी राह जोते है मृत्यु पीछे ओ क्रोधसें लोहाका कुंवामेसें तुजकुं छेदेगा. ८

असलमें नारदजी जैनी थे क्योंकि जैनीयोंके शास्त्रमें नारदजी-कों जैनी लिखा है. यद्यपि नारदजीका वेष सन्यासी-का था तोभी श्रद्धा नवही नारदोंकी जैनमतकी थी. इसी वास्ते नारदजीनें मरुत राजाको हिंसक यज्ञ करनेंसें हटाया, और इसीतरें प्राचीन वर्हिष राजाकों हिंसक यज्ञ करनेसें मना किया. नारदजीने बहुत जगें हिंसक यज्ञ दूर करे है.. इससेंभी यह सिद्ध होता है कि वेद हिंसक पुस्तक है, और ईश्वरके कथन करे हूए नही, जेकर ईश्वरोक्त वेद होते तो नारदजी क्योंकर वेदोक्त कर्मका निषेध करते और वेदोक्त यज्ञ करनेवाले नरकमें क्योंकर मरके जाते? इस वास्ते वेद हिंसक जीवोंके बनाये हूए है.

नारदका उपदेश जैनी जेमां है.

भागवतका प्रथम स्कंधमें युधिष्ठिरनेंभी कहा है जैसे चीकडसें चीकम नही धोया जाता तथा जैसे मदिरेका भाजन मदिरेमें धोयां शुद्ध नही होता है तैसेंही जीवहिंसा करनेंसें शुद्ध नही होता है. इस वास्ते यज्ञमें जीवहिंसाके पापको दूर नही कर सकते है. तथा भारत मोक्षधर्म अध्याय ७२ में । " प्रज्ञानामनु-

"कंपार्थं गीतं राज्ञा विचख्नुना " ॥ १ ॥ टीका–प्रजानां पुरुषादि-पशूनां अर्थ–यज्ञमें होमता ऐसे जो पुरुषादि पशु तिन उपरदया करनेके अर्थे विचख्नु नामक राजानें कहा है.

विचख्नु राजाकी कथा.

सो विचख्नु नामक राजा तिसनें गवालंज अर्थात् "गौवध करणेके यज्ञमें काटा है जिसका शरीर ऐसा जो वृषन बलद तिसको देखके गायोंका अत्यंत विलाप देखके यज्ञपाकेमें रहे ऐसे जो निर्दय ब्राह्मण तिनकों देखकें विचख्नु राजानें ऐसा कहा—

जारते मोक्षधर्मे अध्याय ए२ में, " स्वस्ति गोज्यस्तु लोकेषु ततो निर्वचनं कृतं । हिंसायां हि प्रवृत्तायामाशिरेषा तु कल्पिता॥ अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः । संशयात्मजिख्यक्तैर्हिंसा समनुवर्णिता ॥ ४ ॥ आत्मा देहोऽन्यो वान्योऽपि कर्ताऽकर्ता वा अकर्तापि एकोऽनेको वा एकोपि संगवानसंगो वा. " अर्थ–विचख्नु राजानें जो निवर्चन करा सो यह है. गायोंको स्वस्ति कल्याण निरुपद्रव होवे, कोइ किसी प्रकारसेंजी इनकी हिंसा नकरे क्योंकि हिंसाकी प्रवृत्ति अर्थात् यज्ञोमें जीवोंका वध करणा मर्यादा रहितोंनें और मूर्खोंनें और नास्तिकोनें और आत्मा देहही है अथवा देहसें अन्य है, अन्यजी है तो कर्ता वा अकर्ता है, अकर्ताजी एक है वा अनेक है, एकजी है तो क्या संगवान है वा असंग है ऐसे ऐसे संशयवालोंनें हिंसक यज्ञका वर्णन करा है, वैदिक हिंसक यज्ञोंकों श्रेष्ट ठहराते है.

इस कथनसेंजी यह सिद्ध होता है कि वेद " वेमर्यादे मूर्ख और नास्तिकोंके और अज्ञानियोंके " बनाये हूए है.

तथा नारदपंचरात्रे च—

न तच्छास्त्रं तु यच्छास्त्रं वक्ति हिंसामनर्थदां ।

यतो भवति संसारः सर्वानर्थपरंपरः ॥ "

अर्थ—वो शास्त्रही नही है जो हिंसाका उपदेश करे, कसी है हिंसा, अनर्थकी देनेवाली है तिस हिंसासें संसार सर्व अनर्थ परंपररूप होता है. इत्यादि बहुत शास्त्रोमें हिंसक यज्ञोंकी ' निंदा ' करी है. यह ' निंदा ' करनेवाले अध्यात्मवादी और प्राये वैष्णवमतवाले है. परंतु कर्मकांडियोंने वैदिक यज्ञकी ' निंदा ' किसी जगेभी नही करी. हमनें जो इस ग्रंथमें हिंसक यज्ञोंकी 'निंदा' लिखी है सो ब्राह्मणोके शास्त्रानुसार लिखी है. परंतु जैनमतीयोंके शास्त्रोंसें नही लिखी है. जैनमतके शास्त्रोमें तो सर्वोत्कृष्ट ' निंदा ' यह लिखी है—

उत्तराध्ययनमें जयघोष और विजयघोषकी कथा है.

बनारसमें दो भाई वेदोंके पढे हूए रहते थे. बडेका नाम जयघोष था और छोटेका नाम विजयघोष था. तिनमेंसें जयघोष जैनमतका साधु हो गया था. और विजयघोष वेदोक्त यज्ञ करनें लग रहा था. तिसके प्रतिबोध करने वास्ते जयघोष मुनि विजयघोषके यज्ञपाडेमें आये. दोनो भाईयोंकी बहुत परस्पर चर्चा हूई. तब विजयघोषनें वैदिक यज्ञ छोड दीनें, और भाईके पास दीक्षा ले लेनी. यह सर्वाधिकार विस्तार पूर्वक देखनो होव तो श्री उत्तराध्ययनके पच्चीसमें अध्ययनमें देख लेना. तिसमें वेदो बाबत जयघोषमुनिनें जो विजयघोषकों कहा है सो यहां लिखा जाता है.

" पशुबंधा सब्ब वेय जठं च पाव कम्मणा नतंतायंति दुस्सीलं कम्माणि बलवंति हा. उत्तराध्ययन " २५ अ.

[illegible] " पशूनां [illegible] वेदो [illegible] ध्ययनं दे- [illegible] बहुवचनं [illegible] दुःशील [illegible] । न तु [illegible] निहि-

ध्यासितव्य इत्यादि वाक्योपलक्षिताः सर्ववेदःऋग्वेदादयः जहंति इष्टं यजनं चः समुच्चये पापकर्मणा पापहेतुभूतपशुवंधाद्यनुष्टानेन न नैव तं वेदाध्येतारं यष्टारं वा त्रायंते रक्षंति भवादिति गम्यं।किं विशिष्टं दुःशीलं ताभ्यामेव हिंसादि प्रवर्तनेन दुराचारं यतः कर्माणि बलवंति दुर्गतिनयनं प्रति समर्थानीह भवदागमाभिहिते वेदाध्ययने यजने च भवंतीति गम्यते पशुवधप्रवर्त्तकत्वेन तयोः कर्मपोषकत्वादिति भावः ततो नैतद्योगात्पात्रभूतो ब्राह्मणः किंतु पूर्वोक्तगुण एवेति भावः ॥

अर्थ—वेद जो है ऋग्वेदादि वे सर्व यागादि पशुयोंके वधके हेतु है, क्यों कि वेदोंमें ऐसी ऐसी श्रुतियां लिखी है " श्वेतं गगमालभेत वायव्यां भूतिकामः " इस वास्ते सर्व वेद पशुवधके हेतुभूत वेद है. और यज्ञ जो है वे सर्व पापके हेतुभूत है. इस वास्ते वेद, पढनेवाले और यज्ञ करने वालोंकि रक्षा संसारमें नही कर सकते है. क्यों कि कर्म बडे बलवान है, वेद पढनेंसें और यज्ञ करनेंसें पापकर्म उत्पन्न होता है वो पाप दुर्गतिका हेतु है. इस वास्ते पूर्वोक्त गुणवानही ब्राह्मण हो सकते है.

जैन मतमें वेदका विचार.

'जैन मतके आगम शास्त्रोमें वेदों बाबत इतनाही लिखा है यह लिखना उनके शास्त्र मुजब ठीक है. क्योंकि जैनीयोके शास्त्रमें अहिंसा परमधर्म लिखा है और हिंसा करनी बहुत बुरी बात लिखी है. इसी तेरें वेद माननें वालेनेंभी हिंसक यज्ञोंकी ' निंदा ' बहुत शास्त्र भारत भागवत नारद पंचरात्रि प्रमुखमें लिखी है. जब हिंसाकी ' निंदा ' लखी तब चोरकी ' निंदा ' सायही हो गई. जेकर कोई कहे वेदोंमें हिंसा करनी नही लिखी क्योंकि भारतके मोक्षधर्म नामक ए२

परंतु मनु और याज्ञवल्क्यादि स्मृतिकारोंनें वेदोक्त रीतीसें पशुवध करके तिसके मांसभक्षण करणेमें दोष नही लिखा है, किंतु पूर्वोक्त रीतीसें मांसभक्षण करे तो धर्म लिखा है, और मनुस्मृतिका निषेध तुम किसी तरेंभि नही कर सकते हो क्योंकि तुमारे वेदोंमें मनुकी बहुत तारीफ लिखी है. " मनुर्वै यत्किंचिदवदत्तद्भेषजं " । छांदोग्यब्राह्मणे. जे कोइ मनुस्मृतिकों जूठी मानेगा तिसकों वेदभी जूठ माननें पडेंगे. जे कर कोइ कहे मनुस्मृति आदि शास्त्रोंमें जो हिंसक श्लोक है वे सर्व पीछेसें मांसाहारियोंनें प्रक्षेप कर दीये है, परंतु मनुजीनें हिंसक श्लोक नही रचे है क्योंकि भारतके मोक्षधर्म अध्याय ९२ में लिखा है—

सर्वकर्मस्वहिंसां हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत् ।
कामकाराद्धि हिंसंति बहिर्वेद्यां पशून्नराः ॥

अर्थ—धर्मात्मा मनु सर्व कर्म ज्योतिष्टोमादि यज्ञने विषेभी अहिंसाहीका व्याख्यान करता भया, नर जो सो काम कारणसेंही बहिर्वेदीने विषे पशूने मारता है परंतु शास्त्रसें नही. विशेष देखना होवेतो इस श्लोककी टीका देख लेनी. टीकामें श्रुति लिखी है सोभी हिंसक यज्ञका निषेध करती है. इस वास्ते मनुस्मृत्यादिकमें जो हिंसक श्लोक है वे पीछेसें हिंसक और मांसाहारियोंने प्रक्षेप करे है.

उत्तरपक्ष—यह कहना ठीक नही, क्योंकि जब वेदोंहि बीचमें हिंसक यज्ञ करनेवालोंकी अनेक तरेंकी कथा प्रशंसाकर लिखी है तो फिर मनुमें हिंसक यज्ञोंके विधिविधानके श्लोक प्रक्षेपरूप कैसें संभव हो सकते है. ऐसें मान लेवें कि जैनधर्मकी प्रबलतासें जो मनुस्मृत्यादिक शास्त्र बनाये गये है तिनमें दयासंबंधी कुछ कुछ कथन है. ऐसा तो संभवभी हो सकता है. तथा

जब भारतका कर्ता व्यासजी भारतमें लिखता है कि धर्मात्मा मनु सर्व जगें अहिंसाको श्रेष्ट कहता है तो फेर जीवहिंसा करनेवाले राजायोंकी प्रशंसा और ब्राह्मणोंके वास्ते शिकार मारके जीवांका लाना यह कथन और युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञमें इतने पशु मारे गये कि जिनकी गिणती नही और ब्राह्मणोंनें मांस खाया और घोमेका कलेजा काटके राज्ञानें राणीके हाथमें दीना तब राजाका सर्व पाप दूर हो गया; यह सर्व कथन जो भारतमें लिखा है, क्या इससें व्यासजी दयाधर्मका कथन करनेवाला सिद्ध हो जावेगा? जेकर कहोगे के भारतका अर्थ यथार्थ करना किसीका आता नही तो तुमारे मतमें आजतक कोइभी सच्चे अर्थका जाननेवाला पीछे नही हूआ? क्या यह सत्ययुगादि अच्छे युगांका माहात्म्य था और आज कालमें सच्चे अर्थ मालुम हो गये यह कलियुगका माहात्म्य होगा इसमें क्या उत्तर देना चाहिये.

तथा जो कोइ कहते है वेदामें हिंसा करनेका उपदेश नही तो शंकरविजयमें जो आनंदगिरिनें सौगतकी चर्चामें लिखा है कि जीवहिंसा अर्थात् वेदोक्त यज्ञ करणेंमें जो पशुयोंका वध करा जाता है सो धर्म है, तिससें कल्याण सुखकी प्राप्ति होती है, इस हिंसाके करणेंमें वेदोंकी हजारों श्रुतियांका प्रमाण है. तिस शंकर विजयका पाठ है—" हिंसा कर्तव्येत्यत्रवेदाः सहस्रं प्रमाणं वर्तते "अब विचार करना चाहिये जब शंकरस्वामी कहता है कि हिंसा अर्थात् वैदिक यज्ञमें जो हिंसा करी जाती है सो हिंसा करणे योग्य है. इस कथनकी हजारों श्रुतियां प्रमाण देती है तो फेर वेद निर्हिंसक क्योंकर मानें जावें? यातो हिंसाकी निंदा के जो श्लोक उपनिषद स्मृति पुराणोंमें लिखे है वे जूठे है या सूत्रकार भाष्यकार टीकाकार व्यास शंकरस्वामी प्रमुख वैदिक हिंसाकों अछी माननेवाले जूठे है.—

तथा हमारे समयमें जो दयानंद सरस्वतीजीने नयी तरेका मत निकाला है सो एसा सुनने और पढनेमें आया है कि दयानंद सरस्वती वेदांकी संहिता और ऐक इशावास्य जपनीपद वर्जके और किसी पुस्तकको परमेश्वरका रचा नही मानता है. इनोंनें वेदोंकें ब्राह्मण और आरण्यक न्नागन्नी मानने गोम दीये. कारण इनके माननेंसें जनके मतमें कुछ खलल पहुंचता होगा परंतु दयानंद सरस्वतीजीनें जो अपने बनाये सत्यार्थप्रकाश न्नाषा ग्रंथमें और अपने बनाये वेदन्नाष्यन्नूमिकामें और अपने बनाये ऋग्वेद यजुर्वेद न्नाष्यमें जो शतपथ ब्राह्मण और एतरेय ब्राह्मण और तैत्तरेय आरण्यक और निघंटु निरुक्त बृहदारण्यक तैत्तरेय जपनिषद प्रमुखोंका जो प्रमाण लिखा सो क्या समझके लिखा है ? क्या वेद संहितामें वो कथन नही था, इस वास्ते पूर्वोक्त ग्रंथोका प्रमाण लिखा ? अथवा जो लोक पूर्वोक्त ग्रंथोकों मानते थे जनकों अपनी वेदन्नाष्यकी सच्चाइ दृढाने वास्ते प्रमाण लिखा ? वा अजाण लोगोकों न्नूल न्नूलयेमें गेरनेकों पूर्वोक्त ग्रंथोके प्रमाण लिखे ? वा वे ग्रंथ जूठ सचसें मिश्रित है जनमेंसें जो सच्चा अंश था सो प्रमाणिक जाणके तिसमेंसें प्रमाण लिखे? अथवा जो दयानंद सरस्वती लिख देवें सो सर्व सच्च और ईश्वरके कहे समान है इस वास्ते लिखा है ? जे कर प्रथम पक्ष मानोंगे तवतो वेद पूरे पुस्तक नही क्योंकि जिनमें सर्व वस्तुयोंका कथन नही वो पुस्तक ईश्वर पूर्ण ज्ञानीका रचा हूआ नही. जे करे सर्व वस्तुयोंका कथन होता तो अल्पज्ञोंके बनाये पुस्तकोंका काहेको शरणा लेना पमता. जैसें दयानंद सरस्वतीनें अपने बनाये वेदन्नाष्य न्नूमिकामें मुक्तिके स्वरूप विषे लिखा है, यद्यपि हमकों पूर्वले वैदिक हिंडुयोंके मतानुसार दयानंद सरस्वतीके करे वेदोंके अर्थ

दयानंद सरस्वतीका वेद संबंधे विचार

सच्चे नही मालुम होते हे तोन्नी इस ग्रंथके पढणेवालोंकी न्याय बुद्धिकी वृद्धि वास्ते दयानंदके बनाये अर्थानुसार लिखते है, दयानंद सरस्वतीजीनें अपनी वेदन्नाष्यन्नूमिकाके पृष्ट १०१ सें मुक्तिका स्वरूप लिखा हे. तिसमें पतंजलीके करे योगशास्त्रका इग्यारे वा बारें सूत्रांके प्रमाण लिखे हे. तथा गौतमरचित न्यायशास्त्रके तीन सूत्रांके प्रमाण लिखे हे. और पीछे व्यासकृत वेदांत सूत्रादि ग्रंथोका प्रमाण लिखा हे. पीछे शतपथ ब्राह्मणका प्रमाण लिखा हे. पीछे ऋग्वेदके एक मंत्रका प्रमाण लिखा हे. पीछे यजुर्वेदके एक मंत्रका प्रमाण लिखा हे.

अब बुद्धिमानोकों विचार करना चाहिये के पतंजलीने ज, मुक्तिस्वरूप लिखा हे तिस स्वरूपकी गंधन्नी ऋग्वेद और यजुर्वेदके मंत्रोमें मुक्तिस्वरूपमें नही हे. और जो गौतमजीनें न्याय सूत्रोंमें मुक्ति स्वरूप निरुपण कीया हे तिसकीन्नी पूर्वोक्त वेदमंत्रोंमें गंध नही, क्योंकि गौतमजीकी मुक्तिमें ज्ञान बिलकुल नही माना हे, पाषाणतुल्य स्वपरज्ञानरहित और सुखदुःख रहित मुक्ति मानी हे और आत्माको सर्वव्यापी मानते हे और न्नेदवादी हे, क्योंकि आत्मा गिणतीमें अनंत मानते हे. और दयानंद सरस्वती अपनी वेदोक्त मुक्तिमें लिखते हे कि उस मोक्ष प्राप्त मनुष्यकों पूर्न मुक्त लोग अपने समीप आनंदमें रख लेते हे और फिर वे परस्पर अपने ज्ञानमें एक दूसरेको प्रीतिपूर्वक देखते हे और मिलते हे ॥ पृष्ट १०८ और ४ तक. और इसी पृष्टमें पंक्ति ७ में. विद्वान लोग मोक्षकों प्राप्त होके सदा आनंदमें रहते हे. अब गौतमजीकी मुक्तिमें तो मुक्तात्मा न कहीं जाता हे न कहींसें आता हे. क्यों के वो सर्व व्यापी हे. सुख आनंदसें रहित होता हे. अब दयानंदके वेद कहते हे. ..व जीव मोक्ष प्राप्त होते हे

तव तिनकों जो आगे मुक्त जीव है वे अपने समीप रख लेते है. क्या ज्ञसका हाथ पकडके अपने पास विठला लेते है. क्या मुक्ति हूयाके हाथ पग शरीरादिन्नी होते है? अथवा जो नवीन मुक्तरुप हूआ है वो आगले मुक्तरूपवालोंमें घुस नही सक्ता है. क्या वो ज्ञनसें मरता है कि मुझकों अगले मुक्त जीव अपनी पंक्तिमें घुसन देंगे के नही तथा आगे जो मुक्तरूप हो गये वे क्या ठानेदार वन गये है जो ज्ञसकों अपने पास रखते है? अथवा जो नवीन मुक्त हूआ है वो जगा स्थान नही जाणता है मेरेको कहां रहना है, इस वास्ते पूर्व मुक्त लोग ज्ञसको अपने पास रखते है तथा ज्ञन पूर्व मुक्त लोगोंकों ईश्वरकी तर्फसें हुदा मिला हुआ है और परवाना मिला हुआ है जो कमुक अमुक नवीन मुक्तकों तुमने अपने अपने समीप रखना? जेकर कहोगे पूर्व मुक्त लोग प्रीतसें नवीन मुक्तकों अपने पास रखते है तो क्या मुक्त लोगोंकोंन्नी रागद्वेष है? जब प्रीति होवेगी तव रागद्वेष अवश्य होवेंगे. तवतो नवीन मुक्तकों सर्व पूर्वमुक्त अपने अपने पासरखनां चाहेंगे, तव तो खेंचातानसें नवीन मुक्तकी कमवक्त आ जावेगी वे किसके पास रहेगा! कहां तक लिखे बुद्धि जुवाव नही देती है. यह दयानंद सरस्वतीजीकी वेदोक्त मुक्तिका हाल है. और गौतमोक्त मुक्तिमें पूर्वोक्त दूषण नही क्योंकि गौतमजी तो आत्माकों सर्वव्यापी मानते है, इस वास्ते आणा और जाणा कि तेन्नी नही. न ईश्वरके वीचमें घुस वेठना है क्योंकि सर्वव्यापी है, और न पूर्वमुक्त नवीन मुक्तकों अपने पास रख सक्ते है क्योंकि समीप दुर कुछन्नी नही, सर्वही सर्व व्यापी है. आपसमें प्रीतिन्नी नही क्योंकि रागद्वेष करके रहित है, और ज्ञानमें परस्पर देखन्नी नही सक्ते है क्योंकि मुक्तावस्थामें ज्ञान माना नही और सदा आनंद सुख और सुख न्नोगनेकी इछा ये तीनों मुक्तावस्थामें

माने नही. इस वास्ते गौतमोक्त दयानंदकी वेदोक्त मुक्तिसें विलक्षण है. इससें दयानंद सरस्वतीजीकी वेदोक्त मुक्तिकों कुछभी सहारा नही पहुंचता है. हम नही जानते के दयानंदजीने गौतम मतकी मुक्तिका सूत्र किस वास्ते लिखे है! फिर दयानंदजीनें वेदांत मतकी मुक्तिके सूत्र और उपनिषदकी मुक्ति लिखी है. तिनका एसा अर्थ लिखा है—पृष्ट १७५ और १७६ में १७७ में दयानंद लिखता है—

अब व्यासोक्त वेदांत दर्शन और उपनिषदोंमें जो मुक्तिका स्वरूप और लक्षण लिखे है सो आगे लिखते है (अभावं) व्यासजीके पिता जो बादरी आचार्य थे उनका मुक्ति विषयमें ऐसा मत है कि जब जीव मुक्त दशाको प्राप्त होता है तब वह शुद्ध मनसें परमेश्वरके साथ परमानंद मोक्षमें रहता है और इन दोनोंमें भिन्न इंद्रियादि पदार्थोंका अभाव हो जाता है ॥ १ ॥ तथा भावं (जैमिनी०) इसी विषयमें व्यासजीके मुख्य शिष्य जो जैमिनी थे उनका ऐसा मत है कि जैसें मोक्षमें मन रहता है वैसेंही शुद्ध संकल्प मय शरीर तथा प्राणादि और इंद्रियोंकी शुद्ध शक्तिभी बराबर बनी रहती है क्योंकि उपनिषदमें (स एकधा भवति द्विधा भवति त्रिधा भवति) इत्यादि वचनोंका प्रमाण है कि मुक्त जीव संकल्पमात्रसेंही दिव्य शरीर रच लेते है और इच्छामात्रसेंही शीघ्र छोडभी देते है और शुद्ध ज्ञानका सदा बना रहता है ॥ २ ॥ (द्वादशाह०) इस मुक्ति विषयमें बादरायण जो व्यासजी थे उनका ऐसा मत है कि मुक्तिमें भाव और अभाव दोनोंही बने रहते है, अर्थात् क्लेश अज्ञान और अशुद्धि आदि दोषोंका सर्वथा अभाव हो जाता है और परमानंद ज्ञान शुद्धता आदि सब सत्य

मुक्तिमें भाव और अभाव दोनोंहि है.

गुणोंका भाव बना रहता है. इसमें दृष्टांतभी दिया है कि जैसें वानप्रस्थ आश्रममें बारह दिनका प्राजापत्यादि व्रत करना होता है उसमें थोडा भोजन करनेसें क्षुधाका थोडा अभाव और पूर्ण भोजन करनेसें क्षुधाका कुछ भावभी बना रहता है, इसी प्रकारसें मोक्षमेंभी पूर्वोक्त रीतीसें भाव और अभाव समज लेना. इत्यादि निरूपण मुक्तिका वेदांत शास्त्रमें किया है ॥ ३ ॥ इस अर्थके ये सूत्र लिखे है—

अथ वेदांतशास्त्रस्य प्रमाणानि ॥ अभावं बादरिराहह्येवम् ॥ १ ॥ भावं जैमनिर्विकल्पामननात् ॥ २ ॥ द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोतः ॥ ३ ॥ अ० ५ ॥पा० ४ सू० १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

इनका अर्थ उपर लिखा है, और दयानंदजीनें उपनिषदकारोंके मतमें बारांतेरंकी श्रुतियोंसें मुक्ति लिखी है तिनका संस्कृत पाठ यह लिखा है ॥ "यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च नविचेष्टत तामाहुः परमां गतिम् ॥१॥ तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्। अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥ २ ॥ यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥३॥ यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रंथयः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम्" ॥४॥ कठो० अ० २ वल्ली ६ मं० १०—११—१४—१५ ॥ दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते ॥ ५ ॥ य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषा ँ सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वा ँ श्च लोकानाप्नोति सर्वा ँ श्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य जानातीति ह प्रजापतिरुवाच ॥ ६ ॥ यदन्त-

रापस्तद् ब्रह्म तदमृतंस आत्मा प्रजापतेः सभावेश्म प्रपद्ये यशोहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां यशो विशां यशोऽहमनु प्रापत्सि सहाहं यशसां यशः ॥ ७ ॥ छान्दोग्योपनी० प्रपा० ७ ॥ अणुः पन्था विततः पुराणो मांस्पृष्टो वित्ता मयैव ॥ तेनवीरा अपि यन्ति ब्रह्मविद उत्क्रम्य स्वर्गलोकमितो विमुक्ताः ॥ ८ ॥ तस्मिञ्छुक्लमुतनीलमाहुः पिंगलं हरितं लोहितं च ॥ एप पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनेति ब्रह्मवित्तेजसः पुण्यकृच्च ॥ ९ ॥ प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रमन्नस्यान्नं मनसो ये मनो विदुः ॥ ते निचक्युर्ब्रह्म पुराणमग्र्यमनसैवाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन ॥ १० ॥ मृत्योः स मृत्युमाप्नोति यह इह नानेव पश्यति । मनसैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम् ॥ ११ ॥ विरजः पर आकाशात् अज आत्मा महाध्रुवः तमेव धीरा विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ॥ १२ ॥ श० का० १४ अ० ७ ॥

इनका अर्थ दयानंदजीने ऐसा लिखा है—अब मुक्ति विषयमें उपनिषद्कारोंका जो मत है सोभी आगे लिखते है, (यदापंचा-व०) अर्थात् जब मनके सहित पांच ज्ञानेंद्रिय परमेश्वरमें स्थिर होके उसीमें सदा रमण करती है और जब बुद्धिभी ज्ञानसें विरुद्ध चेष्टा नही करती उसीको परमगति अर्थात् मोक्ष कहते है ॥ १ ॥ (तां योग०) उसी गति अर्थात् इंद्रियोंकी शुद्धि और स्थिरताको विद्वान् लोग योगकी धारणा मानते है. जब मनुष्य उपासना योगसें परमेश्वरको प्राप्त होके प्रमाद रहित होता है तभी जानोकी वह मोक्षको प्राप्त हुआ. वह उपासना योग कैसा है कि प्रभव अर्थात् शुद्धि और सत्यगुणोंका प्रकाश करनेवाला (अप्ययः) अर्थात् सब अशुद्धि दोषों और असत्य गुणोंका नाश करनेवाला है. इस लिये केवल उपासना योगही मुक्तिका साधन है ॥ २ ॥

(यदासर्वे०) जव इस मनुष्यका हृदय सब बुरे कामोंसें अलग होके शुद्द हो जाता है तन्नी वह अमृत अर्थात् मोक्षकों प्राप्त होके आनंद युक्त होता है.

प्रश्न–क्या वह मोक्षपद कहीं स्थानांतर वा पदार्थ विशेष है, क्या वह किसी एकही जगतमें है, वा सब जगतमें?

उत्तर–नही ब्रह्म जो सर्वत्र व्यापक हो रहा है वही मोक्षपद कहाता है और मुक्त पुरुष उसी मोक्षको प्राप्त होते है॥ ३॥ तथा (यदासर्वे०) जब जीवकी अविद्यादि बंधनकी सर्व गांठे छिन्नन्निन्न होके टूट जाती है तन्नी वह मुक्तिकों प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

प्रश्न–जब मोक्षमें शरीर और इंद्रियां नही रहती तब वह जीवात्मा व्यवहारकों कैसे जानता और देख सक्ता है?

उत्तर–(दैवेन०) वह जीव शुद्द इंद्रिय और शुद्द मनसें इन आनन्दरूप कामोंकों देखता और न्नोक्ता नया उसमें सदा रमण करता है क्योंकि उसका मन और इन्द्रियां प्रकाश स्वरूप हो जाती है ॥ ५ ॥

प्रश्न–वह मुक्त जीव सब सृष्टिमें घुमता है अथवा कहीं एकही ठिकाने बेठा रहता है?

उत्तर–(य एते ब्रह्मलोके०) जो मुक्त पुरुष होते है वे ब्रह्मलोक अर्थात् परमेश्वरकों प्राप्त होके और सबके आत्मा परमेश्वरकी उपासना करते हूए उसीके आश्रयसें रहते है. इसी कारणसे उनका जाना आना सब लोक लोकांतरोंमें होता है. उनके लियें कहीं रुकावट नही रहती और उनके सब काम पूर्ण हो जातेहे, कोई काम अपूर्ण नही रहता इस लिये मनुष्य पूर्वोक्त रीतीसें परमेश्वरकों सबका आत्मा जानके उसकी उपासना करता है वह अपनी संपूर्ण कामनाओंकों प्राप्त होता है यह बात प्रजापति

परमेश्वर सब जीवोंके लिये वेदोंमें बताता है ॥ ६ ॥ पूर्व प्रसंगका अभिप्राय यह है कि मोक्षकी इच्छा सब जीवोंको करनी चाहिये (यदन्तरं०) जो कि आत्माकाभी अंतर्यामी है उसीको ब्रह्म कहते हैं और वही अमृत अर्थात् मोक्ष स्वरूप है और जैसे वह सबका अंतर्यामी है वैसे उसका अंतर्यामी कोईभी नहीं किंतु वह अपना अंतर्यामी आपही है. ऐसे प्रजानाथ परमेश्वरके स्वामिरूप सत्ता-स्थानकों मैं प्राप्त होऊं और इस संसारमें जो पूर्ण विद्वान ब्राह्मण हैं उनके बिचमें (यशाः) अर्थात् कीर्तिको प्राप्त होऊं तथा (राज्ञां) क्षत्रियों (विशां) अर्थात् व्यवहारमें चतुर लोगोंके बीचमें यशस्वी होऊं. हे परमेश्वर! मैं कीर्तियोंकाभी कीर्तिरूप होके आपको प्राप्त हूआ चाहता हूं. आपभी कृपा करके मुझको सदा अपने समीप रखिये ॥७॥ अब मुक्तिके मार्गका स्वरूप वर्णन करते हैं. (अणुःपन्था०) मुक्तिका जो मार्ग है सो अणु अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म है. (वितर) उस मार्गसें विमुक्त मनुष्य सब दोष और दुःखोंसें पार सुगमतासें पहुंच जाता है, जैसें दृढ नौकासें समुद्रको तर जाते हैं. तथा (पुराण) जो मुक्तिका मार्ग है वह प्राचीन है, दूसरा कोई नहीं मुझको (स्पृष्टः) वह ईश्वरकी कृपासें प्राप्त हूआ है उसी मार्गसें विमुक्त मनुष्य सब दोष और दुःखोंसें छूटे हूये (धीराः) अर्थात् विचारशील और ब्रह्मवित् वेदविद्या और परमेश्वरके जानने वाले जीव (उत्क्रम्य) अर्थात् अपने सत्य पुरुषार्थसें सब दुःखोंका उल्लंघन करके (स्वर्गलोकं) सुखस्वरूप ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ (तस्मिञ्छुक्ल०) अर्थात् उसी मोक्षपदमें (शुक्ल) श्वेत (नील) शुद्ध घनश्याम (पिंगल) पीला श्वेत (हरित) हरा और (लोहित) लाल ये सब गुणवाले लोक लोकांतर ज्ञानमें प्रकाशित होते हैं. यही मोक्षका मार्ग परमेश्वरके साथ समागमके पीछे प्राप्त होता है. अन्य प्रकारसे नहीं ॥ ९ ॥ (प्राण-

स्य प्राण०) जो परमेश्वर प्राणका प्राण, चक्षुका चक्षु, श्रोत्रका श्रोत्र, अन्नका अन्न, और मनका मन है, उसको जो विद्वान् निश्चय करके जानते है वे पुरातन और सबसें श्रेष्ट ब्रह्मको मनसें प्राप्त होनेके योग्य मोक्ष सुखको प्राप्त होके आनंदमें रहते है. (नेहनाo) जिस सुखमें किंचित्‌भी दुःख नही है ॥ १० ॥ (मृत्योः स मृत्यु०) जो अनेक ब्रह्म अर्थात् दो तीन चार दश वीस जानता है या अनेक पदार्थोके संयोगसें बना जानता है वह वारंवार मृत्यु अर्थात् जन्म मरणकों प्राप्त होता है क्योंकि वह ब्रह्म एक और चेतन मात्र स्वरूपही है, तथा प्रमाद रहित और व्यापक होके सबमें स्थिर है, उनकों मनमेंही देखना होता है, क्योंकि ब्रह्म आकाशसेंभी सूक्ष्म है ॥ ११ ॥ (विरजः पर आ०) जो परमात्मा विक्षेप रहित आकाशमें परम सूक्ष्म (अजः) अर्थात् जन्म रहित और महाध्रुव अर्थात् निश्चल है. ज्ञानी लोग उसीको जानके अपनी बुद्धिकों विशाल करें, और वह इसीसें ब्राह्मण कहाता है ॥ १२ ॥

तथा याज्ञवल्क्यकी कही मोक्ष लिखी है.

सहोवाच एतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्य स्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसंगमस्पर्शमगंधमरसमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखमनामागोत्रमजरममरमभयममृतमरजोऽशब्दमविवृतमसंवृतमपूर्वमपरमनंतमबाह्यं न तदश्नोति कंचन न तदश्नोति कश्चन ॥ १३ ॥ श० कां० १४ अ० ६ । कं० ८ ॥ अथ वैदिक प्रमाणम् ॥ य यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इंद्रस्य सख्यममृतत्वमनश तेभ्यो

भद्रमंगिरसा वा अस्तु प्रतिभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ १ ॥ ऋ० अ० ८ अ० २ व० १ म० १ ॥ स नो बंधुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा यत्र देवा अमृतमानाशानास्तृतीयधामन्नध्यैरयन्त ॥ २ ॥ य० अ० ३२ मं० १० ॥

अथ याज्ञवल्क्यकी कही मुक्ति दयानंद सरस्वती लिखता है (सहोवाच ए) याज्ञवल्क्य कहते है, हे गार्गि ! जो परब्रह्म नाश, स्थूल, सूक्ष्म, लघु, लाल, चिक्कन, छाया, अंधकार, वायु, आकाश, संग, शब्द, स्पर्श, गंध, रस, नेत्र कर्ण, मन, तेज, प्राण, मुख, नाम, गोत्र, वृद्धावस्था, मरण, भय, आकार, विकाश, संकोच, पूर्व, अपर, भीतर, बाह्य, अर्थात् बाहिर इन सब दोष और गुणोंसें रहित मोक्ष स्वरूप है. वह साकार पदार्थके समान किसीकों प्राप्त नही होता ओर न कोई उसको मूर्त्ति द्रव्यके समान प्राप्त होता है, क्योंकि वह सबमें परिपूर्ण, सबसें अलग अद्भुत स्वरूप परमेश्वर है, उसकों प्राप्त होनेवाला कोई नही हो सकता है, जैसें मूर्त्तद्रव्यकों चक्षुरादि इंद्रियोंसें साक्षात् कर सकता है, क्योंकि वह सब इंद्रियोंके विषयोंसे अलग और सब इंद्रियों आत्मा है. उसी मार्गसें ब्रह्मका जाननेवाला तथा (तैजसः) शुद्धस्वरूप और पुण्यका करनेंवाला मनुष्य मोक्ष सुखको प्राप्त होता है. तथा सब दयानन्दजी अपनें ऋग्वेद और यजुर्वेदकी कही मुक्ति लिखतें है. (यज्ञेन) अर्थात् पूर्वोक्त ज्ञानरूप यज्ञ और आत्मादि द्रव्योंकी परमेश्वरकों दक्षिणा देनेसें वे मुक्तलोग मोक्षसुखमें प्रसन्न रहते है. (इन्द्रस्य) जो परमेश्वरको सख्य अर्थात् मित्रतासें मोक्षभावकों प्राप्त हो गये है उन्हीके लिये सहनाम सब सुख नियत किये गये है. (अंगिरसः) अर्थात्

उनके जो प्राण हे वे (सुमेधसः) उनकी बुद्धिकों अत्यंत बढाने-वाले होते है और उस मोक्ष प्राप्त मनुष्यकों पूर्व मुक्तलोग अपने समीप आनंदसें रख लेते हे और फिर वे परस्पर अपने समीप आनंदसें रख लेतें हे और फिर परस्पर वे अपनें ज्ञानसें एक दूसरेकों प्रीतिपूर्वक देखतें और मिलतें हे, (सनोबंधु०) सब मनुष्योंकों यह जानना चाहिये की वही परमेश्वर हमारा बंधु अर्थात् दुःखका नाश करनेंवाला है तथा वही सब कर्मोका पूर्ण कर्त्ता और सब लोकोंके जाननेवाला है कि जिसमें देव अर्थात् विद्वान् लोग मोक्षको प्राप्त होके सदा आनंदमें रहते है और वे तीसरें धाम अर्थात् शुद्धसत्वसें सहित होके सर्वोत्तम सुखमें सदा स्वच्छंदतासें रमण करते हे ॥ २ ॥ इस प्रकार संक्षेपमें मुक्तिका विषय कुछ तो वर्णन कर दिया और कुछ आगेभी कहीं कहीं करेगे सो जान लेना, जैसें (वेदाहमेत) इस मंत्रमेंभी मुक्तिका विषय कहा गया है ॥ इति मुक्तिविषयः संक्षेपतः ॥ यह दयानंद सरस्वतीकी मानी हुइ मुक्ति है.

अब हम इस पूर्वोक्त मुक्तिकों विचारतें हे, प्रथम वेदांतकी मुक्तिमें झगडा पड रहा हे. व्यासजीके पिता बादरीजीतो मुक्तिका स्वरूप कितनी वस्तुयोंके अभाव होनेसें मानतें हे, और जैमिनी व्यासका मुख्य शिष्य बादरीजीसें विपरीत मुक्ति स्वरूप मानतें है, और व्यासजी इन दोनोंहीसें भिन्न तीसरी तरेंमी मुक्ति मानतें हे. इससें यह सिद्ध होता है कि वेदोंमें मुक्ति स्वरूप अच्छी तरेंसें नही कथन करा है जे कर करा होता तो इन पूर्वोक्त तीनों आचार्योका अलग अलग मुक्ति विषयमें मत न होता, जे कर कहोगे वेदोंहीमें मुक्ति तिन तरेंकी कही है. तब तो वेद एक ईश्वरके बनाये हूये नही हे, किंतु तीन जणोंके बनाए हूये हे. जैसी जैसी जिसकी

प्राचीन मुक्तिका विचार,

समझ थी उतने वैसा वैसा लिख दिया तब तो मुक्तिके स्वरूपमें संशय होनेसें पूर्वोक्त मुक्ति तीनों तरेकी प्रेक्षावानोंकों उपादेय नही, तो फेर दयानंदजीनें इनमेंसें कौनसी मुक्तिकों स्वीकार करा यह नही मालुम होता. और तीनो तरोकी मुक्ति मानें तो परस्पर विरोध आवे है, और वेदांतियोंके न्नाप्यादि शास्त्रोंसें दयानंदके करे हूये अर्थ विरुद्ध है, न तो ऐसे अर्थ वेदांती मानतें है, और न ऐसे शांकर न्नाप्यादिकमें लिखें है. हम नही जानते के दयानंदकी कल्पना क्योंकर सत्य हो सकती है जेकर कसीके डाकी रूपको रासन्न चरें तो देखनेंवालेकी क्या हानि है, हानितो कुछ नही परंतु अनुचित काम देखनेंसें मनको अच्छा नही लगता है, जिनके शास्त्रांका उलटा अर्थ करा है वेही दयानंदजीसें पूछना होवेगा तो पूछ लेवेंगे हमतो जैसें अर्थ दयानंदसरस्वतीजीनें लिखे है उनहीका विचार करते है, दयानंदसरस्वती लिखता है कि मुक्त लोगोंका जाना आना सब लोक लोकांतरमें होता है. मुक्त लोक जो सब जगे आते जाते है और घूमते है इसमें क्या हेतु है, क्या उनके एक जगे रहनें से हाथ पग शरीरादि अकम जाते है उनके खोलने वास्ते लोक लोकांतरमें घूमते है इसमें १ अथवा उनका एक जगें चित्त नही लगता है? २ अथवा एक जगें रहना अपने आपकों कैदी समजतें है इस वास्ते लोक लोकांतरमें दौमते फिरतें है? ३ अथवा मुक्त होकेन्नी उनके मनमें लोक लोकांतरके तमाशे देखने वास्ते सब जगें दौमना पमता है इस वास्ते उमे उमे फिरते है? ४ अथवा मुक्त हूआं पीछे उनकों पूर्ण ज्ञान नही होता है और वस्तुयांके देखनेकी इच्छा बहुत होती है सो वस्तुके समीप गया बिना देख नही सकता है इस वास्ते हरेक जगें न्नटकते फिरते है? ५ अथवा एक जगें रहनेसें वहांकी आब हवा बिगम जाती है इस वास्ते अछी

आव हवाकी जगेमें जाते है? ६ अथवा विनाही प्रयोजन वावलोंकीतरें फिरते है? ७ इन सातोही पक्षोमें अनेक दूषण है. इन पक्षोमेंसें एकन्नी पक्ष माना जायेगा तो मुक्त सिद्ध तो किसी तरें न्नी नही हो सकेगा परंतु मुक्तिकी खराबी तो सिद्ध हो जावेगी क्या जाने इस मुक्तिके माननेवालेकी एसी मनसा होवेकि यहां तो देश देशांतर जानेमें रेलादिकका नाम्हा देना पम्ता है और जब हम मुक्त हो जावेंगे तब तो पक्षीयोंकी तरे जहांका तमाशा देखना होगा तहां चले जावेंगे तो इस बातकों कौन मना कहता है. परंतु प्रेक्षावान् तो युक्तिविकल मुक्तिको कदापि नही मानेगे. तथा मुक्त होके चलना फिरना, देशदेशांतरमें जाना आना, ऐसी मुक्ति तो पतंजलि गौतम बादरि जैमिनि व्यास याज्ञवल्क्यादिकोंनें किसीनेंन्नी नही मानी तो फेर उनके मतके शास्त्रोंसे मुक्तिस्वरूप लिखनेसें क्या प्रयोजन सिद्ध होता है, और दयानंद सरस्वतीजीनें जो वेदोक्त मुक्ति लिखी है उसमेंन्नी मुक्त लोगोंका लोकांतरमें जाना आना नही लिखा है तो फेर यह उमे फिरने लोक लोकांतरमें जाना आनेवाली मुक्ति सरस्वतीजीनें कहांसें निकाला लीनी. तथा फेर दयानंदजी लिखते है मुक्त हूयां पीछे उनके सब काम पूर्ण हो जाते है, कोइ काम अपूर्ण नही रहता है, तो फेर हम पूछते हैकि मुक्तलोग लोकलोकांतरमें किस वास्ते जाते आते है? प्रयोजन तो उनका कोइन्नी बाकी नही रहा है. यह पूर्वापरव्याहति है. फेर दयानंदजी लिखते हैकि पूर्वोक्त मुक्ति प्रजापति परमेश्वर सब जीवोंके लिये वेदोंमें बताता है तो हम पूछते है, ऐसी चलने फिरने वाली मुक्ति परमेश्वरने कौनसे वेदमें बताइ है. जो तुमने ऋग्वेद, यजुर्वेदके दो मंत्रमें मुक्ति स्वरूप लिखा है तिसमें तो चलने फिरनेवाली मुक्ति नही लिखी है. तथा फेर दयानंदजी लिखते है मुक्तिस्थान परमेश्वरही है. अन्य कोइ मुक्तिस्थान नही तो

हम कहेंगे जैसें आकाश सर्व व्यापी है तैसेही ईश्वर मुक्तस्थानरूप सर्व जगें व्यापक है. तिसमें मुक्तलोग स्वछंदतासें चलते हमते फिरते है तो हम पूछते है चीज कौये तो अपने नक्षादिकी तलातमें फिरते है परंतु मुक्तलोग तो सर्व कामसें पूर्ण है तो फेर उनकों देश देशांतर जानेसें क्या प्रयोजन है. अब इस लिखनेसें यह सिद्ध हुआकि जो दयानंदजीनें मुक्तिके स्वरूप वास्ते योग न्याय वेदातांदि मतोकि साक्षी लिखी है वह वेदोंमें मुक्ति स्वरूपके अधूरेका पुरे करने वास्ते लिखी है. उसनें तो वेदोक्त मुक्तिको पुरा तो नही करा बलकि वेदोक्त मुक्तिका खंमन कर दीया और वेद अधुरे कथन करनेसें सर्वज्ञ ईश्वरके बनाये हूए सिद्ध नही होती है. इति प्रथम पक्षः ॥ १ ॥

द्वितीय पक्ष. दूसरा पक्ष तो संभवही नही हो सक्ता है क्योंकि हमनें बहुत जगें पंमित ब्राह्मणोसें सुना हैकि दयानंदजीके बनाये वेदभाष्यभूमिकादि ग्रंथ सच्चे प्रतीत करने योग्य नही है. प्रतीति और प्रमाणिकता तो दूर रही बलकी दयानंदकी न्यायबुद्धि बाबत बाबू शिवप्रसाद सतारे हिंदनें अपने दूसरे निवेदन पत्रमें ऐसा लिखा है. दूसरे निवेदन पत्रका पाठ—राजा शिवप्रसाद कहता है, कि जब मैंने गोतम और कणादके तर्क और न्यायसें न अपने प्रश्नका प्रमाणिक उत्तर पाया और न स्वामीजी महाराजकी वाक्यरचनाका उससे कुछ संबंध देखा मराकि कहीं स्वामीजी महाराजनें किसी मेम अथवा साहिबसें कोइ नया तर्क और न्याय रुस अमेरिका अथवा और किसी दूसरी विलायतका न सीख लिया हो ? फरङ्गिस्तानके विद्वज्जनमंडलीभूषण काशीराज स्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबो साहिब बहादुरको दिखलाया बहुत अचरजमें आये और कहने लगे हम तो स्वामीजी महाराजकों बमे पंमित जानतेथे फेर अब उनके मनुष्य हो-

नेमें संदेह होता है, दूसरा निवेदन पत्र पृष्ट ५–६ ॥ अन्य पंडित तथा विलायती पंडित दयानंद सरस्वतीजीके बाबत यह लिखते है. न्यायसें दूसँरपक्षका संभव नही होता है ॥ २ ॥

तृतीय पक्ष. तिसेर पक्ष तो संभव होभी सक्ता है परंतु सत्पुरुषांको ऐसा लिखना उचित नही ॥ ३ ॥

चतुर्थ पक्ष. चौथा पक्ष प्रतीत करनेके योग्य नही क्या जाँने सच्चकी जगें जूठही हाथ लगा होवे ॥ ४ ॥

पंचम पक्ष. पांचमा पक्ष अप्रमाणिक और न्याय बुद्धिसें हीन तो कदाचित् मानभी लेवें परंतु प्रेक्षवान् कदापि नही मानेगें ॥ ५ ॥ हिंदुस्थानमें बहुतोंने अपने मतके पंथ चलानेंसें आर्य लोकोंकी बुद्धि कुंठ होगइ है. मिथ्यात्व घोर अंधकार सागरमें संशय भरे डूबे डुब रहे है. कितनेकतो क्रिश्चियन हो गये है और कितनेक मुसलमान बन गये है और कितनेक स्वकपोलकल्पित ब्रह्म समाजादि पंथ निकाल बैठे है और कितनेक किसी मतभी नही मानते है और–कितनेक दयानंद सरस्वतीजीके मतमें दाखिल हो गये है. और साधु फकीरतो हल छोड गेरू छोडके, इतने जाटादि हो गये है, गृहस्थ लोगोंकों भीख देनी मुशकल होगइ है, बहुत साधु फकीर लोग लोभी है, धन रखते है, रांडभी रखते है, लोगोंसें लडते है, गांजे चरसकी चिलमें उडाते है, भांग अफीम धतुरा खाते है और लोगोंसें गाल देते है तथा कितनेक नगरोंमें डेरे थांब बैठे है, लोगोंकों लुंटते लुचेपणे करते हैं, परस्त्रीयों गमन करतेहै, मांस मदिराभी कितनेक खाते पीते है. इस फिकीरोंसें तो गृहस्थ रहते और न्यायसें पैसा पैदा करके अपने बाल बच्चोंकों पालें, दीन दुखी भूके प्यासेंकों देवेतो अछाकाम है. साधु उसीकों होना चाहिये जो तन मात्र वस्त्र और भूख मात्र अन्न लेवे, शील पाले

और लोगोंकों जूठ, चोरी, कपट, छल, दंभ, अन्याय व्यापार अ-नुचित प्रवृत्तिसें उपदेश द्वारा बचावें नहीतो साधु होनेसें कुछ लाभ नही.

दयानंदमतसमीक्षा.

दयानंद सरस्वतीजीने प्रथम " सत्यार्थ प्रकाश " बनाया था, तिसरें चार्वाकका मत लिखके लिख दियाकी ये श्लोक जैनोके बनाये हूए है. तिनकी बाबत जब दयानंदकों पूछा गया तब पत्रद्वारा धमकीयां शिवाय और अंडबंडके शिवाय कुछभी उत्तर न दीया. तिन पत्रोकी नकल " दयानंदमुखचपेटिका" नामक ग्रंथमें लिखी और छप गइ है. अब दयानंदजीने नवीन सत्यार्थप्रकाश रचा है, तिसमेंभी कितनीक मिथ्या बातां लिखके फेर जैनमतकों जूठा ठहराया है. इस वास्ते दयानंदजीने जो ईश्वरमुक्ति संसारकी रचना प्रमुख बाबत जो इंद्रजाल रचा है सो खंडन करके दिखाते है.

प्रथम जो दयानंदजी अपने स्वरूपमें परमहंस परिव्राजकाचार्य लिखते है सो मिथ्या है. क्योंकि जो परमहंसोकी वृत्ति शास्त्रोमें लिखी है सो दयानंदजीमें नही है. परमहंसको परिग्रह अर्थात् धन रखना नही कहा है, और दयानंदजी रखते है. परमहंसको तो माधुकरी भिक्षा करनी कही है, और दयानंदजी रसोई करवाकर खाते है. परमहंसको असवारीका निषेध है और दयानंदजी असवारी उपर चडता है. इत्यादि अनेक बातोंसें दयानंदजीमें परमहंसके लक्षण नही है तो फेर परमहंस परिव्राजकाचार्य क्योंकर हो सक्ते है. और कौनसे वे परमहंस है जिनका दयानंदजी आचार्य है. इसवास्ते जो अपनेको परमहंस परिव्राजकाचार्य लिखा है सो मिथ्या है. राजा शिवप्रसाद

है ? जेकर कहोगे, पापीको पाप फल और पुण्यवान्को पुण्यफल देता है, जैसें राजा सज्जनोंको साधुकार देता है और पापी चौरादिकोंको दंड देता है तैसें ईश्वरभी करता है. यही ईश्वरकी दयालुता और न्यायता है यह कहना महामिथ्या है, क्योंकि राजा लोकोंमें चौरादिकोंको बंद करणेकी शक्ति नही है इस वास्ते चोरादिकको बंद नही कर सकता है. ईश्वरको तो तुम सर्व शक्तिमान मानते हो तो फेर पापीयोंको पाप करणेसें बंद क्यों नही करता है ? पापीयोंको पाप करणेसें बंद न करणेसें ईश्वर दयालु नही है, और ईश्वरही जानके पाप कराता है; फेर दंड देता है. इस वास्ते तुम्हारा ईश्वर अन्यायीभी सिद्ध होता है; जेकर ईश्वर पापकरताको नही जानता है तो अज्ञानी सिद्ध होता है. जानता है और रोकता नही तबतो निर्दय, असमर्थ, पक्षपाती, रागी, द्वेषी सिद्ध होता है. हम प्रत्यक्ष देखते है सर्व जीव जड चैतन्यके निमित्तसें अपने अपने करे पुण्य पापका फल सुख दुःख भोगते है तो फिर काहेको ईश्वरको फलप्रदाता कथन करके अन्यजीवांको भ्रमांधजालमें गेरे है ? जब हम अपने पुण्यपापानुसारी फल भोगते है तब तो जैसें दुकानदारसें अपनें पैसेसे लेकर वस्तुका भोगणा है तिसमें दुकानदारनें हमको क्या अधिक फल दिया ? कुछभी नही दिया; तैसेंही निमित्तरूप दुकानदारसें हमनें अपने अपने पापपुण्यका फल भोगा तो तिसमें ईश्वरनें हमको क्या दिया ? इस वास्ते ईश्वर जगतका रक्षक नही.

ईश्वरका न नामका खंडन

तथा दयानंदजी कहते है ईश्वरका नाम 'खं' और 'ब्रह्म' भी है, सर्वत्र आकाशकी तरे व्यापक होनेसें खं, और सबसें बडा होनेसें ब्रह्म है. यह लिखनाभी मिथ्या है, क्योंकि जो सर्व जगे व्यापक होता है वो अक्रिय होता है, जो अक्रिय होता है वो अकिंचित्कर होता

है, आकाशवत्. और सबसे बमा तब होवे जब आकाशसेंभी वडा होवे, सो है नही, क्योंकि आकाश सर्व व्यापक माना है. इस वास्ते ईश्वरका नाम ब्रह्मभी नही, किंतु स्वकपोलकल्पित है. और ईश्वरकों सर्व व्यापक माननेसें पुरीषादि सर्व मलीन वस्तुयोंमें व्यापक होनेसें ईश्वरकी बहुत कुर्दशा सिद्ध होती है.

सत्यार्थ प्रकाशसो असत्यार्थप्रकाश होता है.

दयानंदजीनें जो ईश्वरका नाम ॐकार लिखा सो तो सत्य है, परंतु अ, उ और म् सें जो वायु अग्नि आदिकोंका ग्रहण करा है सो अनघटित पश्यरोंके समान है, अप्रमाणिक होनेसें. क्या ऐसी ऐसी असत्कल्पना जिस ग्रंथमें होवे तिस ग्रंथका नाम सत्यार्थ प्रकाश कोइ बुद्धिमान् मानेगा, क्योंकि प्राचीन वैदिक मतवालेतो पूर्वोक्त रीतीसें ॐकार मानते है, तिनके माननेमेंभी शंका उत्पन्न होती है, क्योंकि जब तीनो अवताररूप होके ॐकारनें जगतमें माताके उदरसें अवतार लीना, तब ॐकारके तीन खंम हो गये, और इन तीनोंके शिवाय अन्यकोइ ॐकार नही है. अकार रजोगुणरूप विष्णु, उकार सत्वगुणरूप ब्रह्मा, मकार तमोगुणरूप शंकर, इन तीनो अक्षरोंसें ॐकार बना तबतो अकारमेंभी तीनो गुण सिद्ध होवेंगे. इस वास्ते यह कथनभी यथार्थ मालुम नही होता है, तो दयानंदजीका कल्पित अर्थ कग्नि वायु आदि क्योंकर ॐकार बन सकता है?

जैनमतमें ॐकारका अर्थ.

सत्य ॐकारका स्वरुपतों यह है—

अरिहंता असरीरा आयरिय उवज्झाय मुणिणो पंचस्वर निप्पन्नो ॐकारो पंचपरामिठि.

अस्यार्थः—अरिहंत पदकी आदिमें अ है सो लेना, और अशरीरी सिद्धपदका नाम है तिसकी आदिमेंभी अकार है सो लेना,

तथा आचार्य पदकी आदिमें दीर्घ आकार है सो लेना, और उपाध्याय पदकी आदिमें उकार है सो लेना, और मुनि पदकी आदिमें मकार है सो लेना, तब यह पांच अक्षर भये–अ, अ, आ, उ, म, व्याकरण सिद्ध हैम, जैनेंद्र, कालापक, शाकटायनके सूत्रोंसें "समानांतेन दीर्घः" इस सूत्र करके तीनो अकारोंका एक दीर्घ आकार हूआ, तब आ, उ, म्, एसा रुप सिद्ध हूआ. तब पूर्वोक्त व्याकरणके सूत्रोंसे आकार उकारके मिलनेसें ओकार सिद्ध होता है और पूर्वोक्त व्याकरणोंके सूत्रोंसें मकारका बिंदुरूप सिद्ध होता है. तब ॐकार सिद्ध होता है. यह पंच परमेष्टिकोंही ॐकार कहते है क्योंकि अरिहंत उसकों कहते है जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अष्टादश दूषणोंसें रहित, पृथिवीमें जीवांको सदागमका उपदेष्टा है; और; अशरीरी उसकों कहते है जो सिद्ध, बुद्ध, अमर, अजर, परमात्मा, ईश्वर, निरंजनादि अनंत गुणां करके संयुक्त मुक्तस्वरूप होवे आचार्य उसको कहते है जो पांच आचार पाले, जगत्को सत्शास्त्रका उपदेश करे; उपाध्याय उसकों कहते है जो सत्शास्त्रका पठण पाठण करावे; मुनि उसको कहते है जो पंचमहाव्रत और सत्तर भेद संयमके धारक होवे; इन पांचोके शिवाय जीवांकों अन्य कोई वस्तु उपास्य नही है. इनही पांचोके आद्य अक्षरोंसें ॐकार सिद्ध होता है. यह सत्य ओंकारका स्वरूप है. मिथ्याकल्पना कल्पित ॐकारसें सत्य ॐकारकी महिमा घट नही सकती है.

जपमालाका स्वरूप.

तथा सर्व आर्य लोकोंके जप स्मरण वास्ते माला रखनेका व्यवहार सर्व प्राचीन मतोमें प्रसिद्ध है, तिस मालाके १०८ मणिये होते है. तिसका निमित्त पूर्वोक्त मन्त्र ॐकारके १०८ गुण है, अरिहंत पदके बार गुण, अशरीरी

अर्थात् सिद्धपदके ८ गुण; आचार्य पदके ३६ गुण; उपाध्यायपद-के २५ गुण और मुनिपदके २७ गुण है. ये सर्व एकठे करे १०८ गुण होते है; सत्य ॐकारके १०८ गुण स्मरण करनें वास्ते अष्टोत्तरी माला जगतमें प्रसिद्ध हूई है.

दयानंदका मतकी गोदडो.

तथा दयानंद सरस्वतीनें अपनें मनोकल्पित मतकी गोदमी बनाई है. सो रंगविरंगी विढंगी है, क्योंकि प्रथम जो सांख्य, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक मतोंकी प्रक्रियाके सूत्र है वे रंग विरंगी है; परस्पर तिनका कहना मिलता नही है, क्योंकि सांख्य तो प्रकृति पुरुष मानता है, मीमांसक कर्म और ब्रह्म अद्वैत मानता है; न्याय सोला और वैशेषिक षट् पदार्थ मानता है. उनका खंमन परस्पर एकैकने अपने शिवाय सर्वका कीया है. और सदागमवालोंनें सन्मत्ति, द्वादशसार नयनचक्रसें पूर्वोक्त सूत्रोंका खंमन यथार्थ किया है. तिससें यह अनमिल रंग विरंगी तर्क प्रमाण बाधित जीर्ण हूई श्रुति सूत्रोंको लेके मतकी गोदमी बनाई है. और इनपूर्वोक्त श्रुति सूत्र स्मृतिसूक्तोंके स्वकपोल कल्पित अर्थ बनानेसें गोदमी रंगविरंगी और विढंगी बनी है. देखिये, नवीन सत्यार्थप्रकाश पृष्ट २१९, " सूर्याचंद्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्, । दिवं च पृथिवीं चांतरीक्षमथोस्वः " ॥ ऋग्वेद मंमल १, सूत्र १९ मंत्र ३. इस मंत्रमें लिखा है ईश्वरनें आकाश बनाया, रचा है.पृष्ट २१५ में दयानंदजी लिखता है आकाश नित्य है. पृष्ट २०९ में एक सांख्य मतका सूत्र लिखा है, तिसमें आकाशकी उत्पत्ति लिखी है. इस तरें बहुत श्रुतियोंमें आकाशकी उत्पति लिखी है. पृष्ट २१० " तदैक्षत बहुःस्यां प्रजायेयेति । १ । सोऽकामयतबहुः स्यां प्रजायेयेति " । २ । अर्थ—आत्मा देखकर विचार करत है के में प्रजासें बहोत हुं. आत्मा ऐसी इच्छा करता है कि में प्रजाके

वास्ते वहोत हुं " यह तैत्तरेयोपनिषद्का वचन है सो नही मानना " सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन. " यहजी उपनिषद्का वचन है इसकों मिथ्या मशकरीसें कहता है, सो मशकरी यह है–यह वचन ऐसा है जेसाकि कहींकी इंट कहींका रोडा नेनमतीनें कुडवा जोडा, ऐसी लीलाका है. इस तेरें सेंकमो श्रुतियाकों मिथ्या ठहराई है, और सेंकमोंके स्वकपोल कल्पित अर्थ करें है. कहीं कहीं सांख्य, वेदांत, न्याय स्मृतिके वचन ग्रहण करें, कहीं स्वकपोलकल्पित कर्थ करें, और कहीं मिथ्या ठहराये; इस कप्रनसें सत्यार्थप्रकाश जरा पमा है. इस वास्ते दयानंदकी मतगोदमी ओढनें योग्य नही.

ईश्वरका नामकी कल्पित व्युत्पात्ति.

दयानंदनें जो व्युत्पत्तिद्वारा ईश्वरके अग्नि, वायु, रुद्र, सरस्वती. लक्ष्मी आदि नाम सार्थक करे है वे कोई विद्वान नही मानेगा. दयानंदजी अपनें सत्यार्थप्रकाशके प्रथम समुल्लासमें " खं १ अग्नि २ मनु ३ इंद्र ४ प्राण ५ गरुत्मान् ६ मातरिश्वा ७ सुपर्ण ८ जूमि ९ विराट् १० वायु ११ आदित्य १२ मित्र १३ वरुण १४ अर्यमा १५ वृहस्पति १६ सूर्य १७ पृथ्वी १८ जल १९ आकाश २० सविता २१ कुवेर २२ अन्न २३ अन्नाद २४ अत्ता २५ वसु २६ चंद्र २७ मंगल २८ बुध २९ वृहस्पति ३० शुक्र ३१ शनैश्चर ३२ राहु ३३ केतु ३४ होता ३५ यज्ञ ३६ वंधु ३७ पिता ३८ माता ३९ आचार्य ४० गुरु ४१ गणेश ४२ गणपति ४३ देवी ४४ शक्ति ४५ श्री ४६ लक्ष्मी ४७ सरस्वती ४८ धर्मराज ४९ यम ५० काल ५१ शेष ५२ कवि ५३ इत्यादि ईश्वरके नाम लिखे है. जला यह नाम कवीजी ईश्वरके हो सक्ते है? अगर जो हो सक्ते है तो हम पूछते है कि यह नाम कोनसे कोशके आधारसें लिखे है अगर जो कोश फोस कुछ नहीं

मानते है हमतो अपने ज्ञानके बलसे बनाते है तबतो तुमारे मुखसेंही सिद्द हूआ कि यह ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश नहीं किंतु असत्यार्थ प्रकाश है, क्योंकि सत्यबातके प्रकाश करणेंके स्थलोंमें तो व्याकरण काव्य कोश अलंकारके अनुसारही रचना करनी कविजनोंके वास्ते लिखी है तबही शास्त्रके अर्थका और शब्दकी शक्तिका ग्रहण हो सकता है. तथाहि–" शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च । वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदंति, सांनिध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः " ॥

अर्थ—शब्दकी शक्तिका ग्रहण व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार. शेष वाक्य, विवृति, सिद्धपदकी सानिध्यता इत्यादिकोंके अनुसार होता है. केवल व्युत्पत्ति मात्रसें नहीं होता है. जेकर केवल व्युत्पत्ति मात्रसेंही शब्दकी शक्तिका ग्रहण होवे तबतो यह नीचे लिखे दुवेन्नी नाम परमेश्वरके होने चाहिये.

१ " अंह्रिः—पुल्लिंग–संसारवृक्षस्य अंह्रिः कोर्थः मूलं तदिव यो वर्तते स अंह्रिः "–अर्थ–संसारवृक्षके मूलकी तरें होनेंसें ईश्वरका नाम अंह्रि है.

२ " अकिंचित्करः—पुं. न किंचित् करोति इति अकिंचित्करः कस्मात् कृतकृत्यत्वात्. " अर्थ—कृतकृत्य होनेंसें कुछन्नी नही करता है तिस लिये ईश्वरका नाम अकिंचित्कर है.

३ " अकृत्यः पु. न विद्यते कृत्यं यस्य कृतकृत्यत्वात् इति अकृत्यः " अर्थ—कृतकृत्य होनेसे बाकी कुछन्नी करणेंका नही रहा है तिस लिये ईश्वरका नाम अकृत्य है.

४ " उल्लूकः पु. उल्लति सर्वत्र समवैति व्याप्नोति वा इति उल्लूकः " अर्थ—सर्व जगें व्यापक होनेंसें ईश्वरका नाम उल्लूक है.

५ गर्दभः. पु. गर्दति वेदशब्दं कारयति इति गर्दभः" अर्थ—वेदशब्दके करानेंसे ईश्वरका नाम गर्दभ है.

६ बिडालः पु. वेडति शपति दुष्टान् इति बिडालः" अर्थ—दुष्ट जनोंकु श्राप देनेंसें ईश्वरका नाम बिडाल है.

७ "कुक्कुरः. पु. को पृथिव्यां भक्तजनप्रबोधाय वेदध्वनिं कारयति इति कुक्कुरः" अर्थ—इस पृथ्वीपर भक्तजनोंके बोधके लिये वेदध्वनीके करानेसें ईश्वरका नाम कुक्कुर है.

८ "यमः. पु. यमयति शुभाशुभकर्मानुसारेण जंतून् दंमयति इति यमः. अर्थ—भले बूरे कर्मोके अनुसार जीवोंके तांई दंम देनेमें ईश्वरका नाम यम है.

९ "वृश्चिकः. पु. वृश्चति छिनत्ति भक्तजनपापानि इति वृश्चिकः. अर्थ—भक्तजनोंके पापोंका छेदन करनेंसे ईश्वरका नाम वृश्चिक है.

१० "भारवाहकः. पु. जगतः भारं वहति इति भारवाहकः अर्थ—जगतका भार वहन करनेंमें ईश्वरका नाम भारवाहक है.

११ "विट्. पु. विटति आक्रोशं करोति दुष्टान् इति विट्" अर्थ—दुष्टोंका उपर आक्रोश करणेंमे ईश्वरका नाम विट् है.

१२ "मंदः. पु. मंदते मोदते ऐश्वर्यपदे इति मंदः". अर्थ—अपनें ऐश्वर्यपदमें नित्य खुशी रहनेमें ईश्वरका नाम मंद है.

१३ "विश्वकाकः. पु. विश्वे काकः कोऽर्थः तिलकमिव वर्तते इति विश्वकाकः." अर्थ—इस पृथ्वीरूपी भामिनीके भालस्थलमें तिलकरूपी तरे होनेंमें ईश्वरका नाम विश्वकाक है.

१४ "गरलं न. गिरति प्रलयकाले सर्वेषां शरीराणीति गरलं." अर्थ—प्रलयकालमें जीवोंके शरीरोंका नाश करनेंमें ईश्वरका नाम गरल है

१५ " खलः. पु. खलति सृष्ट्यादिरचनायां स्वस्वभावात् इति खलः " अर्थ—सृष्टि आदि कालमें अपने स्वभावमें खलायमान होनेसें ईश्वरका नाम खल है.

१६ " कुविंदः. पु. कुं पृथ्वीं विंदति कोऽर्थः प्राप्नोति सर्वत्र व्यापकत्वात् इति कुविंदः." अर्थ—सर्वत्र व्यापक होनेसे सब पृथ्वीको लाभ हुआ है इस लीये ईश्वरका नाम कुविंद है.

१७ " पाखंडीः. पु. पापं खंडयति इति पाखंडी. "अर्थ—भक्तजनोंके पापको खंडन करणेसे ईश्वरका नाम पाखंडी है.

१८ " बलदः. पु. भक्तजनान् बलं ददाति इति बलदः." अर्थ—भक्त जनोंके तांइ बलका दाता होनेसे ईश्वरका नाम बलद है.

१९ " भगंदरः पु. भक्तजनानां योनिं कोऽर्थः दुष्टयोनिषु भवतिं दारयति इति भगंदरः. " अर्थ—भक्तजनोंकी दुर्गतिको दूर करनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम भगंदर है.

२० " महिषः. पु. मह्यते जनैरिति महिषः. " अर्थ—जनोके समुदाय करके पूज्य होनेसे ईश्वरका नाम महिष है.

२१ " श्वाः, पु. श्वयति कोऽर्थः वेदध्वनिं प्रापयति इति श्वा. " अर्थ—वेदध्वनिको प्राप्त करनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम श्वा है.

२२ " अहिः पु. आहंति भक्तजनपापानि इति अहिः, " अर्थ—भक्तजनोके पापोंका नाश करनेसें ईश्वरका नाम अहि है.

२३ " स्त्री. स्त्री. स्यते वेदध्वनीं कारयते इति स्त्री. अर्थ—इस पृथ्वीपर वेदध्वनिकुं प्रगट करनेंसे ईश्वरका नाम स्त्री कहेभी ठीक है.

२४ अज्ञः पु. "नजानाति स्वस्य आदिं इति अज्ञः "
अर्थ—अपनी आदिके न जाननेसें ईश्वरका नाम अज्ञ है.

२५ " अंधः पु. अंधयति कोर्थः चर्मचक्षुषा न पश्यति इति अंधः " अर्थ—ईश्वर पोते अपनें चरमचक्षुयोसें अपनी इंद्रियोंका द्वारा नही देखनेवाला होनेंसें ईश्वरकानामअंधज्ञीकहनाजीठीकहै.

२६ " अमंगलः पु. नास्ति मंगलं कोर्थः पयोजनं यस्य सः अमंगलः " अर्थ—किसी बातका प्रयोजन न होनेसें ईश्वरका नाम अमंगल है.

२७ " गर्दज्ञी. स्त्री. गर्दयति वेदशब्दं कारयति इति गर्दज्ञी" अर्थ—इस पृथ्वी उपर वेदशब्दोंका करानेंसें ईश्वरका नाम गर्दज्ञी है.

२८ " गाएमी. पु. ज्ञानग्रन्थिरस्यास्ति इति गाएमी. " अर्थ-ज्ञानग्रंथिवाला होनेंसे ईश्वरका नाम गाएमी है.

२९ "चंमालः पु. चंमति दुष्टान् इति चंमालः." अर्थ—दुष्ट जनोंके उपर कोप करनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम चंमाल है.

३० " चौरः पु. चोरयति दुष्टानां सुखधनं इति चौरः " अर्थ—दुष्टोंका सुख रूप धन ले लेनेसें ईश्वरका नाम चौर है,

३१ "तुरगः पु. तुरेण वेगेन सर्वत्र व्याप्नोति इति तुरगः."अर्थ—वेगसें सर्वत्र व्यापने वाला होनेसें ईश्वरका नाम तुरग है.

३२ "दुःखंः. न. दुःखयति दुष्टान् इति दुःखं. " अर्थ–दुष्टोंको सदा दुःख देनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम दुःख है.

३३ " दुर्जनः पु. दुष्टो जनो यस्माज्जायते कस्मात् सर्वोत्पत्ति-कारणत्वात् ईश्वरस्य. " अर्थ–दुष्ट जनोंकी उत्पत्ति इश्वरसें होनेसें इश्वरका नाम दुर्जन है. इति अलं प्रपंचेन.

अब बुद्धजनोंकुं विचार करना चाहियेकि केवल व्युत्पत्तिमा-त्रसें तो यह उपर दिखाये हूये महा खराब नामज्ञी ईश्वरके हो सक्ते है. इस वास्ते दयानंदजीका कहना महामिथ्या है. जो जो

परमेश्वरके सत्य नाम है वे आगे भव्यजनोंके जानने वास्ते लिखते है.

" अर्हन् जिनः पारगतस्त्रिकालवित् क्षीणाष्टकर्मा परमेष्ठ्यधीश्वरः । शंभुः स्वयंभूर्भगवान् जगत्प्रभुः तीर्थंकरस्तीर्थकरो जिनेश्वरः ॥ स्याद्वाद्यभयदसार्वाः सर्वज्ञः सर्वदर्शिकेवलिनौ । देवाधि देवबोधिदपुरुषोत्तमवीतरागाप्ताः " ॥ २ ॥

इन दोनों काव्योके अर्थ साथे ईश्वर परमात्माका यथार्थ नामो वतलाते है.

१ " अर्हन्. पु. चतुस्त्रिंशतमतिशयान् सुरेंद्रादिकृतां पजां वा अर्हति इति अर्हन्." मुगृद्विषार्हः सत्रिशतुस्तुत्य इति शृप्रत्ययः अरिहननात् रजोहननात् रहस्याभावाच्चेति पृषोदरादित्वात् अर्हन्. " अर्थ—अद्भूतरूप आदि चौंतीश अतिशयोंके योग्य होनेसें और सुरेंद्रनिर्मित पूजाके योग्य होनेसें तीर्थंकरका नाम अर्हन है. मुगृद्विषादि जैनेंद्र व्याकरणके सूत्रसें यह अर्हन् शब्द सिद्ध होता है. अब दूसरी रीतीसेंभी अर्हन् शब्दका अर्थ दिखलाते है जैसे अष्टकर्मरूप वैरियोंको हननेसें और इस जगतमें तिनके ज्ञानके आगे कुछभी गुप्त नही रहनेसें तिस ईश्वर परमात्मा तीर्थंकरका नाम अर्हन् है.

२ " जिनः. पु.जयति रागद्वेषमोहादिशत्रून् इति जिनः " अर्थ--राग, द्वेष, महामोह आदि शत्रुवोंकु जितनेसें तिस परमात्माका नाम जिन है.

३ " पारगतः पु. संसारस्य प्रयोजनजातस्य पारं कोर्थः अंतं अगमत इति पारगतः. " अर्थ—संसारसमुद्रके पार जानेसें और सब प्रयोजनोका अंत करनेसें तिस परमात्माका नाम पारगत है,

४ " त्रिकालवित्. पु. त्रीन कालान् वेत्ति इति त्रिकालवित्"

अर्थ—नूत, नविष्यत्, वर्त्तमान, येह तिन कालमें होनेवाले पदार्थोंका जाननेवाला होनेसें तिस ईश्वर परमात्माका नाम त्रिकालवित् है.

५ " क्षीणाष्टकर्मा. पु. क्षीणानि अष्टौ ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि यस्य इति क्षीणाष्टकर्मा. " अर्थ—क्षीण हो गये है ज्ञानावरणीय आदि अष्ट कर्म जिनके तिस परमात्माका नाम क्षीणाष्टकर्मा है.

६ " परमेष्टी. पु. परमे पदे तिष्ठति इति परमेष्टी परमात् तिकिदिति इनि प्रत्यये नीरुष्टानादित्वात् पत्वं सप्तम्या अलुक् च. अर्थ—परम उत्कृष्ट ज्ञान दर्शन चारित्रमें स्थित होनेसें ईश्वर परमात्माका नाम परमेष्टी है.

७ " अधीश्वरः. पु. जगतामधीष्टे इत्येवंशीलोऽधीश्वरः स्थसन्नासपिसकसोवर इति वरः. " अर्थ—जगतजनोंकुं आश्रयनूत होनेसें तिस परमात्माका नाम अधीश्वर है.

८ " शंनुः. पु. शं शाश्वतसुखं तत्त नवति इति शंनुः " शंसंस्वयंविप्रोदुवोडुरिति डुः. अर्थ—सनातन सुखके समुदायमें होन करके ईश्वर परमात्माका नाम शंनु है.

९ " स्वयंनूः. पु. स्वयं आत्मना तथानव्यत्वादिसामग्रीपरिपाकात् न तु परोपदेशात् नवति इति स्वयंनूः. " अर्थ—अपनी नव्यत्वपनाकी स्थिति पूर्ण होनेसें स्वयमेव पैदा होता है इस लिये तिस ईश्वर परमात्माका नाम स्वयंनू है.

१० " नगवान्. पु. नगः कोर्थः जगदैश्वर्यं ज्ञानं वा अस्ति अस्य इति नगवान् " अतिशायिनि मतुः " अर्थ—इस जगतका सब ऐश्वर्य और ज्ञानहै जिनकुं एसे परमात्माका नाम नगवान् है.

११ " जगत्प्रभुः. पु. जगतां प्रभुः जगत्प्रभुः. " अर्थ— इस जगतका स्वामी होनेसें ईश्वरका नाम जगत्प्रभु है.

१२ " तीर्थंकर.: पु. तीर्यते संसारसमुद्रोऽनेन इति तीर्थं प्रवचनाधारश्चतुर्विधः संघः तत् करोति इति तीर्थंकरः." अर्थ-जिस करके संसार समुद्र तरीए सो तीर्थ; तिसकुं करनेवाला होनेसें ईश्वर परमात्माका नाम तीर्थंकर है.

१३ " तीर्थकरः. पु. तीर्थं करोतीति तीर्थकरः. " अर्थ--पूर्वोक्त संसारसमुद्रसें तारनेवाला तीर्थका प्रवर्त्तक होनेसें ईश्वर परमात्माका नाम तीर्थकर है.

१४ " जिनेश्वरः पु. रागादिजेतारो जिनाः केवलिनस्तेषामीश्वरः जिनेश्वरः. " अर्थ—रागद्वेषादि महा कर्मशत्रुवोंके जितनेवाले सामान्यकेवली तीनोंकाभी ईश्वर होनेसें परमात्माका नाम जिनेश्वर है.

१५ " स्याद्वादी. पु.स्यादिति अव्ययमनेकांतवाचकं"ततः स्यादिति अनेकांतं वदतीत्येवंशीलः स्याद्वादी " स्याद्वादोऽस्यास्तीति वा स्याद्वादी यौगिकत्वादनेकांतवादी इत्यपि पाठः. " अर्थ—सकल वस्तुस्तोम अपने स्वरूप करके कथंचित् अस्ति है और परवस्तुके स्वरूप करके कथंचित् नास्तिरूप है ऐसा तत्व प्रतिपादन करनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम स्याद्वादी है.

१६ " अभयदः. पु. भयमिहपरलोकादानाकस्मादाजीवमरणाश्लाघाभेदेन सप्तधा एतत्प्रतिपक्षतोऽभयं विशिष्टमात्मनः स्वास्थ्यं निःश्रेयसधर्मनिबंधनभूमिकाभूतं तत् गुणप्रकर्षादचिंत्यशक्तियुक्तत्वात् सर्वथा परार्थकारित्वाद्ददाति इति अभयदः. " अर्थ—सर्वथा अभयका देनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम अभयद है.

१७ " सार्वः. पु. सर्वेभ्यः प्राणिभ्यो हितः सार्वः. " अर्थ—सर्व प्राणीके पर हितकारी होनेसें ईश्वरका नाम सार्व है.

१८ " सर्वज्ञः. पु. सर्वं जानातीति सर्वज्ञः. " अर्थ—सर्व पदार्थोंकुं अपने ज्ञानद्वारा जाननेवाला होनेसें ईश्वरका नाम सर्वज्ञ है.

१९ " सर्वदर्शी. पु. सर्वं पश्यतीत्येवंशीलः सर्वदर्शी. " अर्थ-अपने अखंम ज्ञानद्वारा सर्व वस्तुको देखनेका स्वजाव है जिसका इस लीये ईश्वरका नाम सर्वदर्शी है.

२० " केवली. पु. सर्वथाऽऽवरणविलये चेतनस्वजावाविर्जावः केवलं तदस्यास्तीति केवली. " अर्थ—सर्व कर्म आवरणके दूर होनेसें चेतनस्वजावका प्रकट होना सो केवल. ऐसा केवलका धारक होनेसें ईश्वर परमात्माका नाम केवली है.

२१ " देवाधिदेवः. पु. देवानामप्यधिदेवो देवाधिदेवः. " अर्थ—देवताकाजी देव होनेसें ईश्वरका नाम देवाधिदेव है.

२२ " बोधिदः. पु. बोधिः जिनप्रणीतधर्मप्राप्तिस्तांददाति इति बोधिदः. " अर्थ—जिनप्रणीत शुद्ध धर्मरूप बोधिबीजका देनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम बोधिद है.

२३ " पुरुषोत्तमः. पु. पुरुषाणां उत्तमः पुरुषोत्तमः. " अर्थ—पुरुषोंके बिच सर्वोत्तम श्रेष्ठता धारण करनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम पुरुषोत्तम है.

२४ " वीतरागः. पु. वीतो गतो रागोऽस्मात् इति वीतरागः." अर्थ—दूर हो गया है अंगनादिकोंमें राग जिसका इस लिये ईश्वर परमात्माका नाम वीतराग है.

२५ " आप्तः. पु. जीवानां हितोपदेशदातृत्वात् आप्त इत्याप्तः. " अर्थ—जीवोंके तांइ हितोपदेश करनेवाला होनेसें ईश्वरका नाम आप्त है.

यह नामो सत्य परमेश्वरके है.

जगतकर्ता ई- श्वरका खंडन.

आगे दयानंदजीने जो जगतका कर्ता ईश्वर माना है तिसका खंमन लिखते है..

सर्व जगतके बनानेसें ब्रह्मा परमेश्वरका नाम है. यह गुण परमेश्वरमें कबी कही हो सकता है. क्योंकि दयानंदजी सत्यार्थप्रकाशमें लिखता है, पृष्ट २२२ में, जब सृष्टिका समय आता है, तब परमात्मा उन परम सूक्ष्म पदार्थोंकुं एकठा करता है. जला अनंतशक्तिवाला होकर परमात्मा पामरोंकी तरें पदार्थ एकठे करे है. फेर उनसें महतत्व बनावे है, तिनसें अहंकार, तिससें पंचतत्वमात्र इत्यादि क्रमसें सृष्टि बनाता है तो हम पुछते है इतनी मेहनत करके जो ईश्वर सृष्टि बनाता है परमात्माको कोइ जरूरता है वा वे पदार्थ ईश्वर आगे विनति करते है. प्रथम पक्ष मानोंगेतो ईश्वर कृतकृत्य नहि रहेगा, कर लिये है करने योग्य काम जिसनें उसका कृतकृत्य कहते है. ईश्वरका तो बमा जारी काम रहता मालूम होता है जो इतनी महेनतसें सृष्टि बनाना स्वीकार कीया है. जेकर कहोगे ईश्वरको कोइ प्रयोजन नही तो फेर काहेको इतनी मेहनत उगाता है, विना प्रयोजनतो मंद पुरुषजी नही प्रवृत्त होता है. जेकर कहोगे ईश्वर दयालु है, दया करके प्रलयमें स्थित जीवांको प्रलयसें निकाल कर उनका सुख देने वास्ते नवीन शरीर बना कर उनके साथ संबंध कर देता है तो हम पूछते है प्रलयमें उनका क्या दुःख था, जेकर कहोगे वहां सुखजी क्या था वहतो सुषुप्तिक सदृश है, तो हम पुछते है जला जिन जीवांकोतो सुखी रचा उनकों तो सुख दीया परंतु जिन जीवांको दुःखी रचा उनकों क्या सुख दीया. जो कुष्ट, जगंदर, जलोदर, शरीरमें कृमि पडे हूवे, महादुःख जोग रहे है, खानेको टुकमाजी नही मिलता है, शरीरमें रोग हो रहा है, मस्तकोपरि लकडीयांका जार उगाया हूवा है, इत्यादिक परम दुःखोंसें पी-

ष्ति हो रहे है इनों उपर ईश्वरनें क्या दया करी. इस दया कर-
नेसेंतो ना करनी अछी थी. विचारें गरीब जीव सुखसें सोये हुवे
थे उनका ईश्वरकी दयानें विपदामें माल दिया. किसी आदमी
सोतेकों जगादेवे तो वो मनमें दुःख मानता है. उन जीवांको तो
ईश्वरकी दयानें सोताकों जगाकर नरकमें माल दीया, वे वि-
चारें जीव तो ईश्वरकी दयाकी बहुत स्तुति करते होंगे. सुज्ञ
जनों ! देखीये, यह दया है कि हिंसा है. हम नही जानते
ऐसी दया माननेवाले कौनसा मोहको प्राप्त हो रहे है. जे कर
कहोगे ईश्वर क्या करे वे जीव ईश्वर आगे विनती करते हैं, ईश्वर
उनकी प्रार्थनाको क्योंकर भंग करे; यह कहेनाभी अज्ञानताका
सूचक है. क्योंकि प्रथमतो उन जीवांके शरीर नही है, वे तालु
आदि सामग्री विना बोलभी नही सकते, विनंती करनीतो दुर
रही, भला, जीनें जीवोंको सुखी रचा उननोंकी तो विनती कर-
नीभी बन सक्ती है, जिन जीवांको दुःखी रचा वे जीव अपने
दुःखी होने वास्ते कैसे विनति करते होंगे. जेकर कहे वे जीव
विनती नही करते परंतु उन जीवोंके साथ जो कर्म लगे हुवे है
उनका फल भुगताने वास्ते ईश्वर सृष्टि रचता है तो हम पुंछते
है जेकर ईश्वर उनकों कर्मोंका फल न भुगतावे तो क्या वे कर्म
ईश्वरको दुःख देते थे, जो उनके दुःखसे मर कर सृष्टि रचता है
जेकर कहोगे ईश्वरको जीवांके कर्मोंनें क्या दुःख देना था. वो
तो अनंतशक्तिमान् है. ईश्वर तो फक्त क्रीडावास्तेही सृष्टि र-
चता है. वाह ! अच्छा ईश्वर तुमने माना है जो अपनी खेल
वास्ते जीवांको अनेक दुःखोंमें गेरता है अपनी खेल वास्ते
गरीब जीवांको नरकमें गेरता, रुवाना, पिटाना, रोगी दरिद्री
करना यह दयावान्का काम नही. सच है कि चिडियोंकी
मौत गवारोंकी हांसी. जेकर वगर विचारें कहे ईश्वर खेल वास्ते

नही सृष्टि रचता, किंतु ईश्वरका स्वभावही अनादि कालसें सृष्टि रचनेका है, तो निष्प्रयोजन परजीवोंकों दुःख देनेके स्वभाववाला है, वो कभी ईश्वर नही हो सकता है. जैसें कटुक स्वभाववाला नींब मीसरी नही हो सकता है. अब जब सृष्टि बनानेका प्रयोजन नही तो सृष्टि ईश्वरनें बनाई है यह क्योंकर सिद्ध होवेगा. जब कोईभी प्रयोजन ईश्वरके सृष्टि बनानेमें न मिला तब दयानंदजीनें सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २२१ में नही बनानेमें क्या प्रयोजन है ऐसा लिखा. यह आश्चर्यकी बात है दयानंदजी ऐसे बुद्धिमान् नाम धरा कर ऐसा प्रश्न पुछा. जिसका उत्तर बालकभी दे सकते है: प्रयोजनका अभाव यह न बनानेका प्रयोजन है: यह बात सब सामान्य लोकभी जानते है. जिस काम करनेका कुछ प्रयोजन नहीं उस कामको कोई नही करता.

फेर पृष्ठ २२१ में स्वामीजी लिखता है न बनाना यह आलसी और दरिद्र लोगोंकी बातें है, पुरुषार्थीकी नही. और जीवोंको प्रलयमें क्या सुख वा दुःख है ? जो सृष्टिके सुखदुःखकी तुलना की जाय तो सुख कई गुना अधिक होता है, और बहुतसें पवित्रात्मा जीव मुक्तिके साधन कर मोक्षके आनंदकोभी प्राप्त होते है. प्रलयमें निकम्मे जैसे सुषुप्तिमें पडे रहते है वैसे रहते है और प्रलयके पूर्व सृष्टिमें जीवोंके कीये पाप पुण्य कर्मोंका फल ईश्वर कैसे दे सकता और जीव क्योंकर भोग सकते [illegible] उत्तर—जो काम निकम्मा होवे जिसका प्रयोजन कुछ न होवे, [illegible] [illegible]

जीवांको छुःख उत्पन्न हो गया, नरकमें अनंत छुःख न्नोगना पड़ा, उनको निकाल कर क्या सुख दीया ? उन जीवां वास्ते तो ऐसा पुरुषार्थी ईश्वर नहोता तो अछा था, वाह ! यही ईश्वरका पुरुषार्थ है जो विना प्रयोजन जीवांको छुःख देना ? फेर जो दयानंदजी लिखता है, प्रलयमें निकम्मे सुषुप्ति जैसें पमे रहते है तो हम पूछते है परमेश्वरका निकम्मे देखकर क्या पेटमें शूल उगवे नही कुछ काम करतेथे तो परमेश्वरका कौनसा गाम्रा अडका हूवा था. जब प्रलयसें निकालनेसें काम करने लगे तब कौनसा छुःख मिट गया. अलबतां उनकों नरक, स्वर्ग, सुख छुःख, पशु पक्षी इत्यादिक अनेक तरेका फल देनेका टंटातो गलेमें जरूर पम गया. यह कहनी दयानंदके ईश्वरकों लागू पमी निकम्मी नायनका टट्टू मूंडे. फेर जो लिखा है प्रलयके पूर्व सृष्टिमें जीवोंके किये पाप पुण्य कर्मोका फल ईश्वर कैसे दे सक्ता. सक्ता है हम पुछते है ईश्वर उनको फल न देता तो क्या उनके पापोका फल ईश्वरको न्नोगना पमता था. जेकर कहोगे, नहीं, तो फेर किस लियें उनको दुःखमें माला. जेकर कहोगे ईश्वर न्यायी है, जेकर उनको कर्मोका फल न देवेतो ईश्वरका न्याय नहीं रहता है. जैसे अबन्नी जो कोई चोरी, यारी, खून वगैरे करता है. उनके करनेंसें राजाको कोईन्नी दुःख नही होता है तो न्नी अपनें न्याय वास्ते राजा उनको दंम देता है. यहन्नी तुमारा विना विचारका कथन है. क्योंकि जब किसी एक पुरुषनें दुसरेका धन लूट लीया और उसको मार दिया जेकर राजा उसको दंड न देवे तो उनको देख कर दूसरान्नी ऐसें करे, दुसरेको देख कर तीसरान्नी ऐसें करे, राजाका तो न्नय है नहि तबतो आगेको वे विशेष करके उपद्रव करें, कितनेक लोक परस्पर लम कर मर जावे, बहुत लोक छुःखी होकर उस राजाकों नपुंसक जानकर उस राजाके

राजाकों छोडकर दूसरें राजाके राज्यमें जा वसे, तवतो उस राजेकों राज्य नष्ठ हो जावे जब उसके संपूर्ण सुख नष्ठ हो जावे; तुमारा ईश्वर जेकर उनकों दंम न देता तो उसकेभी सुख नष्ठ हो जाते थे ? उस राजाकी प्रजा एक दूसरेकों देखकर उपद्रवभी कर सक्ती है. वे जो जीव सुपुप्तिकी तरें प्रलयमें पडे है वे तो कुछभी नही करते, न आगेको करनेके है. उनकों दंम न देनेसें ईश्वरका कौनसा राज्य नष्ठ हो जाता था. जे कर कोई नास्तिक ऐसें कहे ईश्वरकातो कुछभी नष्ट नहीं होता था परंतु जेकर ईश्वर दंम न देवे तो ईश्वरका न्यायीपणा नही रहता है. हम पूछते है, ईश्वरको न्यायी किसनें वनाया है कि तुम हमारा न्याय करा करो. जेकर तुम कहोगे अनादि न्यायी है तो हम पूछते है जैसे ईश्वर अनादि है ऐसे जीवभी अनादि है यह क्यों कर भेद पड गया, एक जीव न्यायी, शेष सर्व अन्यायी, एक जीव स्वतंत्र, शेष सर्व परतंत्र, एक जीव सर्वज्ञ, शेष सर्व असर्वज्ञ. जेकर कहोगे जैसे आकाश और जीव दोनो अनादि है तदपि एक चैतन है, एक जड है ऐसा ईश्वर जीवभी न्यायी अन्यायी है. यहभी कहना तुमारा मिथ्या है. क्योंकि जीव और आकाश भिन्न भिन्न जातिवाले पदार्थ है. इनके भेद होनेमें जातिका भेद कारण है. ईश्वर और जीव एक आत्मतत्व जातिवाले पदार्थ है. इनके स्वरूपमें भेद कभी नही वन सक्ता, जेकर कहोंगे इनके स्वरूपमें तो भेद नही. जैसें पुण्य पापकी न्यूनाधिकतासें जीवोंका परस्पर भेद है ऐसे पुण्य पापके अभावसें जीव ईश्वरका भेद है तो हम पूछते है, ईश्वरमें पुण्य पापका अभाव कब हूवा. जेकर तुम कहोगे ईश्वर अनादिसें पुण्य पापसें रहित है, तो हम पूछते

है तुल्य जाति वाले होनेसें जीवन्नी अनादिसें पुण्य पापसें रहित क्युं नहीं हुवे ? इससें एकला ईश्वर कन्नी न्यायी नहीं सिद्ध होता है. जेकर नास्तिक कहे जेकर तुल्य जाति करके नेद न मानोगे तो अनादिसें सर्व जीव पापवाले अथवा पुन्यवाले होने चाहीये थे परंतु हम देखते है केई जीव पापवाले है, केई पुण्यवाले है ऐसेही ऐसेही कोई जीव अनादिसें पुण्य पापसें रहित सिद्ध हो जावेगा. हे नास्तिक ! यह तेरा कहेना अति मूर्खपणेका सूचक है क्यों कि कोई ऐसा जीव नही जो केवल पुण्यवालाही है और ऐसान्नी को जीव नही जो केवल पापवाला है. किंतु पापपुण्य दोनों करी संयुक्त सब जीव अनादि कालसें चले आते है. जो जीव मुक्तिके साधन करता है वो पाप पुण्यसें रहित हो जाता है. अनादि न्यायी कन्नी पाप पुण्य करके युक्त नही था. ऐसा नास्तिकोंका ईश्वर कन्नी नही सिद्ध हो सक्ता. अब कहना चाहिये तुमारे ईश्वरकों किसनें न्यायी बनाया है, हे नास्तिक ! न्यायी उसका नाम है जो सचको सच, जूठकों जूठ कहे, किसीका पक्षपात न करे. परंतु तुमारा ईश्वर ऐसा नही हो सक्ता है, क्यों कि जो पहले तो जीवांको पाप करतेको न रोके, जब पाप कर चूके तो पीछे झट दंम देनकों तैयार हो जावे. ऐसे अन्यायीको कौन बुद्धिमान न्यायी मान सक्ता है ? इस न्यायसें तो आधुनिक राजेन्नी अच्छे है. जो इनकों खबर हो जावे इस मनुष्यनें चोरी करनी है या खून करना है, उसकों पकम कर पहलेही उसकी जामीनी आदि बंदोबस्त कर लेते है. जेकर नास्तिक कहे वेदका उपदेश देकर ईश्वरनेंन्नी पहलेही सब जीवांको पाप करनेंसें रोका है, तो हम पूछते है जो ईश्वरके उपदेशकों न मानकर पाप करते है क्या वे ईश्वरसें जोरावर है जो ईश्वर उनको पापकरतेको देख कर उसी वखत उनको बंद

नहीं करता, उनका मन नहीं फेरता, उनके हाथ पग नहीं तोडना, इत्यादि करके पाप करनेसें पहलेही क्यों नही उनको बंद करता ? जेकर कहोगे पहले ईश्वरसें सामर्थ्य नही तो पीछे कहांसें आई ? और सदा अनंतशक्तिवाला क्यों कर सिद्ध होगा ?

नास्तिक और आस्तिकका संवाद.

तथा हे नास्तिक ! प्रलय कालमेंभी जीव पाप पुण्य करी संयुक्त होते है उस कालमें ईश्वर फल क्यों नहीं देता ? जेकर कहोंगे उस कालमें कर्मफल देनेसें उन्मुख हो जाते है तो ईश्वरकों फलदाता मानना निरर्थक है. फल देने न देने वालेतो कर्म हूए.

नास्तिक—कर्म तो जड है यह क्यों कर अपनें आप फल दे सक्ते है.

आस्तिक—जहरतो जड है यह क्यों कर अपने आप फल खाने वालेको मार देता है.

नास्तिक—ईश्वर जेकर फल न देवेतो ईश्वरमें जो अनंत सामर्थ्य है वो सृष्टि रचे विना क्यों सफल होगी?

आस्तिक—ईश्वरमें जो सृष्टि रचनेकी सामर्थ्य सृष्टि रचे विना सफल न होवे तो मनुष्यका अवतार धार कर स्त्रियोंसें भोग करना, परस्त्रियोंके कपडे चुराने, उनकों अपने सन्मुख नग्न खडी करना, स्त्री आगे नाचना, अपनी बेटिसें भोग करना, सतीयाके शील भ्रष्ट करने वास्ते भिखारीका रूप धारन करना, इत्यादिक अनेक कुकर्म करके पीछे निराकार निरंजन परमात्मा बन बयठना इत्यादिक जो ईश्वरमें सामर्थ्य है तो इन कामोंके कीये विना क्योंकर सफल होगी. जेकर कहोगे यह सामर्थ्य ईश्वरमें नही, तो हे नास्तिक ! सृष्टि रचनेकी सामर्थ्य कैसे होगी ? जेकर कहोगे ईश्वरमें अनंत शक्ति है इस वास्ते सृष्टि रच सक्ता

है, तो पूर्वोक्त काम करन कालमें क्या वो अनंत शक्ति नष्ट हे जाति है ?

नास्तिक–ईश्वर असंभवकाम नही करता. पूर्वोक्त का असंभव है. इस वास्ते ईश्वर नही करता.

आस्तिक—सृष्टिका रचनाभी असंभव है यह क्यों क करता है ?

नास्तिक–ईश्वरके कीये हुवे नियम जैसे अग्नि उष्ण, ज शीतल इत्यादि इनकों ईश्वरभी नही बदल सक्ता है, इस लि सर्व शक्तिमानका अर्थ इतनाही है कि परमात्मा, विना किसी सहायक सब कार्य पूर्ण कर सक्ता है.

आस्तिक–जब ईश्वरमें अपने करे हुवे नियमोंके बदलने सामर्थ्य नही तो वह नियम ईश्वरनें करे है यह क्योंकर सि होगा ?

नास्तिक–विना कर्ताके कोईभी क्रिया वा क्रियाजन्य पद नही बन सक्ता. जिन पृथ्वी आदि पदार्थोंमें संयोग विशे रचना दीखती है वे अनादि कभी नही हो सक्ते. इससें सृष्टि कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है.

आस्तिक–पृथ्वी आदि पदार्थोंकी जो रचना है उनका क पृथ्वीकायकादि जीव है, ईश्वर नही. यह रचना प्रवाहसें अन अनंत है, पर्यायकी अपेक्षासें सादिसांत है.

नास्तिक–संयोग कोईभी अनादि नही हो सक्ता है.

आस्तिक–हे नास्तिक ! तुमारे ईश्वरके अंशोके संयोगकी जो रचना है उसका कौन कर्त्ता है ?

नास्तिक– ईश्वरतो निरंश है. जेकर ईश्वरका अंश होवे तो उनके संयोगद्वारा ईश्वरकी रचनाका कर्त्ताभी कोई सिद्ध होवे.

आस्तिक–जेकर ईश्वर निरंश होवे तो घटपटादि सर्व पदा-
ोंमें व्यापकनही सिद्ध होगा, क्योंकिएक परमाणुमें ईश्वर सर्वात्मा
रके रहता है के एक अंश करके? जेकर सर्वात्माकरके रहता है
। एक परमाणु प्रमाण ईश्वर सिद्ध होगा, जेकर कहोगे एक अंश
रके रहता है तो सिद्ध हुवा ईश्वर अंशो वाला है, निरंश नही.

नास्तिक–ईश्वरके अंशोका संयोग अनादि है.

आस्तिक—पृथ्वी आदि पदार्थोंके संयोगकों अनादि कह-
को क्या लज्जा आती है?

नास्तिक—आदि सृष्टि मैथुनी नही होती.

आस्तिक—यह तुमारा कहना असंभव है. इसमें को-
भी प्रमाण नही.

नास्तिक—जो कोई पदार्थको देखता है तो दो तरेंका
ान होता है. एक जेसा वह पदार्थ है. दूसरा उसकी रचना देख-
र बनानें वालेका.

आस्तिक—इंद्र धनुष्य देखकर इंद्रधनुष्यका ज्ञान होता है
ह किसीने बनाया है ऐसा कीसीकोभी ज्ञान नही होता है.

नास्तिक—यह पृथ्वी परमेश्वरनें धारण करी हूई है.

आस्तिक— मूर्त्त पदार्थोको अमूर्त्त कभी धारण नही कर
क्ता, जेकर करता है तो आकाशमें पृथ्वीसें एक गज उंची ईंट
ख कर तो दिखावो.

नास्तिक—ऐसातो कोई मूर्त्त पदार्थ नही अधरमें मूर्त्त प-
ार्थकों धारण करे.

आस्तिक—तृणादि अनेक पदार्थोंकों धारन करता हुवा
ायु तुमकों नही दीखता जो ईश्वरके माथे उपर इतना भार देकर
अपना मजूर बनाते हो.

सत्यार्थप्रकाश पृष्ट ४३० में दयानंदने ऐसी गप्प मारी है

दयानंदकाकुतर्क. कि जैनी कहते है पृथ्वी नीचे नीचे चली जाती है. हम पूछते है जैनशास्त्रमें तो ऐसा लेख नही है. दयानंदनें कौनसें जैनशास्त्रमें देख कर यह लिखा है ? हमको आश्चर्य होता है कि दयानंदजी ऐसा निःकेवल जूठ लिख कर जूठ बोलने वालोमें अग्रणीकी पदवी लेते जिसने अपने वेदके अर्थ पूर्वाचार्योंके कीये हुवे छोड कर मनोकल्पना करके जूठे मन माने बना लीये है वो दूसरे मतके शास्त्रोका अर्थ क्यों न जूठा करेगा ? ऐसेही सत्यार्थप्रकाशमें और अनेक जूठ वातें लिखी है.

जैन मतकी बाबत जो दयानंदजीने जैनीयोंसें बहूत दुःखी होके जैन मतका कितनाक गबड सबड लिखके खंडन लिखा है तिसका कारण यह है. संवत १९३७ का चौमासा हमारा पंजाब देशके गूजरांवाले नगरमें था. तहां दयानंदजीका बनाया हुवा प्रथम सत्यार्थप्रकाश जब देखने में आया तब तिसमें दयानंदजीने सकपोलकल्पित बातोंसें जैन मतका खंडन लिखा देखा. तिसमें एक ऐसी बडी गप्प अनघड लिखीके चार्वाक आभाणकके बनाये श्लोक (लिखके लिख दिया के ये श्लोक) जैनोंके बनाये है. तिसकी बाबत पंजाब निवासी लाला ठाकुरदासनें पत्रद्वारा दयानंद सरस्वतीजीकों पूछाकि तुमनें अपनें सत्यार्थप्रकाशमें जो श्लोक जैनमतके लिखे है तिनका स्थान बतलाओ कौनसें जैन मतके शास्त्रके है. दयानंदजीनें सीवाय धमकियांके अन्य कुछभी उत्तर नही दिया. अनुमानसें दो वर्षतक पूर्वोक्त प्रश्नमें ठाकुरदाससें पत्र व्यवहार रहा. अंतमें ठाकुरदासनें मुंबई जाकर दयानंदजी योग्य मेसर्स स्मीथ ओर फिअर सोलिसिटर्सकी मार्फत नोटीस दिया. तिसका उत्तरभी संतोषकारक न मिला. तब ठाकुरदासनें दया-

नंदजीके साथ जो परस्पर पत्रव्यवहार हूआ था तिनमेंसें प्रथम पत्रोंको एकत्र करके दयानंदमुखचपेटिका नाम पुस्तकका प्रथम भाग छपवाके प्रसिद्ध करा. इत्यादि कारणोंसें दयानंद सरस्वतीजी नें बहुत खीज करके दूसरें सत्यार्थप्रकाशमें पूर्वोक्त श्लोकोकों ठिकाने लगाया परंतु कितनीक बाते स्वकपोलकल्पित करके जैन मतियोंको तिरस्कार करनेवाले वचनोंकी वर्षा करी है. तिनका उत्तर यहां हम लिखते है.

नवीन सत्यार्थप्रकाश पृष्ट ४०१ में जो दयानंदजी लिखता है कि आभाणक चार्वाकनें जो लिखा है वेदके कर्ता भांड धूर्त और निशाचरवत् पुरुषोंनें वनाये है यह जूठ है, ! हां भांड धूर्त निशाचरवत् महीधरादि टीकाकार हूए है, उनकी धूर्तता है वेदोकी नही. इसका उत्तर, दयानंदजीके लिखने मूजब तो जो आभाणक चार्वाकनें लिखा है कि धूर्तोंकी रचना, अति विभत्स कार्य करना कराना धूर्तके विना नहीं हो सक्ता १० और जो मांसका खाना लिखा है वह वेद भाग राक्षसका वनाया है ११ पृष्ट ४०१ में, यह कहना आभाणकका सत्य मालुम होता है. क्योंकि यजुर्वेदकी टीकामें वेदश्रुतियोंका वैसाही अर्थ महीधर आदिकोंनें करा है और जैसे वेदश्रुतियोंके अर्थ महीधर, उव्वट, रावण सायन, माधव आदिकोंने करे है तैसेंही आर्यावर्त्तके प्राचीन वैदिक मतवाले मानते चले आये है, तो फेर इस कथनमें आभाणकनें क्या जूठ लिख दिया है जिसको वांचके स्वामीजी कूदते और गभराते है. हां, दयानंदकी रची स्वकपोलकल्पित भाष्य जेकर आभाणक वांचता और सच्ची मानता तो ऐसा न लिखता; इस वास्ते वेदकी रक्षा करने वास्ते दयानंदजीके ईश्वरनें दयानंदजीको सत्य भाष्य वनाने वास्ते सर्व भाष्यकारोंमें पहिला जन्म न दिया यह दयानंदजीके ईश्वरकी भूल है. तथा दयानंदके ईश्वरनें अपने

बनाये वेदोंके जूटे अर्थ बनाते हूए लिखते हूए महीधर आदिकोंकी हस्तांगुलियों न स्तब्ध करी, जिव्हा आकर्षण न करी आदि सत्यानाश न करा यह दयानंदजीके ईश्वरकी असमर्थता वा अज्ञता सिद्ध होती है. तथा दयानंदजीनें महीधरादिकोंको वाममार्गी और कुकर्मी लिखे है परंतु हम तो ऐसा वचन नही लिख सक्ते है.

दयानंदजी लिखते है कि बमा शोक है कि जैनाचार्योंनें वेदकी संहिता नही पढी थी, जिससें वेदकी निंदा कर गये और करते है. उत्तर, जगवंत श्रीमहावीरके बडे शिष्य गौतम आदि इग्यारे गणधर सर्व विद्यायोंके पारगामी अग्निहोत्री व्राह्मण थे. तथा इनके शिवाय शय्यंजवजट्ट आदि सैंकमो जैनाचार्य चार वेदके पाठी थे. इस वास्ते वेदांको हिंसकशास्त्र जानकर, तिनको त्याग कर परमदयामय जैनधर्म अंगीकार करा. हां, दयानंदजीकी स्वकपोलकल्पित जाष्य हमारे आचार्योंनं नही पठन करी थी, न होनेसें. जो तिनके समयमें दयानंदजी वेदजाष्य बनाते तो छि छि तो करते. दयानंदजीकी जाष्य वांचकर मेरा निश्चय खूब दृढ हूआ कि इसीतरें स्वकपोलकल्पनासें आर्य वेदोंके नष्ट होनेसें ऐसे वेद हो गये है. बृहस्पति चार्वाकमतका आचार्य था, वोजी चार वेदका पाठी था, परंतु वेदरचनाकों अयौक्तिक जानके नास्तिक मत वेद श्रुतियोंसे निकाला मालुम पमता है, तिन श्रुतियोंमेंसें यह एक श्रुतिका नमुना है.

"विज्ञानघन एव एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येव अनु विनश्यति न प्रेतसंज्ञा अस्ति।"

अर्थ—विज्ञानघन आत्मा इन जूतोंमें उत्पन्न हो करके तिन जूतोंको कायाकारसें नाश होतांके साथही नाश हो जाता है इस वास्ते प्रेतसंज्ञा अर्थात् परलोक नामकी संज्ञा नही है.

बृहस्पति मतका आर्यसमाजका मतकी साथ कुछ सादृश्य-
ता मालुम होता है. बृहस्पति पांच भूत मानता है. और दया-
नंदजी पांच भूत मानता है: बृहस्पति मनुष्य तिर्यंच पशुकी
योनि शिवाय नरक और स्वर्गयोनि अर्थात् नारकी देवतायोंके रह-
नेका नरक स्वर्ग इस जगतके शिवाय कहीं नही मिलता है,
ऐसेही दयानंदजी मानता है: जैसे बृहस्पति सदामुक्त नही
मानता है. तैसें दयानंदजी सदामुक्त रहता नही मानता है: इ-
त्यादिक कितनीक वस्तुयोंके माननेसें चार्वाकका मत दयानंदका
सदृश मालुम पडता है.

और जो दयानंदजी चार्वाकमतको जैनमतका संबंधी लि-
खता है तथा जैन बौद्धमतको एक लिखता है तिनसें राजा शि-
वप्रसादके इतिहासतिमिरनाशककी गवाही लिखता. तिस वास्ते
हमने बाबु शिवप्रसादकी हस्ताक्षरकी पत्रिका मंगवाइ सो यहां
दर्ज करते है.

बाबु शिवप्रसादकी हस्ताक्षर पत्रिका.

श्री ए ससद जैन पंचायत गुजरांवालाके शिवप्रसादका
सलाम पहुंचे. कृपापत्र पर्चों सहित पहुंचा.

१ जैन और बौद्धमत एक नहीं है. सनातनसें भिन्न भिन्न
चले आये है. जर्मन देशके एक बडे विद्वानसें इसके प्रमाणमें
एक ग्रंथ छापा है.

२ चार्वाक और जैनसें कुछ संबंध नही. जैनको चार्वाक
कहना ऐसा है जैसा स्वामी दयानंदजी महाराजको मुसलमान
कहना.

३ इतिहासतिमिरनाशकका आशय स्वामीजीकी समझमें

नही आया. उसकी भूमिकाकी (१) नकल इसके साथ जाती है. उससे विदित होगाकि, संग्रह है, बहुत बात खंडनके लिये लिखी गई, मेरे निश्चयके अनुसार उसमें कुछभी नही है.

४ जो स्वामीजी जैनको इतिहासतिमिरनाशकके अनुसार मानते है तो वेदोंकोंभी उसके अनुसार क्यौं नही मानते.

बनारस १ जान्युआरी — आपका दास
सन १८७३ इ० — शिवप्रसाद.

इस राजा शिवप्रसादके लेखसें जो दयानंदजी जैन बौद्ध चार्वाक मतको एक कहता है सो महामिथ्या है. दयानंद सरस्वतीजीकी हुंडी कहींभी नहीं सिकरती है.

तथा दयानंदजी जगे जगे ऐसें लिखता है जैनीयोमें विद्या नही थी. तथा अन्यमतवालोंकोंभी ऐसेही लिखता है. यह लिखना ऐसा है जैसा मारवाडमें पद्मिनी स्त्रीका होना. जैसे मारवाड में एक काली, कुदर्शनी, दंतुरा, चिपटी नासिका, विरूप रूप वाली, एक स्त्रीकों किसीने पुछा कि तुमारे गाममें पद्मिनी स्त्री सुनते है तिसको तुं जानती है ? तब वो दीर्घ उच्छ्वास लेके कहती है कि मेरे सिवाय अन्य पद्मिनी स्त्री कोई नही, मुजको बहुत शोक है कि मेरे समान कोई पद्मिनी न हूई न होगी. मेरे मरण पीछे जगतमें पद्मिनी स्त्री व्यवच्छेद हो जावेगी. भला, यह बात कोई सुज्ञ जन मान लेवेगा कि जैनमतमें वा अन्य मतमें कोईभी विद्वान नही हूया है ?

सप्तभंगीमें दयानंदका कुतर्क.

दयानंदजी सत्यार्थप्रकाश पृष्ट ४१७ में लिखता है, बौद्ध और जैनी लोग सप्तभंगी और स्याद्वाद मानते है. यह लिख लि-

केवल जूठ है बौद्ध लोगतो सप्तभंगी स्याद्वादके शत्रु है. वांचक वृंद ! तुमने कभी जैन मतके सिवाय अन्य मतमें स्याद्वाद सप्त भंगी सुनी है ! तत्वलोकालंकार, स्याद्वादरत्नाकर, अनेकांतजयपताका आदि जैन मतके शास्त्रोमें पूर्वपक्षमें बौद्ध लोकोंनें जैनके शत्रु होके बहुत जैनमय स्याद्वाद सप्तभंगीका खंडन लिखा है. अब दयानंद लिखता है बौद्ध लोग स्याद्वाद सप्तभंगी मानता है यह केवल दयानंदका जैनमतानभिज्ञता और विवेकविकलता सिद्ध करता है. स्याद्वाद इस पदका यथार्थ अर्थ जैनीयोंके शिष्य बने विना अन्य प्रकारसें नहीं आवेगा. गोविंद, कुमारीलभट्ट उदयनकी तरें जैनीयोंके शिष्य बनके शिखे तो कदाचित् आ भी जावे.

आगे भी व्यासजीनें ब्रह्मसूत्रमें "नैकस्मिन्नसंभवात्" इस सूत्रमें सप्तभंगीका खंडन करा है. इस सूत्रकी शारीरिक भाष्यमें शंकराचार्यनें सप्तभंगीका खंडन लिखा है. पीछे सायन, माधव, विद्यारण्यनेंभी सप्तभंगीका खंडन लिखा है: सप्तभंगी जिसतरें जैन मानते है और जैसा खंडन व्यास शंकरने करा है और व्यास शंकरके खंडनका खंडन द्वितीय खंडमें लिखेंगे तहांसें जान लेना. जब व्यास और शंकर, सायन, माधव जैसेकोंभी सप्तभंगीकी समज यथार्थ नही पडी तो दयानंदको क्या खबर पडे.

पृष्ठ ४११ में लिखता है, सप्तभंगी अन्योन्य अभावमें समातकती है, यह लेखभी अज्ञानताका है क्योंकि जब सप्तभंगीका स्वरूपही दयानंदकी समजमें नही आया तो आगे लिखना सब मिथ्या है.

काल संख्या मानने में दयानंदजीका जूठ.

आगे दयानंद पृष्ट ४७० में जैनी जिसतरें कालकी संख्या मानते है सो लिखता है. हां, हमारे सदागममें जो कालका स्वरूप लिखा है सो हम सर्व सत्य मानते है क्योंकि जब हमनें जगत अनादि सिद्ध कर दया है तो इस जगतमें अनंत कालका वर्तना संभव हो सक्ता है. ओर जो दयानंद अपने अनुयायी गणितविद्यावालोकों पूछता है तुम जैनके कालकी संख्या कर सक्ते हो या ईस संख्याको सत्य मान सक्ते हो? ऐसा लिखके पीछे हमारे तीर्थंकरोका उपहास्य करा है तिसका उत्तर—तुमसें पूछते है तुम समुद्रके पानीके, खसखससेंभी बहूत सूक्ष्म जलबिंदुयोकी गिनती करके बता सक्ते हो? नही. तथा इस सृष्टिसें अनंत काल पहिलां जो दयानंदके ईश्वरनें सृष्टि रचीथी उसके वर्ष कह सक्ते हो? नही. जैनमतमें तो इतने अंकतक गणितविधि है— ७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२११०७९६५४०८००१०८३२९६ की उपर एकसो चालीश शून्य.

दयानंद पृष्ट ४७१ में लिखता है जैनीयोका एक योजन दश सहस्र कोशका होता है. यह दयानंदका लिखना जूठ है. क्योंकि दश सहस्र कोशका योजन हमारे किसीं शास्त्रमें नही है. हमारे शास्त्रमें तो किसी कालांतरमें प्रथम ओर आदिसें ओर किसी द्वीपमें ओर किसी समुद्रमें ऐसी जातकी वनस्पती कमलनालादिकको उत्सेधांगुलके योजनसे अर्थात प्रमाणांगुल, आत्मांगुल, उत्सेधांगुलमें हजार योजनकी अवगाहना होती है ओर किसीक कालमें ओर किसीक द्वीप समुद्रादिमें ऐसे द्वींद्रिय जीव होते है की जिनकी अवगाहना पूर्वोक्त बारा योजनकी होती है ओर त्रीन्द्रिय जीवकी तीन कोस ओर चतुरिंद्रिय जीवकी चार कोसकी पूर्वोक्त उत्सेध कोसमें अवगाहना होती है. दयानंद ओर दयानन्दके अनुयायीयोनें सब देशका स्वरूप ओर सर्व द्वीप स-

मुद्द होते नही है तो फेर उनके न माननेसे न देखनेसें कदापि पूर्वोक्त कहना जूठ नही हो सक्ता है: जैसे एक गीदड़ अर्थात् शियालने जन्म लीना तिस वखत थोडासा मेघ वर्षा तब गीदड़ कहता है ऐसे भारी मेघके समान कधु जगतमें मेघ नही वर्षा है. क्या तिस गीदडके कहनेसें सर्वत्र महामेघोका अभाव हो जावेगा? ऐसेही दयानंद और दयानंदीयोंके न देखनेसें पूर्वोक्त वस्तुयोंका अभाव नही होता है. और जो दयानंद लिखता है कि जैनी बार योजनकी जूं मानते है, यह निःकेवल जूठ है ऐसा जूठा कथन जैनमतमें कही नही है.

जीव और कर्मकी बाबतमें दयानंदका आक्षेप,

इसके आगे पृष्ठ ४३२ सें पृष्ठ ४३६ तक जीव कर्मकी बाबत लिखी है तिस सबका उत्तर अगले परिच्छेदमें लिखेंगे. और पृष्ठ ४३५ सें लेकर ४४० पृष्ठ तक जो षष्टिशतकके श्लोक लिख-के अर्थ करा है वे सर्व स्वकपोलकल्पनासें मिथ्या लिखा है. क्योंकि श्लोकाक्षरोंसें वैसा अर्थ नही निकलता है. जिसने वेदोंका अ-र्थ फिरादिया वो जैनमतके श्लोकोंके जूठे अर्थ क्यों न लिखे!

और दयानंदने ४४३ पृष्ठसें पृष्ठ ४५३ तक जूठी जैनमतकी निंदा लिखी है सो मिथ्यात्व सिद्ध करता है. क्योंकि जैन मतमें ऐसा कहीं नही लिखा है कि वेश्यागमन परस्त्रीगमन करनेसें स्व-र्ग मोक्षमें जाता है. दयानंद लिखता है श्रावक साधु तीर्थंकर वे-श्यागामी थे यह लेख लिखनेवालेकी महाज्ञानता. और मिथ्यात्व प्रसिद्ध करता है. जैनमतमें ऐसा कथन तो नहीं है परंतु दयानंदने वीतराग निर्विकार। [illegible] [illegible] दुष्टिता [illegible]

[illegible]

जीव त्रिपृष्ट वासुदेव हूआ तिसकोभी नरकमें गया लिखा है और श्रेणिक, सत्यकि, कोणिक ये महावीरके भक्त थे, परंतु जीवहत्या, घोर संग्राम करनेसें और महा विषय भोग करनेसें जन्मांत तकभी राज्य नही त्यागा इस वास्ते नरक गये है ऐसा कोइ सत्यवादी विना कह सक्ता है? तथा नव बलदेव अचल १ विजय २ भद्र ३ सुभद्र ४ सुदर्शन ५ आनंद ६ नंदन ७ रामचंद्र ८ बलभद्र ९ इनमेंसें प्रथम आठ मुक्ति गये है और बलभद्रजी पांचमें ब्रह्मदेवलोकमें गये है इनोंने अपने अपने भाई वासुदेवोंके मरणे पीछे सर्व राज्यभोग विषय त्यागके संयम महाव्रत अंगीकार करे इस वास्ते मोक्ष और स्वर्गमें गये. इनोनें कुछ जैन तीर्थंकरोकों घूस अर्थात् लांच कोड नही दीनी थी कि तुमने हमकों मोक्ष स्वर्गमें गये कहना. और वासुदेव ९, प्रतिवासुदेव ९, इनोनें राज्य भोग विषय नही त्यागा, महाघोर संग्रामोमें लाखो जीवोंका वध करा इस वास्ते नरक गये है. हां यह सत्य है. और हमभी कहते है कि जो राज्य भोग विषयरक्त, घोर संग्राम करेगा, मरणांत तकभी पूर्वोक्त पाप न छोडेगा तो नरकमें जायगा. और जो कृष्ण महाराजकी बाबत लिखा है कि जैनीयोनें कृष्णकों नरक गया लिखा है सो सत्य है क्योंकि जैन मतमें कृष्ण वासुदेव हूआ है तिसको हूए ८६०४१२ वर्ष आज तक हूए है वो कृष्ण अरिष्टनेमि २२ में अर्हंतका भक्त था, उसनें भविष्य कालमें बारवा अमम नामा अर्हंत होनेका पुण्य उपार्जन करा परंतु राज्य भोग संग्राम विषयासक्त होनेसें मरके नरकमें गया. तहांसें निकलके बारवा अवतार अमम नामा अरिहंत होवेगा. ऐसा लेख जैन मतके शास्त्रमें है. परंतु जिस कृष्ण वासुदेवकों हूए है और कृष्णकों लोक ईश्वरावतार मानते है उस कृष्ण वासुदेवका कथन जैनमतमें किंचिन्मात्रभी नही है. और न उस कृष्णकों जैनमतमें नरक

गया लिखा है तो फिर दयानंद काहेकों जूठा वाद करता है. दयानंदका यह लेख लोगोंका ठगने वाला है क्योंकि इस लेखकों देखके कृष्णके मानने वाले लोक जैनीयोंसें विरोध करेंगे. परंतु दयानंदने जैसी कृष्णादि अवतारोंकी निंदा करी है तैसि किसी नेभी नही करी है. क्योंकि जिसनें कृष्णादि अवतारोंके रचे पुराण उपपुराण गीता भारत भागवत सर्व १८ स्मृतियां आश्वलायनादि सूत्र ऐतरेय तैत्तरेय शतपथ सांख्य गोपथ वेदाके ब्राह्मणाकों वेदकी उपनिषदाकों ऐतरेय आरण्यक तैत्तरेय आरण्यक पूर्वकालीन भाष्य टीका दीपिकाकों इत्यादि सर्व ग्रंथाकों मिथ्या ठहराये है, जब ये ग्रंथ मिथ्या है तो इनके बनाने वाले श्रीकृष्णादी मृषावादी अज्ञानी और पापी ठहरे तथा सर्व देवोंकी मूर्तियोंकी निंदा करी तब सर्व देवोंकी निंदा हो चुकी. इत्यादि इसी सत्यार्थप्रकाशमें देख लेना.

दयानंदका अमूर्त्तिवाद.

पृष्ट ४१-४२ में दयानंदजीनें नीचे छपा हुवा चित्र दीया है.

इसमेंसें पहिला चित्र वेदीकी स्थापनाका है, दूसरा प्रोक्षणपात्रीका है, तीसरा प्रणीतापात्रका है, चौथा आज्यस्थालीका है और पांचवा चमसाका है. अब इसके संबंधमें मेरा कहनेका आशय यह है कि दयानंदजी अपने शिष्योंको समाजनें वास्ते ऐसा चित्र दिखलाते है अथात् आकृति (मूर्ति) का स्वीकार करता है और बाह्यनें मूर्तिका निषेध करना है यह कैसा न्याय ! भला. यह तुच्छ मात्र आहुतिका पात्र बिना स्थापनाके समझाय नहीं सक्ता है तो जो महात्मा अवतार सत्यशास्त्रके उपदेशक

हो गये है तिनकी प्रतिमा विना तिनके स्वरूपका कैसे ज्ञान हो सके ? इस वासते सत्यशास्त्रोंके उपदेशककी प्रतिमा माननी ओर पूजनी चाहिये. ओर तिनके स्वरूपका ध्यानजी तिस मूर्ति द्वाराही हो सकता है.

पूर्वपक्ष–जेकर इश्वर सर्वज्ञ देहधारी कोइ हूआ होवे तो तो तुमारा कहना सत्य होवे, परंतु देहधारी सर्वज्ञ ईश्वर हूआही नही है.

उत्तरपक्ष—यह कहना समीचीन नही है. क्योंकि वेद, वेदांत, न्याय, जैन आदि सर्व शास्त्र देहधारीकों सर्वज्ञ होना कहते है, ओर युक्ति प्रमाणसें संमति, द्वादशसार नयचक्र, तत्वालोकालंकार सूत्रमें देहधारीकों सर्वज्ञ ईश्वर होना सिद्ध करा है, इस वास्ते प्रतिमा मानना उचित है. जेकर देहधारी सर्वज्ञ नही मानता तो वेद किसनें बनाये है. ?

उत्तर—सर्वव्यापक सर्वज्ञ ईश्वरनें.

प्रश्न—क्या ईश्वरनें मुखसें वेद उचारे है? नही तो क्या नासिकासें उचारे है ? नही तो क्या कर्णद्वारा उचारे है ?

उत्तर—नही क्योंकि मेरे ईश्वरके मुख, कर्ण नासिका है नही शरीरजी नही है.

प्रश्न—जब ईश्वरके पूर्वोक्त वस्तुयो नही है तो वेद कहांसें उत्पन्न हूआ है.

पूर्वपक्ष—ईश्वरनें अग्नि, वायु, सूर्य, अंगिरस नामक ऋषियोंके मुखद्वारा उचारण करवाये है.

उत्तरपक्ष—यह कहना जूठ है, अप्रमाणिक होनेसें. क्योंकि जिसके मुख नाक कान शरीरादिक न होवेंगे वो दूसरायोंको कैसे प्रेरणा कर सक्ता है ? जेकर कहोके ईश्वरनें अपने मनसें

प्रेरणा करी तो ईश्वरके मन नही है, शरीरके अभावसें. क्योंकि मनका संबंध शरीरके साथ है.

पूर्वपक्ष—ईश्वरनें अपनी इच्छासें प्रेरणा करी है.

उत्तरपक्ष—शरीर और मनके विना इच्छा कदापि सिद्ध नही होती है. जेकर कहोगे ईश्वरनें अपनी शक्तिद्वारा प्रेरणा करी तो ये शक्ति किस द्वारा प्रवृत्त हुइ? प्रथम तो शक्ति ईश्वरसें अभेद है. जब ईश्वरमें हलचल होवेगी तब शक्तिभी हल चलके प्रेरणा करेगी. ईश्वर तो जैसे आकाश है तैसे सर्वव्यापी मानते है, तो फेर ईश्वरमें हलने चलनेकी शक्ति कुछ भी नही है, और सर्वव्यापी होनेसें हलनेचलने वास्ते कोइ भी अवकाश नही है. इस वास्ते तेरा ईश्वर अकिंचित्कर है. आकाशवत्. जेकर कहे आकाश तो जड है और ईश्वर ज्ञानवान् है तो फिर आकाशका दृष्टांत कैसें मील शक्ता है? उत्तर—ज्ञानतो प्रकाशरूप है परंतु ज्ञान हलचल नहि सक्ता है इस वास्ते आकाशका दृष्टांत यथार्थ है.

इसी मुजब दयानंदने जो ईश्वर बाबत लेख लिखा है वे प्रमाण रहित है. ऐसा ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नही होता है तब वेद अल्पज्ञो के बनाये सिद्ध हुए. अल्पज्ञानी [illegible] बाबत आप्तागमक लिखता है कि.

ईश्वर विना वेद कैसे रचा गया!

वेद धूर्त अल्प शक्तोंके बनाये हुए है यथा — आगे [illegible]-कता कहनाही नष्ट होवे इतना तो उनकेभी मालूम होता है कि वेद बनाने वाले निर्दय, मांसाहारी और कामी थे. और मोक्षमूलर नामा पंडित तो ऐसा कहता है कि वेद ऐसा पुस्तक है कि मानो अज्ञानीयोके मुखसें अकस्मात् वचन निकला होवे ऐसा है. अब वेद ईश्वरका कथन क्या नहि तब किससें मानने [illegible]

सरीखे तिनकाभी नाश कर देवेतो क्या आश्चर्य है ! इस वास्ते देह सिद्ध भगवान् कदापि उपदेष्टा सिद्ध नही हो सकता है. इस वास्ते दयानंदनें जो कल्पना करी है कि ईश्वरने प्रेरणा कराके चार वेद उत्पन्न करे सो मिथ्या है, तथा तिन ऋषियोंके कहनेसे लोक क्योंकर सत्य माने? और जानेंके ऋषीओंको ईश्वर प्रेरता है! जेकर कहोंगे के ईश्वर उनको कह देता था कि मैनें इन ऋषीओं- सें वेद कथन करवाये है इस वास्ते तुम सत्य मानो तो ईश्वर हमको क्यों नही कहता है. क्या वे ईश्वरके सगे संबंधी थे और हम नहि है.

प्रथम तो ईश्वरको मुख, नाक, कान इत्यादि नहि है तो उनकों कहना क्योंकर बन शक्ता है ? इस वास्ते ईश्वरने कोईभी प्रेरणा नही करी है. सत्यतो यह है कि याज्ञवल्क्य, सुलसा पिप्पलाद और पर्वत प्रमुखोनें हिंसक वेद रचे है. इनको अपनी कल्पनामें अथ चाहो किहीके रचे कहो. इस वास्ते देहधारी सर्व- ज्ञही सत् शास्त्रोंका उपदेष्टा मानना सत्य है, और तिसकी प्रति- माकी पूजनी सत्य है इस वास्ते दयानंद जो प्रतिमा पूजनकी निंदा करता है सो महापाप उपार्जन करता है.

दयानंद जो अंग्रेजी भूगोल, खगोलको सत्य मानके असंख्य द्वीप समुद्रका होना और सूर्य, चंद्रका चलना नही मानता है और भूगोल खगोलकी बातोंमें जैनशास्त्रका कहना उत्थापन करता है वो समीचीन है ? कभीभी नहि क्योंकि दूसरे सर्व शास्त्रोंमें द्वीप समुद्रोंका होना और सूर्य, चंद्रका फिरना बताया है तो फिर जैन और सर्व मतके शास्त्रोंसें अंग्रेजी भूगोलके साथ नहि मिलनेसें झूठा ठहराना यो बना अप्रमाणिक है. क्योंकि भूगोलविद्या अस्थिर है. आज इस तरह है तो फिर काल अंतर इत्यादि वस्तु देखनेमें आया सो अन्य तरहकी होवेगी. अतः

खसें सर्व वस्तु नहि देखी जाती है तैसें नूगोलविद्यावाले उत्तर दक्षिण दिशाका कुछ अंत नहि लाये है. कालके प्रनावसें समुइकी जगे स्थल होता है और स्थलकी जगे समुइ होता है, पहाम, नदीयां, शेहेरादि सब उलटपालट हो जाता है. श्री ऋषन्न देवके समयसें लेकर आज तक असंख्य वस्तु उलटपालट हो गई है. और जैनशास्त्रका कथन तो जैसा प्रथम आरेमें था. वैसाही आज तक चला आता है. तो फिर पांचमें आरेमें तैसा द्वीप, समुइकी व्यवस्था कैसें देखाय. ? बहुत नरतखंम समुइ जलने रोक लीया है इस वास्ते आंखोसें बराबर नही देखा सक्ता है.

दयानंद उसके ग्रंथमें लिखता है के व्यासजी और शुकदेवजी पातालमें गये सो दयानदकें ग्रंथके पृष्ठ ४४५ के लेखसे तो पाताल है नहि तो पातालमें कैसे गये? अमेरिकाको पाताल ठहराया सो कौनसी वेदकी श्रुतिमें अमेरीकाको पाताल लिखा है? तथा दयानंद अपने बनाये वेदनाष्य नूमिका नामके ग्रंथमें वेदकी श्रुतियोसें पृथ्वीका न्रमणा, सूर्यका स्थिर रहना, तारसें खबर देना, अगनसें आगबोटका चलाना लिखता है यह लिखना न्नारी असमंजस और मिथ्या है, क्योंकि वेद नाष्यकारोनें ऐसा श्रुतियोंका अर्थ किसीनी जगे नहि लिखा है.

फिर दयानंद जो तीर्थंकरोकी आयु, अवगाहना और अंतर देखकर जैन शास्त्रकों जूग मानता है वो बमा अज्ञानताका कारण है. क्योंकि कालका ऐसा प्रमाण नहि है असुकसमयसें काल प्रचलित हुआ और अमुक समयसें कालका अंत आवेगा क्योंकि काल अनादि अनंत इव्य (पदार्थ) है. कोइ किसी कालमें मनुष्यकी आयु, अवगाहना विशेष होवे और कोइ किसी कालमें

आयु, अवगाहना अल्प होवे उसमें क्या आश्चर्य है. प्रोफेसर थी-ओडोर कुक अपने बनाये भूस्तर विद्याका ग्रंथमें लिखता है कि पूर्व कालमें उडते गीरोली जातके प्राणी ऐसे वडेथे कि उसके पांख २७ फिट लंबीथी, जब ऐसे वडे विद्वान् गीरोली जैसा नाना प्राणीका ऐसा वडा पूर्व कालमें था ऐसा सिद्ध करता है तो फिर पूर्व कालमें वो समयमें मनुष्यकी वडी आयुष्य ओर अवगाहना माननी उसमें क्या आश्चर्य है. बहुते पुराणा शोधसें पूर्व कालके मनुष्यकी आयु, अवगाहना जास्ती सिद्ध होती है. इस वास्ते दयानंदका अटकलके अनुमान सब जूठे है.

उपसंहार.

हम सब सुज्ञजनोसें नम्रतापूर्वक यह विनंति करते है कि एक वार जीसने धर्म पीछानना होवे सो जैनमतके शास्त्र पढे वा सुने तो उसको सर्व मालुम हो जावेगा. जैनमतका शास्त्र और तत्वबोध अच्छीतरे जाने सुने विना मतमें संकल्प विकल्प करके कोइ कीसी वातको अपनी समज मुजब सच्ची और जूठी माननी वो अज्ञानताका एक चिन्ह है.

॥ इति श्री तपगच्छीये मुनिश्री मणिविजयगणि शिष्य श्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य आत्माराम आनंदविजयविरचिते अज्ञानतिमिर भास्करे प्रथमखंडः संपूर्णः ॥ १ ॥

॥ श्री ॥

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

अज्ञानतिमिरभास्कर.

द्वितीयः खण्डः

प्रवेशिका

प्रथम जैनमतकी उत्पत्ति लिखते है.

यह संसार द्रव्यार्थिक नयके मतमें अनादि अनंत सदा शा-
स्वता है, और पर्यायार्थिक नयके मतसें समय समयमें उत्पत्ति
और विनाशवान है, इस संसारमें अनादिसें दो दो प्रकारका काल
वर्त्तते है, एक अवसर्पिणी काल अर्थात् दिन दीन प्रति आयु
बल, अवगाहना प्रमुख सर्व वस्तु जिनमें घटती जाती है, और
दुसरा उत्सर्पिणीकाल, जीसमें सर्व अच्छी वस्तुकी वृद्धि होती
जाती है. इन पूर्वोक्त दोनु कालोंमें अर्थात् अवसर्पिणी-उत्सर्पि-
णीमें कालके छ छ विभाग है. अवसर्पिणीका प्रथम सुषम
सुषम, २ सुषम, ३ सुषम दुषम, ४ दुषम सुषम, ५ दुषम, ६
दुषम दुषम है. उत्सर्पिणीमें छहो विभाग उलट जान लेने. जब
अवसर्पिणी काल पूरा होता है तब उत्सर्पिणी काल शरू होता
है. इसतरे अनादि अनंत कालकी प्रवृत्ति है; और हरेक अव-
सर्पिणी-उत्सर्पिणीके तीसरे चौथे ओर अर्थात् कालविभागमें
चौवीस अर्हंत तीर्थंकर अर्थात् सच्चे धर्मके कथन करनेवाले उत्प-
न्न होता है, जो जीव वीश धर्मके कृत्य करता है सो भवांतरोंमें
तीर्थंकर होता है. वे वीश कृत्य यह है.

अरिहंत १ सिद्ध २ प्रवचन अर्थात् श्रुतज्ञान वा संघ ३ गुरु

धर्मोपदेशक ४ स्थविर ५ बहुश्रुत ६ अनशनादि विचित्र तप करनेवाला तपस्वी अथवा सामान्य साधु ७ इन सातोंकी वत्सलता करे अर्थात् इनके साथ अनुराग करे, यथावस्थित गुणकीर्तन करे तथा यथायोग्य पूजा नक्ति करे सो तीर्थंकरपद उपार्जन करे इन पूर्वोक्त अर्हंतादि सात पदका वारंवार ज्ञानोपयोग करे तो ८ दर्शन सम्यक्ता ए ज्ञानादि विषय विनय १० इन दोनोंमे अतिचार न लगावे, अवश्यमेव करने योग्य संयम व्यापारमें अतिचार न लगावे, ११ मूलगुण उत्तरगुणमे अतिचार न लगावे १२ क्षण लवादिमें संवेग नावना और ध्यानकी सेवना करे १३ तप करे और साधुओंको उचित दान देवे १४ दश प्रकारकी वैयावृत करे १५ गुरु आदिकोके कार्य करणद्वारा गुरु आदिकोंके चित्तको समाधि उपजावे १६ अपूर्वज्ञान ग्रहण करे १७ श्रुतनक्ति प्रवचनमें प्रनावना करे १८ श्रुतका बहु मान करके १ए यथाशक्ति मार्गकी देशनादि करके प्रवचनकी प्रनावना करे २०.

इनमेंसे एक दो उत्कृष्ट पदें वीश पदके सेवनेंसें तीर्थंकर गोत्र बांधे, यह कथन श्रीज्ञाताजी सूत्रमें है.

जो तीर्थंकर होता है सो निर्वाण अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो जाता है, फेर संसारमें नही आता है; और चला जायगा जगतवासी जीव जैसे जैसे शुनाशुन कर्म करते है तैसा तैसा शुनाशुन फल अपने अपने निमित्तके योगसें नोगते रहते है तिस निमित्तहीकों अज्ञलोक ईश्वर फलदाता कल्पन करते है, और सगुण निर्गुण, एक अनेक, रूपसें कथन करके अनेक ग्रंथ लिख गये है, परंतु निरंजन, ज्योतिस्वरूप, सच्चिदानंद, वीतराग परमेश्वर किसी युक्ति प्रमाणसेंनी जगतका कर्ता, हर्ता, फलदाता, सिद्ध नहि होता है, यह कथन जैनतत्वादर्शमें अच्छी तरंसें लिखा है.

पक्षपात छोडके विचारेगा तो यथार्थ मालुम हो जायगा, परंतु जो वेद विगेरे शास्त्रोका हठ करेगा तिसकों सत्यमार्ग कदापि प्राप्त न होवेगा क्योंकि वेद विगेरे बहुत शास्त्र जो हालमें प्रचलित है वे सर्व युक्ति प्रमाणसें बाधित है, इनका स्वरूप प्रथम खंडमें किंचित् मात्र लिख आये है, और अन्य लोगोंको जो असत् शास्त्रका आग्रह है सो जैनमतके न जाननेंसें है; क्योंकि हिंदुस्तानी, करानी, मुसलमान विगेरे सर्व लोक अंग्रेजी, फारसी प्रमुख अनेक तरेंकि विद्या पढते है, परंतु जैनमतके शास्त्र किसी मतवालेनें नहि पढे है. वेद, पुराण, कुरान प्रमुखके पढे हुये अंग्रेज बहुत है परंतु जैनमतके शास्त्रका पढा हुवा कोई अंग्रेज नहि है; इसका कारण तो लोक एसा कहते है कि जैनि लोक अपने शास्त्र अन्यमतवालोंकों नहि देते है, यह बाततो सत्य है, परंतु वह समय तो अब नहि रहा क्यों कि हजारों ग्रंथ जैनमतके अन्यमतवालोंके पास पहुंच गये हे. परंतु जैनमतके न फैलनेका कारण यह है–

जैनग्रंथ न फैलनेकाकारण.

मुसलमानोंके राजमें जैनके लाखों पुस्तको जला दिये गये है, और जो कुछ शास्त्र बच रहे है वे भंडारोमें बंद कर छोडे है वे पडे पडे गल गये है, बाकी दोसो तीनसो वर्षमें तमाम गल जायगे. जैसे जैनलोक अन्य कामोमें लाखो रुपईये खरचते है तैसे जीर्ण पुस्तकोको उद्धार करानेमें किंचित् नहि खरचता है, और न कोई जैनशाला बनाकें अपने लडकोंकों संस्कृत धर्मशास्त्र पढाता है, और जैनी साधुभी प्राये विद्या नहि पढते है क्योंकि उनकों खानेकातो ताजा माल मिलते है वे पढके क्या करे. और कितनेक यति लोक इंद्रियोंका भोगमें पड रहे है सो विद्या क्योंकर पढे. विद्याके न पढनेंमें तों लोक इनकों नास्तिक कहते [illegible]

लज्जा नहि आती है, जैनलोक चूरमेके लाडू और दुधपाकादिकके खाने वास्ते तो हजारो एकठे हो जाते है, परंतु पुस्तकोंके उद्धार वास्ते सूने पडे है; हमारे लिखनेका प्रयोजनतो इतनाही है कि जैनलोगोंकों उचित है कि सर्व देशवाले मिलके पाटन, जेसलमेर, खंभात प्रमुखके भंडार पुस्तकोंका जीर्णोद्धार करावें, और बडे बडे शहरोंमें जैनशाला बनाकें अपने लडकोंका संस्कृतादि विद्या पढावे, और आगम विना अन्य योग्य ग्रंथ लिखावादि करके प्रसिद्ध करें, जीसमें फेर जैनधर्मकी वृद्धि होवे; तथा जैनमतके शास्त्रोके संकेत अन्यमतवालोंकी समजमें नहि आती है, सो तो जैनीयोसें पुछ लेनें चाहिये. यह जैनमत बहुत उत्तम है इसकी उत्पत्ति इस अवसर्पिणी कालमें जैनमतानुसार जैसे हुइ है तैसे लिखी जाती है.

जैनोका पूर्व इतिहास.

इस अवसर्पिणी कालके तीसरे आरेके अंतमें जब सात कुलकरोंमेंसे छ व्यतीत हो गये तब नाभि कुलकरकी मरुदेवा भार्याकी कूखसें श्रीऋषभदेव उत्पन्न हुवे, श्रीऋषभदेवसें पहिलां इस भरतखंडमें इस अवसर्पिणी कालमें किसी मतका और संसारिक विद्याका कोइभी पुस्तक नहि था, क्योंकि श्रीऋषभदेवसें पहिलां ग्राम नगरादि नहि थे, इस समयके मनुष्य वनवासी और कल्पवृक्षोंके फलोंका आहार करते थे, इस जगतमें जो व्यवहार प्रजाके हितकारी है वे सर्व श्रीऋषभदेवजीनेही प्रवर्ताये है इसका खुलासा जैनतत्त्वादर्शमें लिख दिया है तथा जीसतरें श्रीऋषभदेवके पुत्र भरतनें चार आर्य वेद बनाये तथा जीस तरें ब्राह्मणनें बनाये, इत्यादि जिसका सर्व स्वरूप जैनतत्त्वादर्शमें लिख आये है. फेर कुतर्कके लिखनेसें सबसें पहिला

कुलकर ऋषभदेव हुआ है तिनके चलाये व्यवहारकी कितनीक वातों लेकर और कितनीक मनकल्पित वातों एकठी करके भृगुजीने मनुस्मृति बनाई है, मनुस्मृति बनायका बहुत काल नहि हुआ है; इसका प्रमाण प्रथम खंडमें लिख आये है. श्रीऋषभदेवहीकोही लोक आदीश्वर, परमेश्वर, ब्रह्मादि नामोंसे पुकारते है. क्योंकि भरतके बनाये चारों आर्य वेदोंमें श्रीऋषभदेवकीही अनेक नामोंसे स्तुति थी, सो जब चारों आर्यवेद और जैनधर्म नवमें सुविधिनाथ पुष्पदंत अर्हतके निर्वाण पीछे व्यवच्छेद हो गये तब ब्राह्मणभी मिथ्यादृष्टि हो गये, तब तिन ब्राह्मणाभासोंने अनेक मनमानीयां श्रुतियां रच लीनी. पीछे व्यास, याज्ञवल्क्यादिकोंने ऋग्, यजुः, साम, अथर्व नामा चार, वेद बनाये, और ऋषभदेवकी जगे एक ईश्वर कल्पन करा, तीनकी अनेक रूपसें कल्पना करी. और इन वेदोंमें अनेक ऋषियोंकी बनाई श्रुतियां है, और वेद अनेकवार उलट पुलट करके रचे गये है, जिसने जो चाहा सो लिख दिया. पीछे महाकालासुरनें ब्राह्मणका रूप करके शाण्डिल्य नामसें प्रसिद्ध ऋषि होके सगर राजाको नरक पहुंचाने वास्ते शुक्तिमती नगरीके क्षीरकदंबक उपाध्यायके पुत्र पर्वतसें मिलके महा हिंसक वेद मंत्र बनाये, ये वेद आज कालमें चल रहे है. इनका पुरा स्वरूप जैन तत्वादर्शसे जान लेना तेवीसमें श्रीपार्श्वनाथ अर्हत हूये तिनके पीछे मौद्गलायन और सारीपुत्र और आनंदश्रावक हुआ, यह आनंद श्रावक जो उपासकदशांग शास्त्रमें कहा है सो नहि. इन्होंने बौद्धमतकी वृद्धि करी यह कथन श्री आचारांगकी वृत्तिमें है अंग्रेजोंने सांचीके स्तूपको खुदवाया तिसमेंसे मौद्गलायन और सारीपुत्रकी हड्डीयां निकली है [illegible]

[illegible]

देवजीने इस अवसर्पिणीमें प्रथम जैनमत-प्रवृत्त-करा और अंतके तीर्थंकर श्रीमहावीर हुये. श्रीमहावीरके गौतमादि १४००० चौदे हजार शिष्य हुये.

श्रीमहावीर भगवंतका उपदेश सुनके गौतमादि ११ इग्यारें गणधरोंने द्वादशांग शास्त्र रचे, तिनमें प्रथम श्रीआचारांग रचा, तिसके पचीस अध्ययनहै तिनमेंसे प्रथम श्रुतस्कंधके नव अध्ययनोमें जीवास्तित्व १ कषायजीतना २ अनुकूलप्रतिकूलपरिसहसहना ३ सम्यकत्वका स्वरूप ४ लोकमें सार वस्तुका कथन ५ पूर्वोपार्जित कर्म क्षय करणा ६ विशेष करके जगतके फंदसें छूटना ७ महात्याग और महाज्ञानका कथन ८ श्रीमहावीर अर्हंतकी ब्रह्मचर्या ए इन नवांका विचित्र तरेंसे कथन है; और दुसरें श्रुतस्कंधमें साधुके आचार व्यवहारादिका कथन है. इस सूत्रके अढार हजार १८००० पद है. और चौदह पूर्वधारी भद्रबाहुस्वामिकी करी इस उपरें निर्युक्ति है, पूर्वधारीओंकी करी चूर्णीहै, शीलांगाचार्यकी करी टीका है. दुसरा शास्त्र सूत्रकृतांग, इसमें तीनसें त्रेसठ मतांका खंडन और जैनमतका मंडन है. इसीतरें द्वादशांगका स्वरूप जान लेना. द्वादशांगोके विना श्री महावीरके शिष्योंके रचे १४००० चौदह हजार शास्त्र प्रकीर्णक है अरु बारवां अंग दृष्टिवाद थे, जीसके एक अध्ययनमें चौदह पूर्व थे. चौदह पूर्वका इतना मूलपाठ था कि जेकर श्याहीसे लिखता सोले हजार तीनसें तीरासी १६३८३ हाथी प्रमाण श्याहीका ढेर लिखनेको लगे. येपूर्व लिखे कदापि नहि जातेहै, गौतमादि गणधरोंके कंठस्थही थे. जब ये पूर्व व्यवच्छेद होने लगे तब आचार्योंने तिनका स्थलोंके लाखो ग्रंथ रचे तिनमें उमास्वाति आचार्य श्री

जैन ग्रंथोका इतिहास.

द्वितीयखंड.

महावीरजीके पीछे ९५० वर्षके हुये तिनके रचे

है. और श्री महावीरजीसें पीछे १००० वर्ष गये

हुये तिनोंके रचे १४४४ चौदसो चमालीस शास्त्र है. त

चंद्राचार्यके रचे साडे तीन कोटि श्लोक है. बुल्हर साहे

उनोकेमें १५००३० डेढ लाख जैन मतके ग्रंथोका पता ल

और पांच वर्षके अंदर तिनकी फेरिस्त छापनेका वाय

या है. इस भरतखंडमें चौवके. शंकरस्वामिके और मुस

की जुलमसें बचे हुये अबभी जैनमतके पुस्तकोंके भंडार

जेसलमेर, और खंबातमें जैसे है तैसे पुस्तक वैदिक मतवा

देखनेकाभी नसीब नहि है. तथा जैनमतके छ कर्मग्रंथ तथा

तक कर्मग्रंथ पंचसंग्रह तथा कर्मप्रकृति प्रमुख ग्रंथोमें जैसा

मोंका स्वरूप कथन किया है तैसा दुनियांमें किसी मतके शा

नहि है: और कर्मोका स्वरूप देखनेसे यहभी मालुम होजात

किये कर्मोका ऐसा स्वरूप शिवाय सर्वज्ञ. और कोई ऐसा बु

मान् नही जो अपनी बुद्धिके बलसें ऐसा स्वरूप कथन कर स

अन्यमतोंवाले जो जैनमतसें विरोध रखते है सो जैनमतके ग्रंथो

न जाननेसें. और जैनमतमें शिवाय अर्हंत सिद्ध परमेश्वर अन्य

किसी उपासना नहि है क्योंकि अन्यमतके देवोमें देवपणा सिद्ध

नहि होता है तथा ब्राह्मणोका बनाया पाखंड जैनी मानते नहि

है इस वास्ते ब्राह्मण लोक जैनमतकी निंदा करते है तिनकी दे

खादेखीसें अन्यमतवालेभी जैनसें विरोध रखते है. परंतु बुद्धिमा

नोको ऐसा चाहिये कि प्रथम जैनमतके ग्रंथ पढके पीछे गुणदोष कहे.

और इस कालमें जैनमतकों बौद्ध मतकी शाखा लिखके अनादिभी न

कहे. मत ... जैनमतकी ... ... अनादिभी न

नहि ... ... करके

कि ... ... नहि ...

वैल हो रहा है सो जैनी राजायोके अज्ञावसें; तथा बहुत लोक यहन्नी समजते है कि जैनमतमें जगतका कर्त्ता ईश्वर नहि मानते है इस वास्ते जैनमत नास्तिक है; परंतु जगत्कर्ता ईश्वर, निरंजन निर्विकारी, वीतराग किसी प्रमाणसें सिद्ध नहि होता है, यह कथन जैनतत्वादर्शमें लिख आये है. लोगोकों सूक्ष्मबुद्धिसें विचारना चाहिये, निःकवल गम्मरी प्रवाहकी तरें नहि चलना चाहिये.

जगतकर्त्ताका विचार.

प्रश्न—जैनमतमें जेकर पूर्वोक्त ईश्वर जगतका कर्त्ता नहि मानते तो इस जगतका कर्त्ता कौन है ?

उत्तर—जैनमतमें अनादि जो द्रव्यशक्ति है, तिसकोंही जग चेतनरूप पर्यायका कर्त्ता मानते है. यह कथन तत्वगीतामें है तिस अनादि द्रव्यशक्तिके पांच रूप है. काल १ स्वज्ञाव २ कर्म ३ नियति ४ उद्यम ५. जो कुछ जगतमें हो रहा है सो इन पांचोहीके निमित्त, उपादानसें हो रहा है; इन पांचोके विना अन्य कोइ जगतका कर्त्ता प्रमाणसें सिद्ध नहि होता है. और इन पांचोहीको जैनमतवाले अनादि द्रव्यकी शक्ति रूपसें कथंचित् न्नेदान्नेद मानते है. और इस द्रव्यतत्वकोंही इस पर्यायरूप जगतकर्त्ता मानते है, परंतु सर्वज्ञ, वीतराग, मुक्तरूप परमेश्वर जगतका कर्त्ता सिद्ध नहि होता है, लोगोंनें इस अनादि द्रव्यत्व शक्तिकों अज्ञानके प्रज्ञावसें समलब्रह्म, सगुणईश्वर, अपरब्रह्म परमेश्वरकी शक्ति, परमेश्वरकी माया, प्रकृति, परमेश्वरकी कुदरत आदि नामोंसे कथन किया है. परंतु वास्तवमें अनादि द्रव्यत्व शक्तिहीको कथन करा है. जेकर सर्वज्ञ, वीतराग ईश्वरकोंही कर्त्ता मानिये तवतो परमेश्वरमें अनेक दूषण उत्पन्न हो जावेगे, और नास्तिकोका मत सिद्ध हो जावेगा, यह कथन जैनतत्वादर्शमें

लिख आये है. इस वास्ते बुद्धिमानोकों अच्छीतरें जैनमतके तत्वको समजना चाहिये, क्योंकि जो लोक वेदांत मानते है सो एकांत माननेसें शुद्ध द्रव्यार्थिक नयाजास है. यथार्थ नहि है. यथार्थ आत्मस्वरूपका कथन आचारांग, तत्वगीता अध्यात्मसार, अध्यात्मकल्पद्रुम प्रमुख जैनमतके शास्त्रोंमें है. और योगाभ्यासका स्वरूप देखना होवे तो योगशास्त्र, योगवीशी, योगदृष्टि, योगविंदु, धर्मविंदु प्रमुख शास्त्रो देख लेना. और पदार्थोंका खंमन मंमन देखना होवे तो सम्मतितर्क, अनेकांत जयपताका, धर्मसंग्रहणी रत्नाकरावतारिका, स्याद्वाद रत्नाकर, विशेषावश्यक प्रमुख ग्रंथो देख लेना, और साधुकी पद विजाग समाचारी छेद ग्रंथोमें है, और प्रायश्चित्तकी विधि जितकल्प प्रमुखमें है. और गृहस्थ धर्मकी विधि श्रावक–प्रज्ञप्ति, श्राद्धदिनकर, आचारदिनकर आचारप्रदीप, विधिकौमुदी, धर्मरत्न प्रमुख ग्रंथोमें है. ऐसा कोई पारलौकिक ज्ञान नहि है जो जैनमतके शास्त्रोंमें नहि है; सो जैनमत और जैनमतके शास्त्र जो इस समयमें है वे सर्व जगवंत श्रीमहावीर स्वामीके जपदेशसें प्रवर्त्तते है.

जैनमत पुराना है.

तथा कितनेक बुद्धिमान ऐसेंजी समजते है कि जैनमत नवीन है; दयानंद सरस्वति कहता है कि साढेतीन हजार वर्षके जैनमत लगजग चीन प्रमुख देशोसें हिंदुस्तानमें आया. यह कथन अप्रमाणिक है. क्योंकि दयानंदजीने इस कथनमें कोईजी प्रमाण नहि दीया. तथा तवारीख लिखनेवालोनें तथा इतिहासतिमिरनाशकमें लिखा है कि संवत ६००० के लगजगसें जैनमत चला है. यहजी अप्रमाणिक है, क्योंकि श्वेतांबर दिगंबर दो जैनमतकी शाखा फटेकों १८०३ अढारसो तीन वर्ष आजतक हुये है. क्योंकि दिगंबर जिनसेनाचार्य अपने बनाये ग्रंथमें लिखता है.

"ठत्तिस वास सये विक्रम निवस्स मरण पत्तस्स, सोरठे वल्लहीये सेयवम संघ समुपन्नो" १ अर्थः विक्रम राजाके मरां पीछे एकसो ठत्तीस वर्ष पीछे सोरठ देशकी वल्लन्नी नगरीमें श्वेतांवर संघ उत्पन्न हुवा. तथा श्वेतांवर मतके शास्त्र विशेषावश्यकमें जीसका कर्त्ता जिनन्नद्रगणि क्षमाश्रमण विक्रमके संवत् ४०० में हुआ सो लिखता है.

"नवाधिकैः शतैः पड्भिः अब्दानां वीरतो गतैः, महात्सवें विसंवादात् सोष्टमो बोटिकोन्नवत्" १ अर्थः स्थवीरपुर नगरमें श्रीमहावीर पीछें ६०९ उसौ नव वर्ष गये दिगंवर मत हुआ. जब एक जैनमतके दो मत हुये इतने वर्ष हुये तब तवारीख लिखनेवालेका लिखना क्योंकर मिथ्या नहि. तथा जनरल कर्नींगहाम साहेबनें मथुरामें श्रीमहावीरस्वामीकी मूर्त्ति पाई है तिसकों इतिहासतिमिरनाशकके लिखनेवाला २००० दो हजार वर्षकी पुरानी लिखना है. यह लिखना गलित है. क्योंकि विक्रमसें ९० नव्वे वर्ष पहिलां वासुदेव नामका कोईन्नी राजा नहि हुआ, और उस श्रीमहावीरकी प्रतिमा उपर ऐसा लिखा है.

"सिद्ध श्रों नमो अरहंत महावीरस्स राजा वासुदेवस्य संवत्सरे ९० नव्वे"—यह लिखते पालि हर्फोंमें है, जोके अढाइ हजार वर्ष पहिलां जैनमतमें लिखी जातीथी इस वास्ते श्रीमहावीरकी मूर्त्ति कइ हजार वर्षकी पुराणी मालुम होती है. जेकर इतिहास लिखनेवालेकी समजमें [illegible]
श्रीमहावीरसें पीछे बनी
पुरानी है. यहन्नी अनुमान गलित है, क्योंकि श्रीऋषन्नदेवके वख्ततसेंही होनहार तीर्थंकरोंकी प्रतिमा बनानी शुरु हो गइ थी—ऐसा जैनशास्त्रमें लिखते है, तो महावीरजीके पीछे होवनेका अनुमान ठीक नहि. इस कालमेंन्नी राणीजीके उदयपुरमें आगली उत्सर्पि-

पीसें होनहार प्रथम पद्मनाम तीर्थंकरकी मूर्ति और मंदिर विद्यमान है, इसवास्ते जनरल कनींगहाम साहेबको जो मूर्ति मिली है सो बहुत पुराणी है. इस्सेंभी जैनमत अपने आपको पुराना और तवारीख लिखनेवालेकी अक्कलका अजीर्ण सिद्ध करता है. जैनमत बौधमतसें नीकला नहि है तथा जो कोइ इसीभी समजता है कि जैनमत बौधमतमेंसें निकला है सोभी जूठ है. क्योंकी इंग्लंडके थोमस साहेबने इक पुस्तक राजा अशोकके प्रथम धर्मके निश्चय करने वास्ते बनाया है तिसमें लिखा है कि राजा अशोकचंद्र प्रथम जेनी था, और तीसी पुस्तकमें लिखा है कि बौद्धमत जेन मतमेंसें निकला है, और जैन मत सर्वमतोसें पहिलां पुराना है. तथा जर्मनिका एक विद्धाननें किताब बनाई है तिसमें अनेक प्रमाणोंसें जैनमत बौद्धमतसें अलग, और सनातन लिखा है. ब्राह्मणोंनें शिवपुराणमें जो जैन मतकी उत्पत्ति लिखी है सोभी जुठी है. क्योंकि शिवपुराण थोडे कालका बनाया हूआ है इन पुराणोंमें वैष्णवकी निंदा लिखी है, इस वास्ते नवीन है कितनेक कहते है कि हिंदुस्तानमें वेद सबसें पुरानें पुस्तक है तिनमें जैनमतका नाम नही इस वास्ते जैनमत नवीन है. यह कहना केवल अप्रमाणिक है क्योंकि जिस पुस्तकोमें वेदांका और अन्य मतोंका नाम न होगा वे पुस्तको इस प्रमाणसें वेदोंसे प्रथम बनें ठहरेंगे, जैसे जैनमतका प्रज्ञापना सिद्धांत, जीवाभिगम, सूत्र तत्वार्थसूत्र, प्रश्नव्याकरण, दशवैकालिक प्रमुखमें किसिमतका और वेदांका नाम नही है. इस्से येभी वेदांके प्रथम बने माननें चाहिये तथा वेदांमें जैनमतका नाम न होनेंसे जेकर नविन मानिये तब तो जो वस्तु वेदांमें नही कही सो सो सर्व नवीन माननी पडेगी. यह मानना मिथ्या है. तथा मुंडकोपनिषदमें मनुस्मृतिका नाम है इस्सें तो मनुस्मृतिभी वेदांके प्रथम बनी

ठहरी, और मनुमें वेदांका नाम है इस वास्ते यह कहना अप्रमाणिक है. तथा कितनेक बुद्धिमान् ऐसेन्नी समजते होगे कि-जैनमतकें सब पुस्तक नवीन अर्थात् अढाइ हजार वर्षके पहिला न्नगवंत श्री महावीरजीनेंही कथन कीए है जेकर जैनमत पुराना होता तो श्रीपार्श्वनाथ आदि तेवीस तीर्थंकरोंके कथन करे हूये शास्त्र होते. इसका खुलासा यह है कि जैन मतमें जो तीर्थंकर होता है सो वीस धर्मके कृत्य करनेसें तीर्थंकर नाम कर्मकी प्रकृति पुण्यरूप उत्पन्न करके तीर्थंकर होता है. सो तीर्थंकर नाम पुण्य प्रकृतिका फल न्नोगनेंमें तब आता है जब धर्मोपदेशद्वारा धर्मतीर्थ करे. जब धर्मतीर्थ करे तब तीसही तीर्थंकरके करे हूये शास्त्र प्रवृत्त होने चाहिये. इस वास्ते पूर्वपूर्व तीर्थंकरोंके शास्त्र बंद हो जाते है, और नवीन नवीन तीर्थंकरोंके शास्त्र प्रवृत्त होते है, इस वास्ते महावीरजीके तीर्थमें पीछलें तीर्थंकरोंके पुस्तक बनाये न रहनेसें प्राचीन शास्त्र नही है. और जो कुछ कथन श्री ऋषन्नदेवजीनें करा था सोही कथन सर्व तीर्थंकरोनें किया. नामन्नी आचारांगादि द्वादशांगका सबके एक समान था. परंतु जो कथारूप शास्त्र है तिनमें जो जीवांका नाम है सो बदला गया है. नगरी, राजा साधु, श्रावकादिकोंका नामन्नी बदला गया है शेप सर्व शास्त्र सर्व अनंत तीर्थंकरोंके तीर्थमें एक सरीखें है इस वास्ते इनही शास्त्रांको पुरानें माननें चाहिये. तथा कितनेक

जैन ग्रंथ प्राकृतमें लखनें-का मयोजन

यहन्नी कहते हैं कि जैनमतके शास्त्र प्राकृतमें है इस वास्ते सर्व ज्ञोक्त नहि, जेकर सर्वज्ञोक्त होते तो संस्कृतमें होते. इसका खुलासा यह है कि श्रीमहावीर न्नगवंतकी वाणी अर्ध मागधी न्नाषामें थी तिसमें ऐसा अतिशय था के आर्य, अनार्य, तिर्यंच प्रमुख सर्व अप-

नी अपनी भाषा अपने समझते थे. पीछे गौतमादि मुनियोंनें संस्कृत प्राकृतमें सूत्र गुंथे. पूर्व तो प्राये सर्व संस्कृतमें गुंथे और बालक, स्त्री अल्प बुद्धि प्रमुखोंके वास्ते सूत्र प्राकृतमें गुंथे. तथा यह जो प्राकृत वाणी है तिसके शब्दोमें जैसी सामर्थ्य है तैसी संस्कृतमें नहि है. प्राकृतके शब्द अनेकार्थके बोधक है और विद्वानोका मानभंजन करनेवाला है और बहु गहनार्थ है. जैनमतके शास्त्र निःकेवल प्राकृतमेंही नहि है किंतु षट् भाषामें है. संस्कृत १ प्राकृत २ शौरसेनी ३ मागधी ४ पैशाची ५ अपभ्रंश ६ प्राकृत तीन तरेकी है. समसंस्कृत १ तद्भ २ देशी ३. इन सर्व भाषायोका व्याकरण विद्यमान है. संस्कृतके शब्दोसें जो प्राकृत बनती है, तिसको तद्भ कहते है. और जो अनादि सिद्ध शब्द है; और जो किसी व्याकरणसेंभी सिद्ध नही होता है तिसको देशी प्राकृत कहते है. तिस प्राकृतकी देशी नाममाला श्री महावीर पीछे ४०९ वर्षके लगभग पादलिप्त आचार्य हुवा जिनके आचार्य श्रावक नागार्जुन तांत्रिक योगिनें अपनें गुरु पादलिप्त आचार्यके नामसें श्री शत्रुंजय तीर्थराजकी तलेटीमें पादलिप्तपुर अर्थात् पालीताणा नगर वसाया तिस पादलिप्त आचार्यने देशी नामवाला रची थी. तिनके पीछे विक्रमसंवत १०२९ वर्षे राजा भोजका मुख्य पंडित धनपाल जैनधर्मीनें दुसरी देशी नाममाला रची. पीछे श्रीहेमचंद्र आचार्यनें सिद्धराज जयसिंहके कहनेसें तीसरी देशी नामवाला रची जो इस समयमें बुल्हर साहेबे छपावाके प्रसिद्ध करी है. देशी नाममाला कुछ देशी शब्द जो भाषामें बोलनेमें आता है तिन शब्दोकी है. तथा कच्छ देश अंजार गामके पास एक जैनमतका बहुत प्राचीन जैनमंदिर है जिसको हाल भद्रेश्वरजी कहते है तिस पुराने जैनमंदिरमें एक जगा खोदनेसें एक ताम्रपत्र निकला है तिसकी आ-

कृति निचे मुजब है और तिस पत्रमें ऐसा लिखा है.

१ ७० देवचंद्रीय श्रीपार्श्वनाथ देवस्यतो० । २१ ।

सो ताम्रपत्र भ्रेश्वरजीके भंडारमें अब विद्यमान है जीसको शंका होवे सो ताम्रपत्र देख ले. इस ताम्रपत्रके लेखकी कल्पना शुद्ध जनने ऐसी करी है.

॥ व ॥ इति ऐसा पालीलिपिमें ॥ व ॥कारकी संज्ञा है त ब ऐसा अर्थ सिद्ध होता है—देवचंद्र नाम विशेषण रूप वणिग् ऐसी जातिवालेका अनुमान किया है क्योंकि भूगोल हस्तामल की १४४ में पृष्ठमे पाली लिपीकी वर्ण मालामें ॥" व "॥ इति ऐसा चिन्ह " व " कारका देखनेंमे आया है इस वास्ते " व " कार करके वणिग् जाति है ऐसा समजमें आता है ॥ देवचंद्रीयेति ॥ इय मत्यय करके देवचंद्र श्रेष्ठी संबंधी जाननेंमें आता है. अर्थात् देवचंद्र शेठने प्रतिष्टा करी. पार्श्वनाथ देवकी प्रतिमा मंदिर यह विशेषण है. पार्श्वनाथ देवस्य, ऐसा मुलनायकका नाम है. इस कालमें तो कितनेक वर्ष पहिला श्रीमहावीर भगवंतकी व शांतिविजय नामक यतिनें स्थापन करा है. छठी विभक्तिके संबंध आगे जोमते है (देवस्य) इहां " स्य " कारके आगे एक मात्रा जोमनी चाहिये. क्योंकि भ्रांतिके सबबसें ताम्रपत्रमें मालुम नहि होता है. हम ऐसे जानते है कि जब ऐसा हुआ तब तो संधि पृथक करें तब ' इत ' ऐसा शब्द सिद्ध हुआ. तिस पद पूर्वापर संबंध है. पार्श्वनाथ देवस्य इतः ' तब ऐसा अर्थ हुआ ॥ पार्श्वनाथ देवस्य इतः ॥ इस प्रतिष्ठाके कालमें भगवंत महावीर तेवीस वर्ष पहिले हुआ कोइ पुछेके भगवान वीर किसने इहां आया तिसका उत्तर यह है कि ऐसे अक्षरके [illegible]

ाक देवे तैसें ओसवालादि कितनेक वनीयोका धर्म कुलगुरुओनें ोम् दिया है.

अब तवारीख अर्थात् इतिहास लिखनेवाला लिखता है.

जैनमत संवत ६०० में वौद्ध और शंकरकी लमाइमें उत्पन्न ुआ है तिसकी समजभी ठीक नहि, समजके अनावसें जो चा- ा सो अप्रमाणिक लिख दिया. क्योंकि ब्राह्मण लोकोंके माननें ुजब और तवारीख लिखनेंवालेकी समज मुजब श्रीकृष्ण वा- ुदेवको हुए ५००० हजार वर्ष हुए है, तिनके समयमें व्यासजी ैशंपायन, याज्ञवल्क्यादि वेदके संग्रह कर्त्ता और शुक्ल यजुर्वेद ातपथ ब्राह्मणादि शास्त्रोंके कर्त्ता हुये है. तिनमें सर्वसें मुख्य ्यास ऋषिनें वेदांत मतके ब्रह्मसूत्र रचे है तिसके दुसरें अध्या- यके दुसरे पादके तेत्तीसमें सूत्रमें जैनमतकी स्याद्वाद सप्तभंगी- का खंडन लिखा है. सो सूत्र यह है.

नैकस्मिन्नसम्भवात् ॥ ३३ ॥

इस सूत्रकी भाष्यमें शंकर स्वामीनें सप्तभंगीका खंडन लिखा है सो आगे लिखेंगे. जब व्यासजीनें जैनमतका खंडन लिखा तब तो व्यासजीके समयमे जैनमत विद्यमान था, तो फिर व्यासस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, शुक्लयजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मणादि- कमें जैनमतका नाम न लिखा तथा अन्य वेदोंके बनानेके सम- यमें भी जैनमत विद्यमान था तोभी जैन मतका कथन न लिखनें- से जैनमत नवीन क्योंकर कह सकते है ? व्यासजीसें पहिले तो चारों वेद नहि थे. ऋषियों पास यज्ञ अर्थात् जीवोंके हवन करनेकी श्रुतियों थी. तिन हिंसक श्रुतियोंमें अहिंसक जैनधर्मके लिखनेंका क्या प्रयोजन था ? कदापि निंदारुप लिखा होगा तो यज्ञ विध्वंसकारक, राक्षस, दैत्यादि नामोंसें लिखा होगा. इस

नामा राजाकों नजराणा करे. राजानें तुष्टमान होके उपकेश पट्टनकी जगा दीनी. तिहां उहड मंत्रीनें अपने राजा उत्पल देवके रहने वास्ते पट्टन नामा नगर वसाया. तिस नगरीमें श्रीरत्नप्रभसूरि आया. तिनोंनें तिस नगरमें १२५००० सवालाख श्रावक जैनधर्मी करे तब तिनके वंशका उपकेश ऐसा संज्ञा पडी, और नगरका नामभी उपकेश पट्टण प्रसिद्ध हुआ. तिस नगरमें ऊहड उपकेश वंशीनें श्रीमहावीर स्वामीका मंदिर बनवाया. तिस मंदिरमें श्री रत्नप्रभसूरिने श्रीवीरात् ७० वर्ष पीछे प्रतिष्ठा करी, श्रीमहावीर स्वामिकी मूर्त्ति स्थापन करी. सो मंदिर, मूर्त्ति क्रोमो रुपइओकी लागतके योधपुरसें पश्चिम दिशामें ओसा नगरी २० कोसके अंतरेमें वहां है. उपकेशपट्टन और उपकेश वंशकादी नाम लोकोने ओसा नगरी और ओस वंशी ओसवाले रखा है. मेनें कितनेक पुरानें पट्टावलि पुस्तकोमें वीरात् ७० वर्षे उपकेशे श्रीवीर प्रतिष्टा श्रीरत्नप्रभसूरिनें करी और ओसवालभी प्रथम तीस रत्नप्रभसूरिने वीरात् ७० वर्षे स्थापन करे ऐसे देखा है. हम हाथ करते है, ओसवाल, श्रीमाल, पोरवाल प्रमुख जैनी वनीयोंकी समजको. क्योंकि जिनके मूल वंशके स्थापन करनेवाले चौदह पूर्वधारी श्रीरत्नप्रभसूरिका प्रतिष्ठित जिनमंदिर, जिनप्रतिमा आज प्रत्यक्ष योधपूरमें वीश कोशके अंतरे विद्यमान है. संशय होवे तो आंखोसें जाकर देख लो, तिस रत्नप्रभसूरिके धर्मको गेमके संवत १७०९ में निकले ढुंढकमति और संवत १८१८ में निकले भीखममति तेरापंथीयोंके कहनेसे नवीन पंथ धारा है. जीस पंथके चलानेवाले महामूर्ख अणपढ थे. इस वास्ते ओसवाल श्रीमालादि वनियोंनें श्रीरत्नप्रभसूरिका उपदेशा धर्म ऐसे छोड दिया. जैसे कोइ भोला जीव चिंतामणिरत्नको किसी महा मूर्ख, गुमार, नीच जातिके पुरुषके काच कहनेसें

फेंक देवे तैसें ओसवालादि कितनेक वनीयोका धर्म कुलगुरुओनें छोड दिया है.

अब तवारीख अर्थात् इतिहास लिखनेवाला लिखता है.

जैनमत संवत ६०० में बौद्ध और शंकरकी लडाइमें उत्पन्न हुआ है तिसकी समजभी ठीक नहि, समजके अभावसें जो चाहा सो अप्रमाणिक लिख दिया. क्योंकि ब्राह्मण लोकोंके माननें मुजब और तवारीख लिखनेंवालेकी समज मुजब श्रीकृष्ण वासुदेवको हुए ५००० हजार वर्ष हुए है, तिनके समयमें व्यासजी वैशंपायन, याज्ञवल्क्यादि वेदके संग्रह कर्त्ता और शुक्ल यजुर्वेद शतपथ ब्राह्मणादि शास्त्रोंके कर्त्ता हुये है. तिनमें सर्वसें मुख्य व्यास ऋषिनें वेदांत मतके ब्रह्मसूत्र रचे है तिसके दुसरें अध्यायके दुसरे पादके तेतीसमें सूत्रमें जैनमतकी स्याद्वाद सप्तभंगीका खंडन लिखा है. सो सूत्र यह है.

नैकस्मिन्नसम्भवात् ॥ ३३ ॥

इस सूत्रकी भाष्यमें शंकर स्वामीनें सप्तभंगीका खंडन लिखा है सो आगे लिखेंगे. जब व्यासजीनें जैनमतका खंडन लिखा तब तो व्यासजीके समयमे जैनमत विद्यमान था, तो फिर व्यासस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, शुक्लयजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मणादिकमें जैनमतका नाम न लिखा तथा अन्य वेदोंके बनानेके समयमेंभी जैनमत विद्यमान था तोभी जैन मतका कथन न लिखनेंसे जैनमत नवीन क्योंकर कह सकते है ? व्यासजीसें पहिले तो चारों वेद नहि थे. ऋषियों पास यज्ञ अर्थात् जीवोंके हवन करनेकी श्रुतियां थी. तिन हिंसक श्रुतियोंमें अहिंसक जैनधर्मके लिखनेका क्या प्रयोजन था ? कदापि निंदारूप लिखा होगा तो यज्ञ विध्वंसकारक, राक्षस, इत्यादि नामोंसें लिखा होगा, इस

व्यासजीके स्तवन करें सूत्रसेतो जैनमत चारों वेदोंका बननेंसे पहिला विद्यमान था. ग्रंथकार जिस मतका खंडन करता है सो मत तिसके समयमें प्रबल विद्यमान होता और ग्रंथकारके मतको विरोधी होता तब लिखता है. इस लिखनेसेन्नी यह सिद्ध होता है कि जैन धर्म सर्व मतोंसें पहिला सच्चा मत है. इस वास्ते जैनमतको जो कोइ नवीन मत कहता है सो वडी भूल खाता है. तथा जैनमतके तीर्थंकरोकी मूर्त्ति देखनेसेंन्नी जैनमतका उपदेष्टा सर्वज्ञ, निर्विकार, निर्नयादि गुणो करके संयुक्त सिद्ध होता है, तथा अन्यमतके देवताओकी मूर्त्ति देखनेसें वे देव असर्वज्ञ कामी, हिंसक, सन्नयादि करके संयुक्त थे ऐसा अनुमानसें सिद्ध होता है. जैसे हम अन्य देवोकी मूर्त्ति स्त्री और शस्त्र संयुक्त देखते है अथवा लिंग न्नगमें देखते है तथा जानवर पक्षीके उपर चढा हुआ हाथमें जपमाला, कमंमल, पुस्तक विगेरे रखेला देखते है. इन चिन्हो द्वारा हम जीस देवकी मूर्त्ति देखते है, तिस मूर्त्ति द्वारा हम तिस देवको पीछान शकते है. प्रथम जो देव स्त्री रखता था तिसका स्त्रीके संगमसें सुख होता था; जितना चिर स्त्रीसें विषय नहि सेवता था तितना काल काम पीमित दुःखी रहता था. इस वास्ते स्त्री रखनेवाला देव दुःखी, कामी, मोही, रागी, आत्मानंद वर्जित, निशूक, पुद्गलानंदी, ब्रह्मज्ञान वर्जित, शुद्ध स्वरूपका अनन्निज्ञ, अजीवन्मुक्त, सविकारी, स्त्रीके मुखका थुंक चाटके सुख माननेवाला, मांस, रुधिर, नसाजाल, वातपित्त, कफकी ग्रंथिरूप कुचके मर्दन और आलिंगन करके सुख माननेवाला, परवश, इत्यादि दूषण है. स्वस्त्रीके रखनेवालामें इतना दूषण है, जेकर परस्त्री हरण करे अथवा परस्त्रीसें मैथुन सेवे तब तो लुच्चा, चोर, धाम्री, पारदारिक, माकु, कुव्यसनी, अन्यायी, स्वस्त्रीसें असंतोष, विषयका न्निक्षाचार, राज्य संबंधी दंम योग्य, अन्याय प्र-

वर्तक, अन्याय शिरोमणि, हीन पुण्यवाला, परस्त्री देखी झुरनेवाला, असमर्थ, इत्यादि अनेक दूषणो ये देवमें सिद्ध होता है. तो फिर ऐसे देवको ईश्वर मानना अथवा ईश्वरका अंशावतार मानना, धर्मका उपदेष्टा मानना, तिसकी सेवा, भक्ति, पूजा, ध्यान, जाप, अरू रटनेसें अपनेकों मुक्त होना मानना, वो महा ज्ञानी जीवोका काम नही है. ऐसे देव, देव नहि थे, परंतु भारीकर्मी जीवोनें पापोदयसें सच्चे देवकी स्पर्द्धा करके आटोके धोवनके दुध मानके और आकके दुधको गोदुग्ध मानके पीआ है अर्थात् कुदेवोमें सच्चा देवका आरोप किया है.

जो देव शस्त्र रखते है, तिस्सें यह सिद्ध होता है कि शस्त्र तो शत्रुके भयवाला रखते है, इसवास्ते वो देव सभय है, इसका शत्रु उपर द्वेष होनेसें द्वेषी है, शत्रुको विना शस्त्र मार नहि शकता है इस वास्ते असमर्थ है, शत्रुको उत्पन्न करनेसें अज्ञानी है. पूर्व जन्मादिमें पाप करे तिस वास्ते वैरी उत्पन्न हुए इत्यादि अनेक दूषणो शस्त्र रखनेवाला देवमें है, तथा जो सदा स्त्रीके साथ विषयासक्त रहते है सो देव सदा कामदेवकी अग्निसें दग्ध प्रज्वलित है, तिस देवके भक्तोकों लज्जा नहि आती होवेगी ?

जपमाला रखनेवालाभी देव नहि. माला तो वो रखते है जिनको जापकी संख्या याद नहि रहती है. भगवान तो सर्वज्ञ है. अथवा माला वो रखते है जिनोनें किसीका जाप करना होवें. भगवान तो किसिका जाप नहि करते है तो फिर मालाके जाप करनेसें देव क्या मागते है.

कमंडलु अशुचि दूर करने वास्ते है, भगवंतकु अशुचि है नहि.

पुस्तक वाचनेसें सर्वज्ञ नहि है.

शरीरके विज्जूति लगानेसें कृतकृत्य नहि हुआ है.

जानवरोकी स्वारि करणेसें जानवरोंकों दुःख देता है और असमर्थ है, क्योंकि विना जानवरकी स्वारि आकाशमें नहि जा शकता है.

ये पूर्वोक्त दूषण अर्हंत प्रतिमामें नहि है. इस वास्ते अर्हंत सर्वज्ञ, दयालु, निर्जय, निर्विकारी, रागद्वेष मोहादि कलंक पंकसें रहित था तो तिसकी मूर्तिमेंज्ञी वैसेही चिन्ह पाये जातेहै. इस वास्ते लोकोंनें स्पर्द्धासें अयोग्य पुरुषोंके विषे देवका उपचार करा है. परंतु वे देव नहि. इस वास्ते जैनधर्मही सच्चा और सनातन मोक्ष मार्ग है.

जैनमतके जितनें आगम है वे सर्व प्राकृत ज्ञाषामें है और इन शब्दोंमें अनंत अर्थ देनेकी शक्ति है.

॥ राजानो ददते सौख्यं ॥

इस वाक्यके आठ लाख अर्थ तो में करे शकता हुं, इस वास्ते जैनवाणी बहुत अतिशय संपन्न है.

कितनेक जोले जीवोंको ऐसा संशय होवेगा कि दिवाली कल्पादि शास्त्रोमें लिखा है कि विक्रमादित्यके संवत १९१४ में कलंकी होवेगा. सो नहि हुआ है, इस वास्ते जैनवाणीमें संशय रहता है. इसका उत्तर यह है,

हे ज्ञव्य जीव ! जिनवाणीतो सदा निःकलंक और सत्य है, परंतु समजमें फेर है. क्योंकि विक्रमादित्यके संवत १९१४ में कलंकी राजा होवेगा ऐसा लेख किसी जैनमतके शास्त्रमें नहि है. दिवाली कल्पादि ग्रंथोमें तो वीरीगत् संवत १९१४ में कलंकीका होना लिखा है. तिस कालको आज दिन तक ६०७ वर्ष व्यतीत हो गये है तो फेर इस समय में कलंकी कहां से होवे.

प्रश्न–श्रीमहावीर स्वामीके पीछे संवत १९१४ में कानसा कलकी राजा हुआ है जिसकी बावत दिवाली कल्पादि ग्रंथोमें कलकीका होना लिखा है ?

उत्तर–गुर्जर देश नृपावली ग्रंथमें लिखा है कि विक्रमादित्यके संवत १४४६ में अल्लाउद्दीन खुनी बादशाहका राज्य था तिसके पहिलां ओर पीछे सहाबुद्दीन खुनी ओर शरकीफिसान हुवे है. यह अल्लाउद्दीनादि ऐसे जुल्मी बादशाह हुवे है कि जिनोंनें हजारो मंदिर तोडवाये थे. अल्लाउद्दीन तो ऐसा जुल्मी था कि जिसनें अपना किला बनाने वास्ते ऐसा हुकम करा था के निःकेवल मंदिर तोमके तिनके मसालेसेंही किल्ला बनाया जावे. तिस अल्लाउद्दीननें प्रभासपाटनमें राजा कुमारपालका बनाया जैनमंदिर तोमवाके मसजीद बनाइ थी. सो मसजीद पाटनमें विद्यमान है. तिस अल्लाउद्दीनके राज्यमें प्रजाको ऐसा दुःख हुआ था कि किसी राजाके राज्यमें ऐसा नहि हुआ होगा. इस वास्ते ये जुल्मी बादशाह मेरी समजमें कलंकी राजा था. इसके जुल्म इतिहास ग्रंथोमें ऐसा लिखे है कि जिनके वांचनेसें आंखोमें तुरत आंसु आ जावे. और जो कलंकीका विशेष वर्णन लिखा है सो समुच्चय है, इस कलंकीके वास्ते नहिं. किंतु सर्व कलंकी, उपकलंकीओमेंसें जो भारी कलंकी होवेगा तिसके वास्ते मालुम होता है. क्योंकि सुदृष्टतरंगिणी नामके ग्रंथमें तथा अन्य ग्रंथोमें कलंकी उपकलंकी बहुत होने लिखे है इस वास्ते पूर्वोक्त जुल्मी बादशाह पूर्वोक्त संवतमें हुआ संभव होता है तिसकोंही कलंकी कहना ठीक है.

प्रश्न—सबमें बडा कलंकी कबहोवेगा जिसके विशेषण दीवाली कल्पादि ग्रंथोमें करा है.

अकलके अजीर्णतासें है, क्योंकि जैन मतमें जो जो कथन है सो सो नतो बौद्ध मतमें है और नतो वैदिक मतमें है तो फिर जैन मत पूर्वोक्त मतोंकी वातोंसें वना क्योंकर ठहर सकता है? क्योंकि सर्व नदीयां समुद्रमेंतो प्रवेश करती है, परंतु समुद्र किसीज्ञी एक नदीमें नहि समा सकता है. इसी तरें जैनमत स्याद्वादरूप समुद्र है. तिसमें तो सर्व मतां नदीयां समान समा सकते है परंतु जैनमत समुद्र समान किसीज्ञी एक मतमें नहि समा शकता है, जैन मतकीही वातां लेकर सर्व मत वने है.

मूर्त्तिपूजाका मंडन.

कितनेक यहज्ञी कहते है कि जैन मतमें मूर्त्तिपूजनका कथन है और मूर्त्ति पूजनका आज काल वहुत बुद्धिमान घृणा करते है. इस वास्ते जैन मत अच्छा नहि. इसका यह है कि मूर्त्तिके विना माने किसज्ञी बुद्धिमानका काम नहि चलता है. प्रथम तो बुद्धिमान सर्व मुलकोंके अरु ग्राम नदी, पर्वतादिकके नकशे वनाते है. और तिन नकशा द्वारा असल वस्तुका स्वरूपका निश्चय करता है. हिंदुओंके मतमें तो अपने अपने इष्ट देवकी मूर्त्ति पूजन प्रसिद्ध है. और ईसाइ मतवाले अपनी गारी हुइ कितनीक पुस्तकोंके उपर इसाकी मूर्त्ति, जैसा शूलि देनेकुं ले चलेका रूप था तैसा ठापते है जिससे देखने वालेको इसा मसीहकी अवस्था याद आये. तथा रोमनकेथोलिक पादरी इसाकी मूर्त्ति मानते है. और मूर्त्ति न माननेवालाको नवीन मतवाला कहते है. तथा मुसलमानोंमें जो सिया फिरकेके मुसलमान है वे मोहरममें तावुत वनाते है और दुलडुल घोडा निकालते है अपने इमामोंकी लाश वनाते है यह सर्व मूर्त्ति पुजनमें

सामिल है, तथा सर्व मुसलमान मक्केमें हज करनेंकोजाते है. मक्केमें श्याम पथ्थरके बोसे लेतें है. मदीनेमें जाते है, यह भी सर्व मूर्त्ति पूजनमें दाखिल है. तथा जो पुस्तक मतधारीओकी है वे सर्व परमेश्वरकी बनाई कहते है; तबतो जो पुस्तक पत्रोंमें लिखें जाते है वे सर्व मूर्त्तिके माफक है. तथा सुंदर कामिनीके अद्भूत रूपकी मूर्त्ति देखनेसें जैसे कामीकों काम उत्पन्न होता है तैसा वीतरागकी मूर्त्ति देखके भक्त जनांको भक्तिराग उत्पन्न होता है. तथा जो कहता है कि मूर्त्ति हाथोकी बनाइ है तब तो पुस्तकभी हाथोके बनाये है तिनकोंभी न वांचना चाहिये.

पूर्वपक्ष—पुस्तक वांचनेसेतो ज्ञान होता है.

उत्तरपक्ष—वीतरागकी प्रतिमाको देखनेसेभी वीतरागकी अवस्था याद आनेसें वैराग्य और भक्ति उत्पन्न होती है.

प्रश्न—प्रतिमाको चोर चुरा ले जाते है. मूसे मूत जाते है, म्लेच्छ खंडन कर देते है, तो प्रतिमा हमको क्योंकर तारेगी.

उत्तर—पुस्तकभी पूर्वोक्त दूषणों संयुक्त होनेसें वाचने वालेको कुच्छभी उपकारक न होने चाहियें. जैसे प्रतिमा पाषाणादिककी है तैसे पुस्तकभी स्याही और सणिके है. जैसे प्रतिमा विकती है तैसे पुस्तकभी विकते है. जैसे प्रतिमा तालेके अंदर दीनी जाति है तैसे पुस्तकभी तालेके दीये जाते है. इस वास्ते जो पुरुष प्रतिमाकी निंदा करते है और पुस्तकांको परमेश्वरकी वाणी मानते है, और तिनको वांचते है. और आदर करते है वे निर्विवेकी है. और जो दयानंद प्रतिमाकी निंदा करता है, तोभी तैसाही समजना क्योंकि जैनाचार्य, बौध, गौतम, कपिल पतंजलि, कणाद, व्यास प्रमुख महाऋषिओंने मूर्त्तिपूजनका लि-

चता है तब तो ईश्वरको दया नहि, क्योंकि जब ईश्वर दुःखदुर्गति, दुर्योनि, जन्मादि क्लेश करके व्याकुल जीवांको रचता हुआ तव ईश्वरमें कौनसी कृपालुता है. ४ जेकर पूर्वोक्त ईश्वर कर्मापेक्षासें अर्थात् जैसे जैसे शुज्ञाशुज्ञ कर्म जीव करते है तिनको तैसा तैसा सुखी दुःखी रचता है तब तो ईश्वर अस्मादिकोंकी तरें स्वतंत्र न हुआ, किंतु परतंत्र हुआ अर्थात् कर्मोके आधीन जैसें हम वर्तते तैसे ईश्वरज्ञी हुआ. जब कर्मोहीसें जगतकी विचित्र रचना है तव तो जगतका कर्त्ता नपुंसक ईश्वर काहेको मानना, ज्ञसके माननेसे कुछ प्रयोजन सिद्ध नहि होता है ५ जेकर ईश्वरका स्वज्ञावही ऐसे जगत रचनेका है, तब तो यह कहना परीक्षकोंकी डौंमीका नाश करणा है अर्थात् परीक्षकोंकी बुद्धिका नाश करणा है, क्योंकि स्वज्ञाव पक्षको लेकर महा मूढज्ञी जय पताका ले शकता है. ६ जेकर सर्व पदार्थोंके जानवेका नाम कर्तृत्व है तव तो देह रहित सिद्ध और देह सहित केवली कर्त्ता सिद्ध हुए तव तो हमाराही मत सिद्ध हुआ. ७ हे नाथ ! वे पुरुष तेरे शासनमें रति करते है क्या करके, पूर्वोक्त अप्रमाणिक अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाण रहित सृष्टिवाद कुदेवाक छोडके अर्थात् खोटी अज्ञिलाषा छोडके कव छोडते है जव तुं तुष्टमान होता है इति सप्तम प्रकाशका अर्थ.

इस वास्ते देहधारी, सर्वज्ञ, वीतराग अर्हंतहीकी मूर्त्ति मानने योग्य है, अन्य देवोंकी मानने योग्य नहि है क्योंकि अन्य देवोंमें परमेश्वरपणा किसी प्रमाणसें सिद्ध नहि होता है. जो देव कामी, क्रोधी अज्ञानी, मत्सरी, स्त्रीका अज्ञिलाषी, चोर, परस्त्री गमन करनार, शस्त्रधारी, माला जपनेवाला, शरीरको ज्ञस्म विज्ञूति लगानेवाला, लोज्ञी, मानी, नाचनेवाला, हिंसाका उप-

देशक, दुनियाको करामत देखानेवाला. जगतमें अपनी बडाइ-का इच्छक इत्यादि अवगुण करके संयुक्त है वो परमेश्वर नि[illegible] नहि होता है.

अर्हंत परमेश्वर वो अवगुणसें रहित है इस वास्ते इनकी मूर्त्तिभी शांतरूप, ध्यानारूढ, निर्विकारी होनी चाहिये. जिसके देखनेसें वीतरागकी अवस्था याद आवे. ऐसी मूर्त्ति जैन मतमें ही है, अन्यमतमें नहि क्योंकि अन्यमतोंमें पूर्वोक्त दूषण रहित कोइ देवभी नहि हुआ है.

जैनमतमें अठारह दूषण जिसमें नहि होवे तिसको अर्हंत परमेश्वर मानते है, वे दूषण यह है.

> अन्तराया दानलाभवीर्यभोगोपभोगगाः ।
> हासो रत्यरती भीतिर्जुगुप्सा शोकएव च ॥ १ ॥
> कामो मिथ्यात्वमज्ञानं निद्रा चाविरतिस्तथा ।
> रागो द्वेषश्च नो दोषास्तेषामष्टादशाप्यमी ॥ २ ॥

अर्थ—दानगत, अंतराय, लाभगत अंतराय, वीर्यगत अंतराय, भोगगत अंतराय, उपभोगगत अंतराय यह पांचतो भगवंतके वि-घ्न नहि है, भगवंत तीन लोककी लक्ष्मी तृणाग्र मात्रसें दान करे तो कोइ रोकनेवाला नहि; भगवंतका पच्चखी [illegible] साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाका लाभ तथा भगवंतका [illegible] और अनंत चतुष्टयकी प्राप्तिमें कोइ विघ्न करता नहि तथा लाभां-तरायके क्षयसें अचिंत्य माहात्म्य. विभूति प्रगट हुइ है जिससें भगवंतके लाभमें कोइ विघ्न करता नहि. भगवंत अनंत शक्ति [illegible] हैं. चाहे तो तीन लोकको [illegible] [illegible] नहि है; भगवंत अनंत [illegible] [illegible] पभोग अनंत प्रत्यक्ष चाहे तो [illegible]

को हांसीभी नहि आती है क्योंकि हांसी तीन निमित्तोसें उत्पन्न होती है, आश्चर्य वातके सुननेसें, आश्चर्य वस्तुके देखनेसें, आश्चर्य वस्तुकी स्मृति होनेसें. अर्हंत भगवंतके पूर्वोक्त तीनोही आश्चर्य नहि है क्योंकि भगवंत तो सदा सर्वज्ञ है; पदार्थोंपर प्रीति करणी सो रति; पदार्थोंपर जो अप्रीति करणी सो अरति; भय; जुगुप्सा अर्थात् घृणा; शोक, चित्तका वैधूर्यपणा; काम, मन्मथ; मिथ्यात्वदर्शन मोह; अज्ञान, मूढपणा; निद्रा, सोना; अविरति, अप्रत्याख्यान; राग, सुखाभिज्ञ, सुखकी अभिलाषा, पूर्व सुखकी स्मृति. सुखमें और शस्त्रके साधनमें गृद्धिपणा सो राग, द्वेष, दुःखाभिज्ञ दुःखानुस्मृति पूर्व दुःखमें और दुःखके साधनोंमें क्रोध सो द्वेष, ये अठारह दूषण जिसमें न होवे सोही अर्हंत परमेश्वर है. जब अर्हंतका निर्वाण होता है तब शुद्ध निरंजन, अविकारी अरूपी, सच्चिदानंद, ज्ञानस्वरूपी, अलेप, अगोचर, अजर, अज, अमर, ईश, शिवशंकर, शुद्ध, बुद्ध, सिद्ध, परमात्मादि नामोंसें कहा जाता है; परंतु अज्ञानोदयसें मतजंगी ओने अनादि द्रव्य शक्तिका ईश्वरका गुणारचार करके ईश्वरको जगतका कर्ता ठहराया है, इसमें सिद्ध परमात्मामें अनेक दूषणो उत्पन्न होते है सो तो मतजंगी नहि विचारते है. परंतु इस जगत ईश्वर विना कदापि नहि हो सकता है इस चिंतामही डूब मरे और डूब जाते है; और जो जो मतजंगीओंने अपने मनमें आदि उपदेशक, देहधारी ईश्वर, शिव, राम, कृष्ण, ब्रह्मा, ईसादि ठहराये है वे अठारही दूषणोंसें रहित नहि थे, क्योंकि शिवकी बाबत पुराणोंमें जो कथन लिखा है तिसमें एसा मालूम होता है कि शिवजी कामीभी थे, वेश्या या परस्त्री गमन करते थे. और राग द्वेषीभी थे, और क्रोधीभी थे, और अज्ञानीभी थे, इत्यादि अनेक दूषण संयुक्त थे. इस वास्ते अर्हंत

परमेश्वर नहि था, किंतु लोकने स्वच्छंदतासें ईश्वर कल्पन कर छोडा है. तथा श्रीरामचंद्रजी यद्यपि परस्त्रीगामी नहि था, और अनेक शुभगुणों करी अलंकृत था. परंतु अर्हंत परमेश्वर नहि था, क्योंकि भार्या सीतासें भोग करता था, इस वास्ते कामसें रहित नहि था; तथा संग्रामादि करनेसें रागद्वेष रहितभी नहि था; राजा होनेसें अविरतिभी था; शोक, भय, रति, अरति, जुगुप्सा, हास्यादि करकेभी संयुक्त था; इस वास्ते अर्हंत परमेश्वर नहि था; यद्यपि दीक्षा लिया पीछे श्रीरामचंद्रजी सामान्य केवली हो गये थे परंतु तीर्थंकर नहि थे. इसी तरे श्रीकृष्णजीभी जान लेने. तथा इशामसीहभी पूर्वोक्त अठारह दूषणोसें रहित नहिं था, क्योंकि इंजीलमें लिखा है कि एक दिन इसामसीहको भूख लगी तब गुलरके फल खानेको गया. जब गूलरके पास गये तब गुलरमें फल एकभी न मिला, तब इसामसीहनें गुलरको शाप दिया, जिस्सें गुलर सूक गया. इस लिखनेसें यह मालुम होता है कि यसामसीहको ज्ञान नहि था, नहितो फल रहित गुलरके पास फल खानेकु न जाते, तथा गुलरको शाप देनेसें द्वेषभी सिद्ध हुआ, तथा जगतमें करामत दिखलाके लोगोका अपने मतमें लाता था, जेकर समर्थ होता तो अपनी शक्तिसें लोकोका अंतःकरण शुद्ध नहि कर शकता था? तथा भक्तजनोके पापके बदले शूली चढा. क्या विना शूली चढे भक्तोका पाप नहि दूर कर शकता था? तथा पाप करा अन्यने और फल भोग्या अन्यनें यह असंभव है; तथा इंजिलमें कहता है. जो पाप करते है तिसको मैं उसकी सात पेढी तक उस पापका फल देता हुं. यह अन्याय है क्योंकि करे अन्यने और फल अन्यको देना. तथा इसामसीह बोल रहा कि सर्व लोक मेरे पर इमान लावे परंतु लोक लाये नहि. इससेंभी अज्ञान, असामर्थ्यता सिद्ध होती

है तथा इसामसीह चलनेसें थक गयानी लिखा है इस वास्ते वीर्यांतराय दूषणनी था. तथा दयानंद सरस्वति जो कहता है कि मनुष्य सर्वज्ञ कदापि नहि हो सकता है, इस वास्ते ईश्वरने अग्नि, वायु, सूर्य, अंगीरस ऋषियोंके मुखसें वेद कथन करवाये; यह कहना महा जूठ है, अप्रमाणिक होनेसें; तथा क्या जानने उन ऋषियोने स्वकपोलकल्पित गप्पेही मारी होवे, इस वातका गाह कौन है कि ईश्वरने उनसें कथन करवाया. क्या ईश्वर वने वनाये, लिखे लिखाये वेद ऋषियोको नहि दे शक्ता था ? हम उपर प्रमाण लिखे आये है कि देह विना सर्वव्यापी ईश्वर अन्यको प्रेरणादि कुच्छ नहि कर शक्ता है तथा अनुमान प्रमाणसेंनी सिद्ध होता है कि देह रहित ईश्वर कर्त्ता नहि अक्रियत्वात्—अक्रिय होनेसें, आकाशवत. इस वास्ते अगारह दूषण रहित देहवालाही उपदेशक हो शक्ता है, सोही अर्हंत परमेश्वर है.

दयानंद सरस्वति जो प्रतिमाका पूजना निषेध करता है सोनी अज्ञानोदयसें क्योंकि प्रथम खंडमें सप्रमाण लिख आये है कि वेद ईश्वरके कथन कर हुए नहि तब तो वेदोमें मूर्त्ति पूजन हुआ तो क्या हुआ, और न हुआ तोनी क्या हुआ. जब वेदही ईश्वरोक्त नहि तब दयानंदके गल्ल वजानेसे क्या है. इस वास्ते अर्हंत परमेश्वरही, सर्वज्ञ और सच्चे धर्मका उपदेशक है, अन्य नहि है; जेकर कोई ऐसा कहे कि जैनीओने अच्छी अच्छी वाता अपने पुस्तकोंमें अपने अर्हंतोके वास्ते लिखी लिनी है तो हम कहते है कि अन्य मतांवालाको किसने रोका है जो तुम अपने अवतारो वास्ते अच्छी वाता मत लिखो; परंतु जैसा जिसका चाल चलन था तैसाही लिखनेवालोने लिखा है, क्योंकि विक्रमादित्यका वमा नाइ नर्तृहरि अपना बनाया शृंगार शतकमें लिखता है कि—

शंभुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियंत सततं गृहकर्मदासाः ।
वाचामगोचरचरित्रविचित्रताय
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥ १ ॥

सारांश यह है कि ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वर इन तीनोंकें कामनें स्त्रीयोंका घरका दास बनवाया. और अर्हंत परमेश्वर गुणवान थे सो वैसेहि लिखनेमें आये है, अरु अन्य देव विषयी होनेसें वैसेहि लिखनेमें आते है.

जैनमतमें दर्शाविल आयुष्य और देह प्रमाणका प्रतिपादन.

कितनेक यह भी कहता है कि जैन मतमें जो तीर्थंकरोकी आयु और अवगाहना अर्थात् शरीरका ऊंचापणा और परस्पर तीर्थंकरोकी अंतरके असंख्य क्रोमो, लाखो वर्ष प्रमुख जो लिखे है सो प्रतीतिके लायक नही है क्योंकि इतनी आयु, और इतनी ऊंची देह, और इतना काल संभव नही होता है. इतिहासतिमिरनाशकका कर्त्ताभी इस वातकों मस्करीकी तौरपर लिखता है, परंतु जब यह संसार अनादि सिद्ध है तो इसमें पूर्वोक्त तीनो वातोंका होना मुस्कल नहि है. और जो वेदोंमें लिखा है कि में सो वर्षतक जी शकुं और कठ उपनिशदमें यम नचिकेताको कहता है कि बेटे और पोते मांग जो सौ सौ वर्ष जिवना. इससें तो जो मोक्षमुलर साहिबनें लिखा है कि वेदोंको बने २९०० सौ वा ३१०० सौ वर्ष हुए है सो सिद्ध होता है क्योंकि २९०० वा ३१०० वर्ष पर वेदोंकी उत्पत्ति समयमें सौ वर्षकही आयु थी. सो वैसाही प्रार्थना करी.

तौरेत ग्रंथमें नूह प्रमुखकी ६०० सौ, ८०० सो, ९०० सौ वर्षतककी आयु लिखी है इस वास्ते क्या वेदादीकों कहना सत्य, अन्यथा नही ? इतिहासतिमिरनाशकका लिखनेवाला वेद स्मृति पुराणादिकके अनुसारही वहुत वातो लिखता है, क्या अन्य पुस्तक कोई नही जिसका प्रमाण लिखा जाय, तथा अंग्रेज जो पुरानी वातका पत्ता लिखता है वो ६००० हजार वर्ष अंदरहीका लिखता है, इसामसीहका कहना सत्य करता है.

कितनेक कहते है कि ६००० हजार वर्षके पहिलेकी कोइ इमारत वा सिक्का नहि मिलता है इस वास्ते ६००० हजार वर्षके अंदरही सर्व वस्तुका वनेका अनुमान करता है, तिसका उत्तर यह है कि—

इमारततो इतने वर्षतक रह नही शकती हे और पुराने सिक्के सर्व, श्री पार्श्वनाथके जन्म कल्याणकमें धरतीसें निकालके पार्श्वनाथके घरमें इंद्र और देवताओंने माल देनेंसें पुराना सिक्का नहि मिलाता है, यह लिखना जैनमतानुसार है. और अनादि कालकी सर्व खबर और यथार्थ स्वरूप इस कालका अल्प वुद्धिवान् इतिहास लिखनेवाले नहि कह शकते है तो फिर इनके लिखनेसे वहुत कालकी प्राचीन वातां जैनमतकी गलित नहि हो शक्ती है; और जो इतिहासतिमिरनाशकवाला लिखता है कि इतना वडा घोमा और स्त्री कहांसे मिली होगी तो हम पुछते है कि क्या घोमा, स्त्री वमे होनेकी नास्ति है, यह तो प्रसिद्ध है कि जैसा पुरुष वमा होता हे तैसी स्त्रीनी वमी होती हे.

और जो इतिहासवालेको यह फिकर हुआ कि धरति थोडी और वस्ति वहुत सोभी अक्कलकी अजीर्णता हे क्योंकि इस दुनिया उपर अनंत काल वित्या है क्या जाने समुद्रका कहांसें आ;

ना हुआ है और कहां कहां जलने जमीन रोकी है. जैनमतके शास्त्रमें लिखा है कि आगे इस समुद्रका पानी इहां नही था, महासागरमेंसें सगर चक्रवर्त्ती लाया. अंग्रेजोने इस समुद्रका दक्षिणादि किनारा नहि पाया है, और जो भूगोलादि कल्पन करा है सोभी अपनी अक्कलकी अधिकारतासें, परंतु परोक्ष वातो इनकी अक्कलसें रद नहि होती है, और कालदोषसें जैन मतके सर्व शास्त्र न रहनेसें और यथार्थ अर्थ वतानेवाले आचार्यके अभावसें जैन शास्त्र जूठे नहि हो सक्ते है. जैनशास्त्रका उपदेष्टा अगरह दूषण रहित था इस वास्ते जैन मतके शास्त्र सच्चे है तथा जैन मतमें जैसा त्याग, वैराग्य और संयमकी वारीकी और वंदोवस्त है और जिस जिस अपेक्षासें जो जो कथन करा है सो सो वाचनेवालेका चित्तको चमत्कार उत्पन्न करता है. क्या वेद और क्या अन्य शास्त्र, सर्व जैन मतके शास्त्र आगे निर्माल्य लगता है, यह मेरा कहना तव सत्य मालुम होवेगा जव जैनमतका शास्त्र परीक्षा करनेंवाला पढेगा. इतिहासतिमिरनाशकका लखनेवाला लिखता है कि जैन और वौद्ध एक मत है, सो उनकी वमी भूल है क्योंकि जैन और वौद्ध मतमे इतना अंतर है. कि जैसा रात और दिनमें है. जेकर इतिहासतिमिरनाशकके लिखनेवाला जैन और वौद्ध मतका तत्वको जानता तो ऐसा कदापि न लिखता, आजसें २४१२ वर्ष पहिलां महावीर भगवंतका पावापुरीमें निर्वाण हुआ, जव श्रीमहावीर विद्यमान थे तव वौद्ध मतका शाक्यसिंह गौतम नामका कोइ गुरु नहि था; निःकेवल इतिहास और तवारीख लिखने वालोंने महावीर भगवंतकाही शाक्यसिंह गौतम करके लिखा है.

इतिहास तिमिरनाशकका लिखनेवाला शाक्यमुनिकी स्त्रीका नाम यशोधरा लिखता है. श्रीमहावीरके गृहस्थवासकी स्त्री-

का नाम जैनमतके शास्त्रमें यशोदा लिखता है यही मिलता है परंतु ललित विस्तरा नामके बौद्ध मतके शास्त्रमें शाक्यमुनिकी स्त्रीका नाम गोपा लिखा है, इस वास्ते लोकोंने श्रीमहावीर स्वामिकोंही शाक्यमुनिके नामसें लिखा है.

निन्हवोका स्वरूप.

भगवंतश्री महावीर स्वामिको केवल ज्ञान हुआ जब १४ चौदह वर्ष हुए तब भगवानका शिष्य जमालि नामा प्रथम निन्हव हुआ, निन्हव उसको कहते हैं जो भगवंतके कहे ज्ञानमेंसें एक वा दो वचन न श्रद्धे. इस जमालिनें भगवंतका एक वचन नहि माना. भगवंततो निश्चय मतसें क्रिया काल और निष्टाकाल अर्थात् क्रिया और तिस क्रियासें उत्पन्न हुआ कार्य एकही समयमें मानना कहते थे, और जमालीनें व्यवहार नयके मतको मानके क्रिया और कार्य भिन्न भिन्न कालने मानके पूर्वोक्त श्रीमहावीरके वचनको मिथ्या ठहराये. जमालीने अपना मत श्रावस्तीनगरीमें निकाला, परंतु जमालीका मत जमालीके साथही नष्ट हो गया, जमालीके मरां पीछे इस मतवाला कोइ नहि रहा. इति प्रथमो निन्हवः.

श्रीमहावीरको केवलज्ञान हुआ जब सोलह १६ वर्ष हुए तब राजगृह नगरमें तिष्यगुप्त नामा दुसरा निन्हव हुआ, सो वसु आचार्यका शिष्य था. तिसको आत्मप्रवाद पूर्वक आलावा पढते हुएको यह श्रद्धान हुआ जो आत्माका एक अंतका प्रदेश है. सोइ जीव है. तब तो गुरु प्रमुख वहुत बहुश्रुतोनें इनको समजाया परंतु हट नही छोडा. जब तिष्यगुप्तको अमलकल्पा नगरीके मित्रश्री श्रावकने समजाया तब हठ छोड दीया. इसका पंथभी नहि चला. इति द्वितीय निन्हवः.

श्रीमहावीरके निर्वाण पीछे जब २१४ वर्ष गये तब आर्याषाढ आचार्यके शिष्य तीसरे निन्हव हुए. आर्याषाढ काल करे देवता हो कर फेर तत्काल अपने शरीरमें प्रवेश करके अपने शिष्योंको पढाता रहा. जब पढना पुरा हुआ तब अपना स्वरूप कह कर शरीरकों छोडके देवलोक चला गया. तब शिष्योंनें परस्पर वंदना करनी छोड दीनी; उनका संशय हो गया, क्या जाने साधु साधु है कि मृतके साधुके शरीरमें देवता प्रवेश करके साधु बन रहे है, आर्याषाढ आचार्यवत्. इस वास्ते इनको अयुक्तवादी निन्हव नाम पडा. जब राजगृहमें आये तब मौर्यवंशी बलभद्र राजा श्रावकनें समजाए तब हठ छोड दीआ. इनकाभी पंथ नहि चला इति तृतीयो निन्हवः.

श्री महावीरके निर्वाण हुए जब २२० वर्ष हुए तब समुच्छेदक वादी अर्थात् क्षणिकवादी अश्वामित्र नामा मिथिलानगरीमें चौथा निन्हव हुआ. इसको राजगृहमें महेसूल लेनेवाले श्रावकोंनें समजाया. परंतु इसका मत बौधोनें स्वीकार किया. इस वास्ते बौधोमें योगाचार मत क्षणिकवादी है परंतु इस अश्वमित्रसें मत छोड दीआ. इति चतुर्थो निन्हवः.

श्रीमहावीरके निर्वाणको जब २२८ वर्ष हुए तब दो क्रिया वेदनेमें एक साथ उपयोग माननेवाला गंगदत्त नामा पांचमा निन्हव हुआ. महागिरि आचार्यके धनदेव नामा शिष्यका वो शिष्य था. तिसके शिरमें टहरी (ताल) थी. आश्विनी मासमें नदी उतरतेके शिरमें सूर्यकी धूप लगी और पगोमें ठंमा जल लगा तब कहने लगा कि मेरा एक समयमें दोनुं जगे उपयोग है. इस वास्ते में एक समयमें दो क्रियाका मत स्थापन करने लगा, गुरुका समजाया न समजा. फिरता हुआ राजगृह नगरमें मणिनाग यक्षके मंदिरमें आया, तिहां अपना मत लोगोके आगे कहने लगा.

तब मणिनाग यक्षने कहाकि ज्नगवंत श्री महावीरनें इसीनें ज-गेपर एक समयमें एक क्रिया वेदनेका एक उपयोग कहा था, तुं क्या उनसेंज्नी अधिक ज्ञानी है ? हठ गेम दे नहि तो मार डालुंगा. तब मरके लिये और गुरुओके समजानेसें मतका हठ गेम दिया. इति पांचमो निन्हवः.

श्रीमहावीरके निर्वाण पीछे जब ५४४ वर्ष गये तब रोहगुप्त नामा बठा निन्हव हुआ. श्रीगुप्ताचार्यके शिष्य रोहगुप्तनें अंतरजीका नगरीमें बलश्री राजाकी सज्नामें पोटशाल परिव्राजकको जितने वास्ते जीव, अजीव, नोजीव, ये तीन राशी प्ररूपी परिव्राजकको जिता. जब गुरु पास आया तब गुरुने कहा, तीसरी रासी "नोजीव" नहि. तुं राजाकी सज्नामें फिर जाकर कह दे "नोजीव" है. मैंने जूठ तो नहि कहा है ? तब गुरुने राजाकीके "नोजीव, नहि. तब रोहगुप्त अज्निमानमें कहने लगा कि सज्नामे रोहगुप्तको जूठा ठहराया. परंतु अज्निमानसें रोहगुप्तनें अपना मत गेडा नहि. तब गुरुनें उसको संघसें बाहिर किया. तब तिस रोहगुप्तनें वैशेषिक मत चलाया, जो कि ब्राह्मण लोगोंमें नवीन न्याय मत करके प्रसीद्ध है, यह नहि समजा. इति बठो निन्हवः,

श्री महावीरके निर्वाण पीछे जब ५८५ वर्ष गये तब गोष्ठमाहिल नामा सातमा निन्हव हुआ. इसनें दो बातां अज्निमानसें नहि मानी. एक तो जीवके कर्म आत्माके उपरलेही प्रदेशोंके साथ बंध होते है, और दुसरा, प्रत्याख्यानमें कालकी मर्यादा नहि करनी. यह नहि समजा. इति सतमा निन्हवः

इन बातोंका विशेष स्वरूप देखना होवे तो विशेषावश्यककी टीका देख लेनी.

श्री महावीरके निर्वाण पीछे जब ६०९ वर्ष गये तब आठमा महानिन्हव, महाविसंवादी शिवभूति बोटिक हुआ. तिसकी उत्पत्ति ऐसी है.

रथवीरपुर नगरके राजाका शिवभूति नामा वडा योद्धा सेवक था. राजाको बमा वल्लभ था. एक दिन अपनी स्त्रीसें गुस्से हो कर, और राजाको विना पुछे श्रीकृष्णसूरि आचार्यके पास दीक्षा ले लीनी, तिहांसे अन्यत्र विहार कर गया. कालांतरमें फिरकर तिसी नगरमें गुरुके साथ आया, तब राजानें अपने पास बुलाया. दर्शन किया, और एक रत्नकंबल तिसको दीया, तब तिसनें गुरुको दिखलाया. गुरुने कहा, इतने मोलका वस्त्र साधुको रखना योग्य नहि, जला अब तुं इसको ओढ ले, तब तिसने तिस रत्नकंबलको बांधके रखे लिया; जब कोइ पास न होवे तब तिस रत्नकंबलको खोलके देख लेता था, ममत्वसें खुशी मानता था. एक दिन गुरुने देखा तब विचारकि इसको रत्नकंबल पर ममत्व हो गया है, तब गुरुने तिसका विना पुछे तिस कंबलके टुकमे करके पग लुंछनेको साधुओंको दे दिये. जब शिवभूतिनें कंबलके टुकमे देखे तब बहुत क्रोधमें आया, परंतु गुरुसें कुच्छ जोर न चला. एक दिन श्रीकृष्णसूरि आचार्यनें जिनकल्पका वर्णन किया यथा जिनकल्पी मुनि आठ तरेके होते है तिनमेंसें सर्वोत्कृष्ट जिनकल्पीको दो उपकरण होते है. रजोहरण १ मुखवस्त्रिका २ तब शिवभूति सुनके बोला के जिनकल्पीका मार्ग आप क्यों नहि पालते हो? तब श्री कृष्णसूरिनें कहा—श्रीजंबूस्वामिके निर्वाण पीछे भरतखंममें दस बोल व्यवच्छेद हो गये है—

परिहारविशुद्धि(?) यथाख्यात चारित्र १ सूक्ष्मसंपराय चारित्र २ परिहारविशुद्धि चारित्र ३ परमावधि ज्ञान ४ मनःपर्याय ज्ञान ५ केवल-

ज्ञान ६ जिनकल्प ७ पुलाक लब्धि ८ आहारक लब्धि ९ मुक्ति होना १०.

इस वास्ते जिनकल्प इस कालमें व्यवच्छेद है. तब शिवनूति बोला तुम कायर हो, मैं जिनकल्प पालुंगा. गुरुनें बहुत समजाया, सो विशेषावश्यकसें जान लेना. तब शिवनूति सर्व वस्त्र गेमके नग्न हो गया. तब तिस शिवनूतिकी बहिन उत्तरा नामे थी, तिसनेंनी नाइकी देखा देख वस्त्र फेंक दीए, और नग्न हो गइ. जब नगरमें निक्षाको आइ तब वेश्याने झरोंखेसें उसके उपर एक वस्त्र ऐसा गेरा, जिस्सें उसका नग्नपणा ढांका गया. तब नाइको कहने लगी कि मुजको देवांगनानें वस्त्र दिया है. जब नाइकोंनी नग्न फिरती बुरी लगी, तब कहने लगा तुं वस्त्र रख ले, तेरेको (स्त्रीको) मुक्ति नहि. तिस शिवनूतिको दो चेले हुए, कौडिन्य. १ कोट्टवीर. २ तब तिनके चेले नूतिवलि और पुष्पदंतनें श्रीमहावीरसें ६८३ वर्ष पीछे ज्येष्ट सुदि ५ के दिन तीन शास्त्र रचे. धवलनामा ग्रंथ ७०००० सित्तेर हजार श्लोक प्रमाण, जयधवल नामा ग्रंथ ६०००० साठ हजार श्लोक प्रमाण, महाधवल नामा ग्रंथ ४०००० चालीस हजार श्लोक प्रमाण. ये तीनों ग्रंथ कर्णाटक देशकी लिपीमें लिख गये. और शिवनूतिके नग्न साधु बहुलताइसें कर्णाटक देशको तर्फ फिरते है. क्योंकि दक्षिण देशमें शीत थोमा पमता है. जब कालांतर पाके मतकी वृद्धि हो गइ तब नगवंतसें १००० हजार वर्ष पीछे इस मतके धारक आचार्योंके चार नाम रखे. नंदी, सेन, देव, सिंह जैसे पद्म नंदी १ जिनसेन २ योगींद्र देव ३ विजयसिंह ४ इनके लगनग कुंदकुंद, नेमचंद, विद्यानंदी, वसुनंदी आदि आचार्यो जब हुए तब तीनोंने श्वेतांबरकी हीनता करने वास्ते मुनिके आचार व्य-

वहारके स्वकपोलकल्पित अनेक ग्रंथ बनाये. जिस्सें श्वेतांबरोके कोइन्नी साधु न माने. बहुत कठिन वृत्ति कथन करी. परतुं यत नहि समजके परोशीके कुशौन करनेको अपना नाक कटवान अच्छा नहि. दिगंबरोनें कठिन वृति कथन करके श्वेतांबरोकी निंद तो करी, परंतु अपने मतका साधुओका सत्यानाश कर डाला ऐसी वृत्ति पालनेवाला न्नरतखंममे इस पंचम कालमें हो नहि शकता है. तथा एक ओर मूर्खता करी, जो वृत्ति चतुर्थ कालके वज्रऋषन्न संहननवालोंके वास्ते थी, सोइ वृत्ति पंचम कालके सेवार्त्त संहननवालोके वास्ते लिख मारी. जब दिगंबरोमें कशा न्नत्पन्न न्नइ तब इनके चार संघ न्नये. काष्ठासंघ १ मूल संघ २ मा थुर संघ ३ गोप्य संघ ४. चमरी गायके वालोकी पीछी काष्ठा संघमे रखते है, मूल संघमें मोरपीछी रखते है, माथुर संघमें पी छी रखते नहि है, ओर गोप्य संघ मोरपीछी रखते है. गोप्य सं स्त्रीकोन्नी मोक्ष करते है, शेष तीन नहि करते हैं गोप्य वंदना क रने वालेको धर्मलान्न कहते है, शेपतीन धर्मवृद्धि कहते है. अ इस कालमें इस मतके वीश पंथी, तेरापंथी, गुमानपंथी इत्यादि न्नेद हो रहे है. तीनमें वीशापंथी पुराने है. शेप दोनो नवीन है इति अष्टमो निन्हवः

ढुंढकमतकी उत्पत्ति　इस पीछे संवत् ११६९ में पुनमीआ संवत् १२१ में अचलीआ, संवत् १२३६ में साढपुनमीआ, सं वत् १२६० में आगमीआ, संवत् १२०४ में खरतर, संवत् १६३ में पासचंद हुआ. इनके वेषमें विशेष फर्क नहि है. जिन प्रतिमा की पूजामेंन्नी फर्क नहि है, किंतु किसी वातकी श्रद्धामें फरक है. सो खेंचातान नहि करता सो अच्छा है. इनके शिवाय लुंपक और ढुंढक तथा तेरापंथी ढुंढक ये तीनो पंथ गृहस्थके चलाये है

इनके न तो देव है, और न गुरु है. बहुती वातां इनके मतोंमें स्वकपोलकल्पित है. इनका वेषभी जैनमतका नहि है, इनकी उत्पत्ति ऐसी है.

गुजरात देशके अहमदाबाद नगरमें एक लौंका नामका लिखारी यतिके उपाश्रयमें पुस्तक लिखके अजीविका चलाता था. एक दिन उसके मनमें ऐसी बेइमानी आइ जो एक पुस्तकके सात पाना बिचमेंसें लिखने गेड दीए, जब पुस्तकके मालिकने पुस्तक अधूरा देखा तब लुंके लिखारीकी बहुत भंडी करी और उपाश्रयमेंसें निकाल दिया, और सबको कह दिया कि इस बेइमानके पास कोइभी पुस्तक न लिखावे. तब लुंका आजीविका भंग होनेसें बहुत दुःखी हो गया. और जैनमतका बहुत द्वेषी बन गया. परंतु अहमदाबादमें तो लुंकेका जोर चला नहि, तब तहांसें ४५ कोस पर लिंबडी गाम है वहां गया. तहां लुंकेका संबंधी लखमसी वाणिया राज्यका कारभारी था. तिसको जाके कहा कि भगवंतका धर्म लुप्त हो गया है; मेंनें अहमदाबादमें सच्चा उपदेश करा था. परंतु लोकोंनें मुजको मारपीटके निकाल दिया. जेकर तुम मेरी सहाय करो तो मैं सच्चे धर्मकी प्ररूपणा करुं. तब लखमसीनें कहा तुं लिंबडीके राज्यमें बेधडक तेरे सच्चे धर्मकी प्ररूपणा कर. तेरे खानपानकी खबर मैं रखुंगा. तब लुंकेनें संवत् १५०८ में जैन मार्गकी निंदा करणी शुरू करी. परंतु २६ वर्ष तक किसीनें इनका उपदेश नहि माना. पीछे संवत १५३४ में अकलका अंधा भूणा नामक वाणिया लुंकेको मिला, तिसनें लुंकेका उपदेश माना. लुंकेके कहनेसें विना गुरुके दिए वेष पहना और मूढ लोगोंको जैन मार्गसें भ्रष्ट करना शुरु किया. लोंकेनें एकत्रीश शास्त्र सच्चे मानें, और व्यवहार सूत्र सच्चा

नहि माना, और एकत्रीस सूत्रोंमें जहां जहां जिनप्रतिमाका अधिकार था तहां तहां मन कल्पित अर्थ कहने लगा. इस तरें कितनेक लोगोंकों जैन मार्गसें भ्रष्ट करा. भूणका शिष्य संवत १५६७ में रूखजी हुआ. तिसका शिष्य संवत् १६ ६ में वरसिंह हुआ. तिसका शिष्य संवत् १६४९ में महा सुदी १३ गुरूवार प्रहर दिन चमे जशवंत हुआ. इसके पीछे संवत् १७०९ मां वजरंगजी लुंपकाचार्य हुआ. तिसके पीछे सुरतके वासी वोहोरा वीरजिके वेटी फुलांवाइकी गोदी लीए वेटे लवजी नामकनें दिक्षा लिनी. दीक्षा लिया पीछे जब दो वर्ष हुए तब दस वैकालिकका टवा पढा. तव गुरूको कहने लगा तुम साधुके आचारसें भ्रष्ट हो इसी तरे कहनेसें गुरुसें लडाइ हुइ, तब लुंपक मत और गुरुकुं वोसराया. और रीप थोभण और सखीओजीकों वहकाके अपने साथ लेके स्वयमेव दीक्षा लिनी, और मुहडे पाटी बांधी. इसका चेला सोमजी तथा कानजी हुए, और लुंपकमति कुंवरजीके चेले धर्मसी, श्रीपाल, अमीपालनेंभी गुरुको छोडके छोडके स्वयमेव दीक्षा लिनी. तिनमें धर्मसीनें अष्ठ कोटी पच्चखाणका पंथ चलाया सो गुजरात देशमें प्रसिद्ध है. और लवजीके चेले कानजीके पास गुजरातका एक धर्मदास छीपी नामक दीक्षा लेनेकुं आया, परंतु कानजीका आचार उसनें भ्रष्ट जाना. इस वास्ते मुहके पाटी बांधके वोभी साधु वन गया. इनके रहनेका मकान ढुंढा अर्थात् फुटा हुआ था इस वास्ते लोकने ढुंढक नाम दिया. धर्मदास छीपीका चेला धनाजी हुआ. तिसका चेला भूधरजी हुआ, तिसके चेले रघुनाथ, जैमलजी, गुमानजी हुए. इनका परिवार मारवाडमें है. रघुनाथके चेले भीखमनें तेरापंथी मुहबंधेका मत चलाया लवजिका चेला सोमजी, तिसका चेला हरिदास, तिसका चेला वृंदावन, तिसका चेला भवानीदास, तिसका चेला मलूकचंद, ति-

सका चेला महासिंह, तिसका चेला खुशालराय, तिसका चेला उजमल, तिसका चेला रामलाल, तिसका चेला अमरसिंह, इसके चेले पंजाब देशमें मुह बांधी फिरते है. और कानजीके चेले मालवा और गुजरातमें मुह बांधी फिरते है. और धर्मदास छीपीके चेले गुजरात, मालवा और मारवाममें मुंह बांधी फिरते है. इति प्रवेशिका.

ऐसे कुमाताओके मतोके आग्रहसें दूर होकर हेयोपादेयादि पदार्थ समूहके परिज्ञानमें जीवको प्रवीण होना चाहिये, और जन्म, जरा, मरण, रोग, शोकादिकों करके पीमितको स्वर्ग मोक्षादि सुख संपदके संपादन करणेमें अवंध्य कारण ऐसा धर्मरत्न अंगीकार करणा उचित है, क्योंकि इस अनादि अनंत संसार समुद्रमें अतिशय करके ज्रमण करणेवाले जीवांको प्रथम तो मानुष्य जन्म, आर्यदेश, उत्तम कुल, जाति, स्वरूप, आयु पंचेंद्रियादि सामग्री संयुक्त पावणा डुर्लन्न है. तहांन्नी मानुष्यपणेमें अनर्थका हरणहार सतधर्म पावणा अति डुर्लन्न है. जैसे पुण्यहीन पुरुषको चिंतामणि रत्न मिलना डुर्लन्न है तैसें एकवीश गुण करी रहित जीवको सर्वज्ञ प्ररूपित सत्धर्म मिलना डुर्लन्न है.

इस वास्ते प्रथम तिन एकवीश गुणांका स्वरूप किंचित मात्र लिखते है, क्योंकिं प्रथम न्नव्य जीवांको अपणेमें धर्मी होनेकी योग्यता उत्पन्न करनी चाहिये. जेकर प्रथम योग्यता उत्पन्न न करे तबतो धर्मकी प्राप्तिन्नी प्रथम न होवे. जैसे अयोग्य न्नूमिमें बीज बोया निष्फल होता है तथा जैसे नींव अर्थात् पाया दृढ किया विना जो महा प्रसाद बनाना चाहता है वो जबतक पाया दृढ नहि करता है तब तक विशिष्ट प्रासाद

एकवीश गुणका स्वरूप.

स्थित नहि हो शकता है. ऐसेही योग्यता विना गृहस्थ और साधुका धर्मभी प्राप्त नहि होता है. हम देखते और सुनते है, बहुत मतोवाले बहुते जीवांको अपने मतमें लाने वास्ते और जातिसें भ्रष्ट करनें वास्ते अपना खाना खिला देते है, अपने मतमें और अपनी जातिमें दाखल कर देते है. जब वे उनके मतमें मिलते है तब बेवकुफ बंदुके लेकर जंगलोमेंसें जानवर मारकर खाने लगते है, और अंग्रेजो सरिखा वेष पेहनके ऐसे घमंडसे चलते है कि भूमिकोभी धमधमा देते है, और मन चाहेसो बकवाद करते है. बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्माका किंचित् स्वरूपभी नहि जानते है. और वेदांति कितनेक जीवोकी एसी बुद्धि बिगाडते है. कि वे व्यवहार सत् कर्मोसें भ्रष्ट हो जाते है. और कितनेक मतवाले स्त्रीका भोग, मांस खाना, बदफैली करणी दुसरे मतवालोको कतल करणा, उनके पुस्तकोको जला देना उनके मंदिर, मूर्ति तोड फोड अपने मतका स्थान बनाना, इत्यादि काम करके अपने आपको स्वर्ग जानेवाला मानना यही धर्म मानते है. परंतु हम सब मतवालोंसे नम्रता पूर्वक विनती करते है कि सर्व मतवाले अपनी जाति, अपने मतमें कहे बुरे कामोको छोडके अपने आपको योग्यता प्रगट करी धर्मके अधिकारी बनावे, और सर्व पशु पक्षीओ और मनुष्यो उपर मैत्रीभाव करे और देवगुरु धर्मकी परीक्षा करे तो यथार्थ धर्मकी प्राप्ति होवे. इस वास्ते हम इहां प्रथम योग्यताका स्वरुप लिखते है.

प्रथम इक्कीस गुण जिस जीवमें होवे अथवा प्राये नवीन उपार्जन करे तिस जीवमें उत्कृष्ट योग्यता जाननी. और थोडेसें थोडे इक्कीस गुणोंसे चाहो कोइ दस गुण जीवमें होवे तिसको जघन्य योग्यतावाला जानना. ११—१२—१३—१४—१५—१६—

१७—१८—१९—२० शेप गुणवालेको मध्यम योग्यतावाला जानना. तीन इक्कीस गुणमेंसें जिसमें दसगुणोंसें न्यून गुण होवे वो जीव धर्मकी योग्यतासें रहित जानना. वे इक्कीस गुण ये है.

अक्षुद्र १ रूपवान् २ प्रकृति सौम्य ३ लोकप्रिय ४ अक्रूरचित्त ५ जीरु ६ अशठ ७ सुदाक्षिण्य ८ लज्जालु ९ दयालु १० मध्यस्थ सोमदृष्टि ११ गुणरागी १२ सत्कथ १३ सुपक्षयुक्त १४ सुदीर्घदर्शी १५ विशेषज्ञ १६ वृद्धानुग १७ विनीत १८ कृतज्ञ १९ परहितार्थकारी २० लब्धलक्ष्य २१. इनका किंचित् मात्र खुलासा लिखते है.

अक्षुद्र—यद्यपि क्षुद्र शब्द तुच्छ, क्रूर, दरिद्र, लघु, प्रमुख अर्थोंमें वर्तते है तोजी इहां क्षुद्रको अगंजीर कहते है. तुच्छ बुद्धि, उत्तान मति, अनिपुण बुद्धि; ये इस अगंजीरपणेका पर्याय नाम है. अगंजीर पुरुष धर्म नहि आराध शकता है. जीमवत् क्योंकि धर्म जो है सो सूक्ष्म बुद्धिसें साध्या जाता है, और तुच्छ बुद्धिसें धर्मका घात हो जाता है. इस वास्ते अक्षुद्र पुरुष सूक्ष्मदर्शी, अच्छीतरे विचारके कामका करणेवाला इहां धर्म ग्रहण करणे योग्य होता है, सोमवत्. जीम सोमकी कथा प्रसंग्न शास्त्रसे जाननी सर्व दृष्टांत तहांसे जानने. इहां निःकेवल गुण और नाम मात्र लिखेंगे. इति प्रथमो गुणः

दुसरे रूपवान गुणका स्वरूप लिखते है.

संपूर्ण होवे अंगोपांग—तहां अंग, शिर, उर, उदर प्रमुख है और उपांग अंगुलि आदिक है. ये पूर्वोक्त अंगोपांग जिसके संपूर्ण होवे और खंडित न होवे वो रूपवान् कहे जाता है. पांचो इंद्रिय सुंदर होवे. काणां, डेफर, बहिरा, गुंगादि न होवे और शोजनीक संहनन अर्थात् शरीर सामर्थ्यवाला जिसका होवे वो

रूपवान् कहे जाते है. सामर्थ्य संहनन वाला तप संयमादि अनुष्ठान करनेमें शक्तिमान होता है. पूर्वोक्त रूपवान् धर्म करणेको समर्थ होता है, सुजातवत्. जेकर यथोक्त रूपवान् न होवे तो प्राये सत् गुणका भागी नहि होता है. यथा " विषमसमैर्विषम समा, विषमैर्विषमाः समैः समाचाराः । करचरणदंतनासिका, वक्त्रोष्टनिरीक्षणैः पुरुषाः ॥ १ ॥ भावार्थ–जिस पुरुषके हाथ, पग, दांत, नासिका, मुख, होठ, आंख वांके टेढे होवे वे पुरुष कपटी धूर्त्त, वक्राचारी होते है. और ये पूर्वोक्त हाथादि सम–सूधे सुंदर होवे वे पुरुष सरलचारी और धर्मके योग्य होते है. यह वहुलताका कथन है, तथा आचारांगकी टीकामेंभी कहा है कि " यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति ". अर्थात् जहां सुंदर रूप होवे तहां गुण वास करते है. यह गुण तो पूर्व जन्म के पुण्योदयसें होता है विवेक विलासमें श्री जिनदत्तसूरिजी लीखते है, जिसका हस्त रक्त होवे सो धनवंत होवे, और नीला होवे सो मद्यपीने वाला होवे, और पीला होवे सो परस्त्रीगामी होवे, और काला होवे सो निर्धन होवे, और जिसका नख श्वेत होवे सो यति होवे, हाथ सरीखे नख होवे सो निर्धन होवे, पीले नख होवे सो रोगी होवे फुल सरीखे नख होवे सो दुष्ट होवे, व्याघ्र सरीखे नख होवे सो क्रूर होवे. इस वास्ते रूपवानही धर्मका अधिकारी है. इति स्वरूपवान् द्वितीयो गुणः.

प्रकृति सौम्य नामा तिसरा गुण कहते है. प्रकृति अर्थात् स्वभावही परंतु कृत्रिम नहि है सौम्य स्वभाव जिसका सो अम-रामणी, विश्वसनीय, सुंदर रूपवाला होवे, और पापकर्म, आक्रोशनत्र, हिंसा चोरी आदिमें न प्रवर्त्ते, एतावता निर्वाह होते हुए पापमें न प्रवर्त्ते. सुखे [illegible] विना आराधने योग्य होवे और अन्य जीवों

वालेकी समज और बुद्धिन्नी ऐसी होती है. क्षमा सर्व सुखोंका मूल है, और कोप सर्व दुःखका मूल है, और विनय सर्व गुणोंका मूल है; और मान सर्व अनर्थोका मूल है. जैसे सर्व स्त्रीयोंमें अर्हंतकी माता प्रधान है, मणीओमें जैसें चिंतामणि प्रधान है, लताओमें जैसें कल्पलता प्रधान है, तैसें सर्व गुणोंमें क्षमा प्रधान है. क्षमा धारण करी परिसह और कषायको जीती अनंत जीव आदि अनंत, परम पदको प्राप्त हुए है. इस हेतुसें पुरुषको क्षमावान् होना चाहिये. और क्षमावाली पुरुष प्रकृति सौम्य गुणवाला होता है, और ऐसें गुणवानकी संगतसें अन्य जीवन्नी प्रशम गुणवान् हो शकते है. यथा–

संततायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वातौ सागरशुक्तिसंपुटगतं तज्जायते मौक्तिकं,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ॥१ ॥

इस वास्ते पुरुषको प्रकृति सौम्य होना चाहिये इति तृतीयो गुणः

लोकप्रिय गुणका स्वरूप लिखता है.

इस लोक विरुद्ध १ परलोक विरुद्ध २ उन्नय लोक विरुद्ध३ ये तीनो वर्जे. तीनमें इह लोक विरुद्ध नीचे मुजब है.

परकी निंदा करणी, विशेष करके गुणवंतकी निंदा करणी सरलकी और धर्मवालेकी हांसि करणी, बहुत लोकोंके पूजनीककी ईर्ष्या करणी, बहुत लोगोंका विरोधीकी साथ मित्रता करणी, देशके सदाचारका उल्लंघन करणा, निषिद्ध वस्तुका नोग करणा, दानाकी निंदा करणी, नले पुरुषको कष्ट पडे तो हर्ष मानना, नले

सामर्थ्य अच्छे पुरुषको संकटमें पमे सहाय न करणा; इत्यादि इह लोक विरुद्ध धर्मका अधिकारी वर्जे.

परलोक विरुद्ध यह है: खर कर्मादि खेती करावणी, कोटवाल पणा, महसुलका ठेका लेना, गामका ठेका लेना, कोयला कराय वेचना, वन कटाय वेचना, इत्यादि महा हिंसक काम विरति नहि तोभी सुकृति न करे. ये काम यद्यपि इस लोकसें विरुद्ध नहि तोभी परलोकमें अच्छी गतिके नाशक होनेसें परलोक विरुद्ध है.

उभय लोक विरुद्ध यह है; जुआ खेलनादि, तद्यथा. " द्यूतं च मांसं च सुरा च वेश्या पापर्द्धि चौर्यं परदारसेवा । एतानि सप्तव्यसनानि लोके, पापाधिके पुंसि सदा भवन्ति " ॥१॥ इहैव निंद्यते शिष्टैर्व्यसनासक्तमानसः, मृतस्तु दुर्गतिं याति, गतत्राणो नराधमः ॥ २ ॥ अर्थ—प्रथम, जुएका खेलना वमा पाप है. इस लोकमें जुवारीयेंकी इज्जत नहि है. जुआ खेलनेसें दीवालीये हो जाते है, राजे राज्य हार जाते है, चोरि करते है, वेश्या और परस्त्रीगमन करते है, वालक वच्चेको मारके उसका झवेरात उतार लेते है, मांस खाते है, और मद्य पीते है, लुच्चे और वदमासोंकी मंमलीमें रहते है, धर्म कर्मसें भ्रष्ट हो जाते है, मरके नरकादि गतिमें उत्पन्न होते है, इस वास्ते जुएका खेलना उभय लोक विरुद्ध है. दुसरा. मांसका खानाभी उभय लोक विरुद्ध है, क्योंकि मांस खानेसें दया नष्ट हो जाती है. जो अच्छी पशु, पक्षी देखनेमें आता है तिसहीको खानेकी इच्छा होता है, मांस खानेवालेका हृदय ऐसा कठोर हो जाता है कि मनुष्य मारणेमंभी फिरक नहि करता है. जितने मांसाहारी है वे सर्व निर्दय है जैसे भील, कोली, मैणा, धांगम, भंगी, ढेड, चमार, धाणक, गंधील, कंजर, वाघरी,

प्रमुख निर्दय है सो मांस खानेसें है, और जो मांसाहारी नहि है वे सर्व प्राये दयावान् है और नरम हृदय वाले हैं, यह बात हम प्रत्यक्ष देखते है. जगतमें सर्वसें गरीब जानवर न्नेम अर्थात् गाडर घेटा देखनेमें आता है. एसेका जो मांस न्नक्षण करे तो खुंखार अर्थात कठीन हिंसक स्वन्नाववाला बन जाता है, और जो आगे विना गुनाह हजारो लाखो बालबच्चे स्त्री पुरुषोंको कतल कर गये है, वे सर्व मांसके खानेकी निर्दयतासें ऐसे काम करते थे, जेकर कोई मांसाहारी मनुष्यमात्रकी दयावालेन्नी है तोन्नी कृपण, अनाथ, दीन पशु पक्षीओकी दया तो नही है. बिचारे क्या करे उनके मत चलाने वालोंनेंही मांस खाया और खानेकी आज्ञा करी है. वेद बनानेवाले और कितनेक स्मृति बनानेवाले मांसाहारी थे और मांस खानेकी आज्ञा दे गये है. इसका तमाम वृत्तांत प्रथम खंडमें लिख आये है. मनु याज्ञवल्क्यादि स्मृतिकारक तो बेधरूक लिख गये है.

न मांसभक्षणे दोपो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेपा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥१॥

मांस न्नक्षणमें दोष नहि है और मद्य तथा मैथुनमें बी दोष नहि है. वे तो प्राणीऔनी प्रवृत्ति है सो महाफलवाली है.

यद्यपि न्नारत, न्नागवतादि ग्रंथोमें मांस न्नक्षण निषेध करा है, तोन्नी वेद स्मृतिका कहना पुराना है, और न्नारत, न्नागवत दया धर्मकी प्रबलतामें बने हुए है. इस वास्ते इनमें मांसका निषेध है और वैष्णवादि मतवाले जो मांस नहि खाते है वेन्नी दया धर्मकाही प्रन्नाव है बाकी शेष मतोवालोके देशमें दया धर्म नहि प्रवृत्त हुआ है. इस वास्ते सर्व मांसाहारी है. जो जो मांसाहारी है वे प्राये कठीण हृदयवाले है. इस वास्ते मांसका खाना

इह लोक विरुद्ध है, और परलोकमें नरकादि गतिका देनेवाला है. यदुक्तं स्थानांग सिद्धांते—" चउहिंठाणेहिं जीवा नेरया उत्ताए कम्मंप करें ति तं जहा " इत्यादि. इहां तिसरे पदमें ' कुणिमा हारेणं ' अर्थात् मांस खाने करके नरकायु उपार्जन करता है तथा " मांसाहारिणः कुतो दया. " इस वास्ते मांसका खाना उन्नय लोक विरुद्ध है.

मदिराका पान करना यहनी उन्नय लोक विरुद्ध है. मदिरा पीनेसें वुद्धि भ्रष्ट हो जाती है. मद्य पीनेवालेके मुहमें कुत्ते मुतते है. मदिरा पीनेवाला माता, वहिन, वेटीसेंनी कुकर्म करता है. ऐसी कोनसी वुरी वात है जो मदिरा पीनेवाला न करे. मदिरा पीनेवाला मरके नरक गतिमें जाता है. इस वास्ते मद्य पीना उन्नय लोक विरुद्ध है.

वेश्यागमन करनेवालेकी कोइनी जाति नहि; नंगी, चमार, कोली मुसलमीन आदि सर्वकी जुठ खानेवाला होता है. इस वास्ते उनकी कोइनी जाति नहि. वेश्यागमनसें धनका नाश होता है, वुद्धि भ्रष्ट होती है, आवरु नहि रहती है, गरमीके रोगसें शरीर गल जाता है, तिस्से कुष्ठ, नगंदर, जलोदरादि महा नयंकर रोग हो जाता है तथा परलोकमें दुर्गति होती है. इस वास्ते वेश्यागमन करना उन्नय लोक विरुद्ध है.

पापर्द्धि अर्थात् शिकार करना यहनी उन्नय लोक विरुद्ध है, क्योंकि कठोर हृदय विना शिकार नहि हो शकता है. शिकारीको दया नहि, न्याय नहि, धर्म नहि और परलोकमें उनकी नरक गति होती है. इस वास्ते शिकार करना उन्नय लोक विरुद्ध है.

चोरी और परस्त्रीगमन ये दोनो तो सर्व लोकोंमें वुरे काम

गिने जाते है, और दोनोंसें परलोकमें दुर्गति होती है, इस वास्ते उन्नय लोक विरुद्ध है.

पूर्वोक्त सातो कुव्यसनका सेवनेवाला इस लोकसें शिष्ट जनोका निंदनीय होता है, और परलोकमें दुर्गति प्राप्त करता है, इस वास्ते जो पुरुष सातो कुव्यसनका त्याग करे सो धर्मका अधिकारी होता है.

दान, विनय, शील इनो करके पूर्ण होवे. तिनमें दान देनेसें बहुते जीव वश हो जाता है. और दान देनेसें वैर, विरोध दूर हो जाता है. शत्रुभी दान देनेसें नाइ समान हो जाता है इस वास्ते दान निरंतर देना योग्य है. विनयवान् सर्वको प्रिय लगता है, और शुद्ध शीलवान् इस लोकमें यश कीर्त्ति पाता है और सर्व जनाको वल्लभ होता है, और परलोकमें सुगति प्राप्त करता है. इस वास्ते जो पुरुष सात व्यसन त्यागे और दानादि गुणों करी संयुक्त होवे सो लोकप्रिय होवे, विनयंधरवत् इति चतुर्थो गुणः

अक्रूरचित्त नामा पांचमा गुण लिखता है. क्रूर नाम क्लिष्ट स्वनावका है, अर्थात् मत्सर, ईर्ष्यादि करके दूषित परिणाम वालेका है. सोन्नी धर्मका आराधनमें समर्थ नहि होता है, समर कुमारवत्, इस वास्ते धर्मके योग्य नहि. और जो क्रूर नहि सो धर्मके योग्य है, कीर्तिचंद्र नृपवत्. इति पंचमो गुणः.

नीरु नामा बठा गुण लिखते है. इस लोकमें जो राजनिग्रह दंडादि कष्ट है और परलोकमें जो नरकगति गमना कष्ट है, तिनको नावि होतदार जानके जो पुरुष हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रहादि पापोंसें त्रास पामे, और उनमें न प्रवर्त्ते सो धर्मके योग्य होता है, विमलवत. इति षष्ठो गुणः.

अशठ नामा सातमा गुण लिखते है. अशठ उनको कहते है जो परको ठगें नहि. इस वास्ते अशठ. अमायी. विश्वासका स्थान होता है. और जो शठ. मायावीत होता है यद्यपि किंचित् पाप न करे तोभी सर्पकी तरें आत्मदोषे करी दूषित उनके विश्वास योग्य नहि होता है. इस वास्ते अशठ प्रशंसनीय होता है.—" यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रियाः. धन्यास्ते त्रितये येषां विसंवादो न विद्यते " ॥ १ ॥ अर्थ—जैसा चित्त तैसा वचन और जैसा वचन ऐसी क्रिया. ए तिनमें जिसकु विसंवाद नहि है, सो पुरुष धन्य है.

ऐसा पुरुष धर्मानुष्ठानमें प्रवर्त्तता है. तथा भावसारमहृ-भावसुंदर अपने चित्तके रंजन करनेवाले अनुष्ठानका कर्त्ता है. परंतु परके चित्तके रंजन करने वास्ते नहि करता है. क्योंकि स्व चित्तको रंजन करना बहुत कठिन है. तथा चोक्तं,

भूयांसो भूरिलोकस्य, चमत्कारकराः नराः । रंजयंति स्व-चित्तं ये भूतले ते तु पंचषाः " ॥ १ ॥ तथा, कृत्रिमैर्डंबरैश्चित्तं शक्यंतोषयितुं परं । आत्मानुवास्तवैरेव हंत कं परितुष्यति॥२॥

अर्थ—दुसरा बोहोत लोकोंकुं चमत्कार करनेवाला बहोत पुरुषो है. परंतु जे पुरुष पोताना मनकुं रंजन करे ऐसा पृथ्वीमें पांच छ पुरुष होता है. कृत्रिम आडंबरोसें दुसरेकुं संतोष करना शक्य है. परंतु आत्माकुं कोण संतोष कर सका है. इस वास्ते अशठही धर्मके योग्य होता है. सार्थवाहपुत्र चक्रदेववत्. इति सप्तमो गुणः.

सुदाक्षिण्य नामा आठमा गुण लिखते है. सुदाक्षिण्य पुरुष परोपकारमें प्रवर्त्ते. जब कोइ प्रार्थना करे तब तिनको हितकारी काम करे. भावार्थ यह है कि जो काम इस लोकमें और

परलोकमें हितकारी होवे तिसमेंही सो प्रवर्त्ते, परंतु पाप हेतु कामर्में न प्रवृत्त होवे. इस वास्तें सु अक्षर करके दाक्षिण्यको विशेषित करा है. इस गुणवाला कैसा होता है, अपणा कार्य गेरके परोपकारमें प्रवर्त ते है, इस हेतुसें हैसा पुरुष ग्राह्य वाक्य अर्थात् अनुलंघनीय आदेश होता है. ऐसे पुरुषके मनमें कदाचित् धर्म करणेकी इच्छा नहिन्नी होवे तोन्नी धर्मी पुरुषके कहनेसें धर्म सेवता है, क्षुल्लक कुमारवत्. इति अष्टमो गुणः.

नवमा लज्जालु गुणका स्वरुप लिखते हैं. लज्जावान् उसको कहते हैं जो अकार्य अर्थात् बुरा काम न करे, दूरही कुकर्मसें रहे, सो पुरुष धर्मका अधिकारी होता है. जो थोमान्नी अकार्य न करे, तथा चोक्तं, " अविगिरिवर गुरय छुंत छुय, न्नारेण जंनि पंचत्तं। न उणो कुणंमि कम्मं स पुरुमा जनका यत्नामिति. " न्नावार्थ—संन्नावना करते हैं कि सत्पुरुष मेरू समान पर्वतका न्नार करके मरण पामे परंतु नहि करने योग्य कार्य कदापि न करे. सदाचार अर्थात शोन्ननिक व्यवहारको लज्जाका हेतु मानके स्नेह बालान्नियोगादिक करके अंगिकार करी अच्छी प्रतिज्ञाको गेरुना है. क्योंकि प्रतिज्ञाका सेवना लज्जाका हेतु है, एमा तो न्नले कुलका उत्पन्न हुआ पुरुष जानता है, विजयकुमारवत् इति नवमो गुणः.

दयालु नामा दशमें गुणका वर्णन लिखते हैं. धर्मका मूल कारण दया अर्थात् प्राणिरक्षा है. यदुक्तं श्री आचारांग सूत्रे, " सेबेमि जे अइया, जे पडुपन्ना, जेय आगमिस्सा, अरहंता नगवंतो ते सव्वे एवमा इक्खंति, एवं न्नासंति, एवं पन्नवंति, एवं परूवंति, सव्वे पाणा, सव्वे नूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, न हंतव्वा, न अज्जा वेयव्वा, न परिघेतव्वा, न उद्दवेयव्वा. एस धम्मे

सुद्दे, निडए सासए. समिच्च लोय खेयन्नेहिं पवेइए " इत्य

भावार्थः—सुधर्मस्वामि जंबूस्वामिको कहते. हे शिष्य ! ...
मैंनें भगवंत श्रीमहावीरजीके मुखारविंदसें सुना है तैसें मैं
जको कहता हुं. भगवंतश्री महावीरनें कहा है कि अतीत का
में अनंते अर्हंत भगवंत हो गया है और जो अर्हंत भगवंत व
मान कालमें है और जो आगामि कालमें अनंत होवेंगे, तिन स
वेका यहि कहना हुआ है. तथा होवेगा कि सर्व प्राणी, वे इंद्रिय
तीनेंद्रीय, चतुरिंद्रीय, सर्वभूत वनस्पति, सर्व पंचेंद्रीयजीव, सर्व
सत्व अर्थात् षट्काय. पृथ्वीकाय, अप्काय. अग्निकाय, वायुकाय,
वनस्पतिकाय, त्रसकाय. इन षट्कायके जीवांको हनना नहि. तथा
इन जीवोंसे जोरावरीनें कोइ काम नही कराना. शारीरिक और
मानसिक पीडा करके उनको परितापना नहि करनी. यह
जीवअहिंसारूप शुद्ध धर्म है. नित्य है शाश्वता है, सर्व
लोकके पीडाको जाननेवाला सर्वज्ञ अर्हंत भगवंतनें कथन करा
है. तथा—

अहिंसैव परो धर्मः शेषास्तु व्रतविस्तराः।
तस्यास्तु परिरक्षार्थं पादपस्य यथावृतिः ॥ १ ॥

अर्थ—अहिंसाही परम धर्म है. शेष सर्वव्रत अहिंसाकी
[रक्षा करने] वाले है. जैसा वृक्षकी रक्षाके वास्ते बाड होती है.
अर्थात् अहिंसाकी रक्षाके वास्ते शेष सर्व व्रत है. तथा च,
अहिंसैव मता मुख्या स्वर्गमोक्षप्रसाधिनी. अस्याः संरक्ष[ण]...
... [न्या]य्यं सत्यादिपालनं ॥ २ ॥ इन श्लोकोंसे जीवरक्षा...

" जयंचरे जयंचिठे जयंमासे जयंसए जयंजुंजंतो जा-संतो पावकम्मं नबंधइ " ॥ १ ॥ व्याख्या, ईर्यासमिति अर्थात् उपयोग सहित चार हाथ प्रमाण अगली जूमि देखे और जीवोंको बचाके पग धरी चले सो यतनासें चलना कहिये. हस्त पगादिकके विक्षेप विना यतनासें खमा रहे. उपयोग पूर्वक यतनासें बैठे. अकुंचन प्रसारणादि करे. जूमिका नेत्रोंसें देखके रजोहरणादिसें प्रमार्जके पीछे शय्या करे. यतनासें सोवे. समाहित रात्रिमें प्रकाम अर्थात् अधिक शय्या वर्जे और चैत्यवंदन पूर्वक शरीर प्रतिलेखी सामायिकसूत्र, पोरसीसूत्र पठन करी सोवे यतनासें जोजन करे. ठ कारणसें जोजन करे. बहु सरस आहार न ले जोजन करे तब प्रतर सिंहादिककी तरें तरें जोजन करे. यतनासें बोले. साधु जाषासें, मृदु; कालप्राप्त, अकर्कश, अमर्मवेधिनी जाषा बोले. इस हेतुसें पापकर्म ज्ञानावरणादि न बांधे. अन्योंने पण कहा है.

न सा दीक्षा नमा भिक्षा न तद्दानं न तत्तपः
न तद्ज्ञानं न तद्ध्यानं दया यत्र न विद्यते ॥१॥

अर्थ—जिसमें दया नहि है, सो दीक्षा, जिक्षा, दान, तप, ज्ञान और ध्यान, बराबर होताज नहि.

इस वास्ते धर्माधिकारमें दयालु, शोजाजी जीववधका, यशोधर सुरेंद्रदत्त महाराजाकी तरें दारुण विपाक जानना हूआ तिनमें नहि प्रवृत्त होता है. सर्व मतावाले लोक दयाको अच्छी कहते है परंतु दयाका यथार्थ स्वरूप जानना बहुत कठिन है. दोहा " दया दया मुखसें कहे, दया न हाट बिकाय; जाति न जाने जीवकी, दया कहो किन गाय. " ॥ १ ॥ कितनेक जोले जीव कहते है और उनके शास्त्रमेंजी वेसाही लिखा है कि एक मनुष्य

मात्रकी दया करनी चाहिये, क्योंकि मनुष्य विना जितने जीव है तिनकी आत्मा अविनाशी नहि है, और जितने जीव है वे सर्व मनुष्यके नोग वास्तेही ईश्वरनें रचे है. इसकों उत्तर,

हे नोले जीव! यह समज तुमारी ठीक नही क्योंकि मनुष्य विना अन्य जीवांकी आत्मा अविनाशी नहि; इस कहनेमें कोइनी प्रमाण नहि है. प्रत्यक्ष प्रमाणसें तो जैसा मनुष्यांको मरतां देखते है तैसे पशु पक्षीओकोंनी मरते देखते है, और अनुमानसें तो तब अविनाशी मनुष्यात्मा सिद्ध होवे जब मनुष्यात्माका कोइ ऐसा चिन्ह होवे और पशु आत्मामें न होवे, सो तो है नहि. पशु पक्षीका आत्मानी अविनाशी है तिसकी सिद्धिमे अनुमान प्रमाण है, सो यह है. मनुष्यात्मासें निन्न जितने आत्मा है यह पक्ष है; सर्व अविनाशी है यह साध्य है; आत्मत्व जातिवाले होनेसें यह हेतु है; मनुष्यात्मवत् यह दृष्टांत है; इस अनुमानसें पशुओका आत्मानी अविनाशी सिद्ध होता है. तथा जिस पदार्थका उपादान कारण नहि सो अविनाशी है, सो पशु पक्षीओका आत्माकानी उपादान कारण नहि है इस वास्ते अविनाशी है, परंतु जो कोइ किसी शास्त्रमें पशु पक्षीओका आत्माकों विनाशी कह गया है सो मांस खानेकी लोलुपतासें, अविवेक बुद्धिके प्रनावसें उसने ऐसा मनमें समजा होगा कि मांस खानातो मेरेसें छुटता नहि है इस वास्ते जिसका मांस खानेमें आता है वे आत्मा विनाशी कहे तो ठीक, हमारा काम चलेगा, मांसनी खायगे और स्वर्गमेंनी जावेंगे. फिर ऐसे कुछ पंथको मांसाहारी. निर्दय. अनार्य जीव क्यों न अंगीकार करे इस वास्ते जो. मनुष्य विना अन्य सर्व जीवात्माको विनाशी मानते है वो निपुण और बुद्धिमान नहि है. कितनेक कहते है के ईश्वरने सर्व

वस्तुओ मनुष्यके भोग वास्ते बनाइ है. प्रथम तो यह कहनाई मिथ्या है क्योंकि ईश्वर किसी प्रमाणसें इस जगतका रचनेवाल सिद्ध नहि होता है. ओ कथन जैनतत्वादर्शमें अच्छी तरेंसें लिखा है जेकर विना प्रमाण मिथ्यात्वके उदयसें जगत्कर्त्ता माने और पूर्वोक्त कथन करे तब तिसको ऐसे कहना ठीक है. जब कोइ किसीकी माता, वहिन बेटीसें गमन करे, और अपनी माता वहिन, बेटीसें गमन करे, माता, वहिन, बेटीके हरके ले जावे किसीका धन चोरे, तब सरकारसे दंड और जगतमें अपयश और दंम क्यों पाता है ? जेकर उसने अनीति और अगम्यगमन कर इस वास्ते वो दंड और अपयशके योग्य है तब तो अपरावी क हेगाकि मनुष्यके भोग करा है, मुजे दंम क्यों देते हो, जेकर ये स्त्रीओ मेरे भोग योग्य है तिनके वास्ते जो ईश्वरने तुमको पर वाना लिख दिया है सो मुजे दिखलाना चाहिये. इस वातक फिर उत्तर हो तो दीजिये.

इस वास्ते हम भोले जीवोंके वास्ते लिखते है, ऐसा मत मानोगे तो उजय लोकसें भ्रष्ट, और अन्यायी बन जाओगे. इस वास्ते ऐसी कुगति त्यागके अर्हत भाषित मतको स्वीकार करो जिस्में तुमारी अंतर्दृष्टि उघरे, सत्यासत्यकी मालुम परे.

तथा कितनेक कहते है के मनुष्यके भोग वास्ते सर्व वस्तु ईश्वरने रची है, तो माकम और जुयां लीखां ये मनुष्यके श रीरको खाते है, और सिंह, व्याघ्र, बाज प्रमुख निःकवल पशु पक्षीओकाही मांस खाते है, और सिंहादिक मनुष्यका भक्षण करते है, तथा समुद्रके मच्छ लाखों मच्छकोही खाके जीते है. तथा कितनेक पशु पक्षी, घास, पात, अन्नादि खाके जीते है तो फिर यह कहना, सर्व वस्तु परमेश्वरने मनुष्यके वास्तेही रची है

सों सप्रमाण नही है. जेकर कहे, सर्व वस्तु परंपरासें मनुष्यके भोगमें आती है. घासादि खानेसें दुध तथा मांसादि होते है, वे मनुष्यके भोगमें आता है. इस तरेतो सर्व वस्तु सिंह व्याघ्रादिकके भोग वास्ते ईश्वरने रची है यह भी सिद्ध होवेगा. तद्यथा— मनुष्यके वस्तुके भोगसें मांस रुधिरादिककी वृद्धि करता है, तिस मनुष्यके शरीरको माकम, जूं, लींख व्याघ्र सिंहादि भक्षण करते है. तवतो परंपरासें भोग्य होनेंसें सर्व वस्तु परमेंश्वरनें माकड, जूं, लिंख, सिंह व्याघ्रादि जीवोंके भोग वास्ते रचे सिद्ध होवेंगे. धन्य है यह समजको ! सर्व वस्तु मनुष्यके भोग वास्ते तथा अन्य जीवोके भोग वास्ते रची है ! ईश्वरनें नहि रचे है, किंतु जैसे जैसे जीवोंनें पुण्य पापरूप कर्म करे है, तैसे तैसे अपने अपने निमित्तद्वारा सर्व जीवांको मिलते है. परंतु ईश्वर परमात्मानें किसीके भोग वास्ते कोइ वस्तु नहि रची है.

हे भोले मनुष्यो ! तुम क्यों ईश्वरको कलंक देके नरकगामी वनते हो क्योंकि जब ईश्वर आदिमें एकको राजा, एकको रंक, एक सुखी, एक दुःखी, एक जन्मसेंही अन्धा, लंगमा, लुला, वहिरा, रोगी, अंगहीन, निर्धन, नीच कुलमें जन्म और जन्मसें मरण पर्यंत महा दुःखी रचे है और कितनेक पूर्वोक्तसें विपरीत रचे है. जेकर कहोगे, कर्मानुसार ईश्वर रचता है तवतो अनादि संसार अवश्य मानना पमेगा. जेकर कहोगे, ईश्वरकी जैसी इच्छा होती है तैसा रच देता है, तवतो ईश्वर अन्यायी, निर्दय, पक्षपाती: अज्ञानी, वखेमी, कुतूहली, असमंजसकारी, असुखी, उवरंगी, व्यर्थ कार्यकारी, वालक्रीडा करनेवाला, रोगी, द्वेषी इत्यादि अनेक दूषणोंसें युक्त होवेंगे. और वे दूषणो ईश्वरमें मूर्ख-

की समज उत्पन्न करता है. फेरजी मूढमति अपणेको ईश्वरका जक्त मानता है. यह जक्तपणा ऐसा है जैसे अपणे पिताके मुख उपर बैठी मक्षीकाके उमावने वास्ते पिताके मुख उपर बैठी मक्षीको जुना अर्थात् खासमा मारणा है. मूर्ख तो जक्ति करता है परंतु पिताका नुकसान अर्थात् बेइज्जत होती नहि देखता है. इस वास्ते जगत् प्रवाहसें अनादि है. और मनुष्य पशुआदिककी आत्माजी अनादि है और अविनाशी है. कोइ किसीके खाने पीने वास्ते किसीनें नहि रचा है. अनादि कालसें पापी जीव, जीवांका मांस खाता आया है. और ई वर परमात्माका सदा यह उपदेश है कि हे जीव ? जीव हिंसा, मृषावचन, चोरी, मैथुन, परिग्रह, मांसजक्षण, मदिरापान, परस्त्री गमनादि पापकर्म मत कर. परंतु इस पापी जीवनें सत्य ईश्वरका उपदेश नही माना है. इस वास्ते नरकादि गतिओमें महा दुःख जोग रहा है. जैसे कोइ सच्चा वैद किसी रोगीको करुणासें कहे, तुं ये ये अपथ्य मत खा और यह औषधी खा जिस्से तुं निरोगी हो जावेगा. परंतु मूर्ख रोगी जेकर वैद्यका कहा न करे तो अवश्य दुःखी होवे. इसी तरें अर्हत परमात्मा ईश्वरके कहे पापरूप अपथ्य न त्यागे और औषधी समान तप, संयम, शील, संतोषादी नहि धारे तो संसारमें दुःखी होवे. यहां कोइ कह शकता है कि वैद्यनें रोगीको दुःखी करा ? नहि कह शकता है. इसी तरें परमेश्वरजी किसीको दुःखी नहि करता है. परंतु जीव अपने कुकर्मोसें दुखी होता है. इस वास्ते अर्हत परमेश्वरकी आज्ञासें सर्व जीवांकी हिंसा गेडके, मांसादि अजक्ष्य और मदिरादि अपेय और चोरी. यारी आदि पाप कर्म गेमके हृदयमे दयालु गुण धारके सर्व जीवांसें मैत्रीजाव कर जिस्सें धर्मका अ;

धिकारी हो.

पूर्वपक्ष—सर्व जीवांकी रक्षा करनेवाला और मांसका न खानेवाला हमको कोई नहि दिख पडता है क्योंकि,—" जले जीवाः स्थले जीवाः जीवा आकाशमालिनि । सर्वजीवाकुले लोके कथं भिक्षुरहिंसकः ॥ १ ॥ " अर्थ—जलमें, स्थलमें, आकाशमें सर्व लोक जीवां करके भरा है तो फिर आहार, निहार, पूजन, प्रतिलेखनादि करणेसें साधु अहिंसक क्योंकर हो शकता है ? अपितु नहि हो शकता है. ऐसा कोन जीव है जिसके हलने चलनेसें जीव हिंसा न होवे ? साधु लोकन्नी सचित्तादि पृथ्वी उपर चलते है, नदीमें उतरते है, वनस्पतिका संघट्टा करते है, निगोद अर्थात् शेवालके जीवांकी विराधना करते है, तथा विना उपयोग अनेक कीमा प्रमुख जीव मर जाते है, पूजना, प्रतिलेखना करते हुए वायुकायके जीव मरते है. इस वास्ते साधुन्नी अहिंसक नहि है तो फिर डुसरा, साधु विना, कोन अहिंसक है ?

उत्तरपक्ष—हे न्नोले जीव ! तुं हिंसा अहिंसाका स्वरूप नहि जानता है, इस वास्ते तेरे मनमें पूर्वोक्त अहिंसाकी वावत कुछ कलि उठती है. प्रथम तेरेकों हिंसाका स्वरूप कहता हुं.

" प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा " इति तत्वार्थसूत्रम्.

अर्थ—प्रमादवाले जिसके मन वचन कायारूप योग है. जीवांको प्राण रहित करणा तिसका नाम हिंसा है. प्रमाद क्या वस्तु है ? मिथ्यात्त्व १ अविरति २ कषाय ३ योग ४ तथा मद्य १ विषय २ कषाय ३ इन सर्वको प्रमाद कहते है. ये प्रमाद जिसके मन, वचन, कायामें होवे तिन मन, वचन, कायाके योगासें जो जीव मरे तीसका नाम हिंसा है. इस वास्ते सत् साधु अर्हंत न्नगवंतके आज्ञासें जो आहार, वि-

हारादि क्रिया करता है वो जेकर अप्रमत्तपणेसें करे तो तिसको हिंसक न कहिए, और जे साधु वीतरागकी आज्ञासें अप्रमत्त वर्त्तते है वे सर्व अहिंसक परम दयालु है. ऐसे मुनि तरण तारणवाले है.

पूर्वपक्षः—हम ऐसे कहते है कि सर्व जीव मांसाहारी है क्योंकि सर्व जीव अन्न, वनस्पति मट्टी, मांस प्रमुख खाते है वे सर्व, जीवोंके शरीर खाते है. जे जीवोंके शरीर है वे सर्व मांस है. इस बातको हम अनुमान प्रमाणसेंजी सिद्ध करते है.

भक्षणीयं भवेन्मांसं प्राण्यंगत्वेन हेतुना ।
ओदनादिवदित्येवं कश्चिदाहेति तार्किकः ॥ १ ॥

अर्थ—जात प्रमुखकी माफीक मांस जक्षण करने योग्य है. प्राणीका अंग होनेसें. इत्यादि.

उत्तरपक्षः—यह पूर्वोक्त कहना अयोग्य है क्योंकि त्रस जीवोंका मांस अन्नकी तुल्य नहि हो शकता है. अन्न जलसें उत्पन्न होता है. अन्न अस्पष्ट चैतन्यवाले जीवोंका शरीर है, और मांस स्पष्ट चैतन्यवाले जीवोंका शरीर है. अन्नके जीव मरते हुए त्रासमान नहि देखनेमें आते है परंतु त्रस जीवोंको मारती वखत बहुत त्रास उत्पन्न होता है. हरेक दयालु जीवोंका वो त्रास देखकर हृदय कंपायमान होता है. अन्न खानेवाला अत्यंत निर्दय नहि होता है. मांस खानेवाला अत्यंत निर्दय होता है. अन्नके खानेवालाको कोइ कसाइ नहि कहते है. पंचेंद्रिय पशुओंको मारके खानेवालेको लोकमेंजी कसाइ कहते है. इत्यादि अनेक युक्तिओंसें अन्न खाना और मांस खाना तुल्य नहि हो शकता है. जेकर जोला जीव इसमें व्यभिचार है, अन्नजी प्राणीका अंग है, और मांसजी प्राणीका अंग है, इस वास्ते दोनों

एक सरीखे है, तिसको हम कहते है. हे भोले प्राणी ! यह तेरा कहना लौकिक व्यवहारसेंभी विरुद्ध है. क्योंकि लौकिक व्यवहारमें प्राणी अंगकी तुल्यतासेंभी कितनीक वस्तुओ नहि मांस ऐसा एक सरीखे है, इसको हम कहते है. हे भोले प्राणी ! यह तेरा कहना लौकिक व्यवहारसेंभी विरुद्ध है. क्योंकि लौकिक व्यवहा-हारमें प्राणी अंगकी तुल्यतासेंभी कितनीक वस्तुओ नहि मांस ऐसा व्यवहार प्रवर्तते है. जैसे गौका दुध भक्ष्य और गौका रुधिर अभक्ष्य, अपनी माताका दूध भक्ष्य और अपनी माताका रुधिरादि अभक्ष्य है. तथा स्त्रीपणा करके समानभी है तोभी अपनी माता, बहिन, बेटी, प्रमुख अगम्य है, भार्यादि गम्य है. जेकर सर्व वस्तुओ सदृशही माने तब तो मनुष्य नहि किंतु पशु, कुत्ते, गर्दभादि समान है. प्रत्यक्षमेंभी देखते है कि जे कोइ राजे तथा बडे गवर्नर प्रमुखके शरीमें लाता दि मारे तो जीवसें जाये नहि तो सख्त बंदीखाना तो भोगे, और किसी कंगाल गरिब मेहनती मजूर प्रमुखके शीरमें लात जूति मारे तो सरकार वैसा दंड नहि देती है. क्या इनके मनुष्य पणेमें कुछ फरक है ? मनुष्यपणेमेंतो कुछ फरक नहि, परंतु तिनके पुण्यमें फरक है. अधिक पुण्यवानकी अविनय करे तो महा अपराध और दंडके योग्य होता है और हीन पुण्यवालेको जुता मारने सेंभी ऐसा भारी दंड योग्य नही होता है. इसी तरें पंचेन्द्रिय पशु महा पुण्यवान् है, तिसको मारना और तिसका मांस भक्षण करना महा पाप है, और नरकगतिका देनेवाला है, और अन्नादि स्थावरोंकी हिंसा और तिनके शरीरका भक्षण करणेमें महा पाप नहि है. इस वास्ते अन्नका खाना और मांसका खाना सरीखा नहि है. शुष्क तर्क दृष्टिसे जो मांस

खानेमें प्राणी अंग हेतु दीना सो असिद्ध, विरुद्ध अनेकांतिक दोष करके दुष्ट होनेसें सुनेंयें योग्य नहि है. तथाहि, निरंश वस्तुके होनेसे वोहतो मांस साध्य है, और वोहि प्राणी अंग हेतु है, इस वास्ते प्रतिज्ञार्थ एक देश असिद्ध हेतु है. जैसें, नित्य शब्द है, नित्य होनेसे, जेकर मांससें प्राणी अंग जिन्न है तब तो अतिशय करके हेतु असिद्ध है, व्यधिकरण होनेसें. जेसें "देवदत्तस्य गृहे काकस्य काष्ण्यात्." तथा यह हेतु अनेकांतिकन्नी है, कुत्ते आदिके मांसको जक्ष्य होनेसे. तथा प्रतिज्ञा ऐसी लोक विरुद्ध है, मांस अन्न एक करनेसें. इसी तरें मांस और अन्न एक सरीखे नहि. इस वास्ते मांस खानेमें महा पाप है. दयालु होवे तो मांस खाना वर्जे और धर्ममां अधिकारीज्ञी होवे इति दशमो गुणः

इग्यारमा मध्यस्थ सोम दृष्टि नामा गुण लिखते है. मध्यस्थ जो किसी मतका पक्षपाती न होवे. सोमदृष्टि, प्रद्वेषके अन्नावसें दृष्टि अक्ष है जिसकी सो मध्यस्थ सौम्यदृष्टि, कहते है. सर्व मतोंमें राग द्वेष रहित ऐसा पुरुष धर्मका विचार नाना पाखंम मंडली रूप दुकानोंमें स्थापन करा है धर्मरूप करीआणा जिनोंने ऐसे सर्व मतोंमेंसें यथावस्थित सगुण, निर्गुण अल्प बहुत्व गुण करके जो व्यवस्थित है तिसको, कनक परीक्षा निपुण विशिष्ट कनकाधिक पुरुषवत् जानता है और ज्ञानादि गुणोंके साथ संबंध करता है, और गुणोंके प्रतिपक्षजूत दोषोंको दूरसें त्याग देता है. सोमवसु ब्राह्मणवत् इति एकादशमो गुणः

बारमा गुणानुरागी गुणका स्वरूप लिखते है, धार्मिक लोकोंके गुणो विषे राग करे अर्थात् गुणवंत यति, साधु श्रावका-

दिक बहुमान करे, मनको प्रीतिका भोजन करे, यथा—

अहो ! ये धन्य है, इनोंने अच्छा पाया है मनुष्य जन्म.

पूर्वपक्षः—इस तुम्हारे कहनेसें परकी निंदा होती है. जैसे देवदत्त दक्षिणके चक्षुसें देखता है, वामेसें नहि. तथा चोक्तं

" शत्रोरपि गुणा ग्राह्या, दोषा वाच्या गुरोरपि "॥

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहना ठीक नहि. धर्मी जनको निर्गुणीओकी निंदा करणी उचित नहि. धर्मीजन निर्गुणिओकी उपेक्षा करते है, क्योंकी धर्मीजन ऐसा विचारते है कि—

संतोप्यसंतोपि परस्यदोषा नोक्ताः श्रुता वा गुण मावहंति । वैराणि वक्तुः परिवर्द्धयंति, श्रोतुश्च तन्वंति परां कुबुद्धिं ॥ १ ॥ तथा कालंमि अणाइए अणाइ दोसेहिं वासिए जीवे । जयं वियइ गुणो विहु तं मन्नह भोम हच्छरियं ॥ २ ॥ भूरि गुणा विरलच्चिय, इक्क गुणो विहु जणो न सव्वथ्थ, निद्दो साणविभद्दं, पसंसि मोयो वदो सेवि ॥ ३ ॥

अर्थ—अनादि कालसें अनादि दूषणों करि वासित जीवों में जो गुण उपलब्ध होवे सो गुण देखी भो श्रोताजनो ! तुम महा आश्चर्य मानो, परंतु अवगुण देखी आश्चर्य मत मानो ॥ १ ॥ बहुते गुणावालेतो विरले है, परंतु एक गुणवालाभी सर्व जगे नहि मिलता है, जे निर्दोष है तिनका तो कल्याणही है परंतु हमतो जिसमें थोमे अवगुण होवे तिसकीभी प्रशंसा करते है. ॥ २ ॥ इत्यादि संसारका स्वरूप विचारता हुआ गुणरागी पुरुष निर्गुणांकी निंदा नहि करता है. मध्यस्थ भावसें रहता है.

[illegible] और ग्रहण करणेमें प्रवृत्त होता है, और

अंगीकार करे हुए सम्यग्दर्शन निरत्यादि गुणांको नाश नहि करता है, पुरंदर राजकुमारवत्. इति द्वादशमो गुणः

तेरमा सत्कथा नामगुणका स्वरूप लिखते है. इहां सत्कथासें विपर्यय होवे तिसका जो दोष होवे सो कहते है. विकथा करणेवालेका विवेकरत्न नष्ट हो जाता है. विवेक अर्थात् असत् वस्तुका परिज्ञान सोइ रत्न है, अज्ञानरूप अंधकारका नाशक होनेसें. अशुन्न कथा स्त्रीआदि कथा, तिनमें आसक्ती करके मलिन है मन अंतःकरण जिसका सो विकथाका करणेवाला है. विकथाके करणेमें प्रवृत्त हुआ प्राणी युक्त अयुक्तका विचार नहि करता है, और स्वार्थ हानिन्नी नहि देखता है, रोहिणिवत्. धर्म जो है सो विवेक सार अर्थात् हितावबोध प्रधानही है. इस वास्ते पुरुषको सत्कथा प्रधान होना चाहिये. सत्य शोन्ननिक–तीर्थंकर गणधर, महाऋषि चरित गोचर कथा अर्थात् वचन व्यापारवाला होवे तो धर्मका अधिकारी होवे. चारो विकथा जो नहि करणे योग्य है, वे रीतिकी है.

"सा तन्वी सुन्नगा मनोहररुचिः कांतेक्षणा न्नोगिनी, तस्या हारि नितंबबिंबमथवा विप्रेक्षितं सुभ्रुवः । धिक्नामुष्टगतिं मलीमसतनुं काकस्वरां डुर्नगामित्थं स्त्रीजनवर्णनिंदनकथा दूरेस्तु धर्मार्थिनां "॥ १ ॥

अर्थ—ते स्त्री सुंदर, मनोहर कांतिमें युक्त, सुंदर नेत्र धारनेवाली, न्नोगवती है, तिनका नितंबबिंब और न्नृकुटीका कटाक्ष बोहोत अच्छा है. ऊंटजेसी गतिवाली, मलिन शरीरवाली, कागजेसा स्वर वाली और डुर्नागी ए स्त्रीकुं धिक्कार है. एसीतरह स्त्रीकी प्रशंसा और निंदाकी कथा सो धर्मार्थीसें दूर है. इत्यादि स्त्रीकथा न करे.

"अहो क्षीरस्यान्नं मधुरमधुनावाज्यखंडान्वितं, चेन्द्रसंभवो दध्नौ मुखसुखकरं व्यंजनेभ्यः किमन्यत् । नपक्वान्नादन्यद्रमयति मनः स्वादु तंबोलमेकं. परित्याज्या प्राज्ञैरशनविषया सर्वदैवेति वार्त्ता" ॥ १ ॥

अर्थ—दुधपाक, मीठा गायका घी, खांडसें युक्त, दही और मुखमें सुखकरनेवाला शाक प्रमुखसें दुसरा कोन है ? पक्वान्न और तांबुल शिवाय दुसरा कोइ मनकुं रंजन करनेवाला स्वादिष्ट नहि है. इत्यादि भोजन विषयकी वात प्राज्ञलोको सर्वदा त्याग करते है. इत्यादि भक्तकथा न करे.

"रम्यो मालवकः सुधान्यकनकः कांच्यास्तु किं वर्ण्यतां, दुर्गागुर्जरभूमिरुन्नटभटालाटाः किराटोपमाः । कास्मीरे वरमुष्यता सुखनिधौ स्वर्गोपमाः कुन्तला, वर्ज्या दुर्जनसंगवद्बुधधिया देशी कथैवंविधा" ॥ १ ॥

अर्थ—मालवा देश रमणीय है. सारा धान्य और सुवर्णसें भरपूर है. कांची देशका वर्णन क्या करना ? गुजरात दुर्गम है. लाट देशमें सुभट लोक उद्भट है. सुखका निधि कश्मिर देशमें रहेना अच्छा है, कुंतलदेश स्वर्ग जैसा है. ऐसी तरेहकी देशकथा दुर्जनकी संगसें माफिक बुध्मिान् पुरुषे छोडी देना चाहिए. इत्यादि देशकथा न करे.

"राजायं रिपुवारदारणसहः क्षेमंकरश्चोरहा, युद्धं भीममभूत्तयोः प्रतिकृतं साध्वस्यतेनाधुना । दुष्टोयं म्रियतां करोति सुचिरं राज्यं ममाप्यायुषा, भूपोवंवनिवंधनं बुधजनैराज्ञां कथा हीयतां" ॥ १ ॥

आ राजा शत्रुका समूहका नाश करनेमें शक्तिवाला है. क्षेम कुशल करनेवाला है; चोर लोककुं शिक्षा करनेवाला है. दुन-

रा दो राजाकी वीचमें भयंकर युद्ध था. ओ राजा दुष्ट है. सो म- रना चाहिए. ए राजा चिरकाल राज्य करते है. उसका राज्यमें मेरा आयुष्यका बंध हो. एसी राजकथा पंमित लोगोंकुं गोमना चाहिए. इत्यादि राजकथा न करे.

तथा शृंगार रसवाली, मतिको मोह उत्पन्न करनेवाला, हां सी हेशकी जननेवाली, परके दुषण बोलनेवाली कथा न करे. जिन, गणधर, मुनि, सती प्रमुखकी सत्कथा करे. इति त्रयोद- शमो गुणः

सुपक्ष युक्त नामा चौदमा गुणका स्वरूप लिखते है. भला होवे पक्ष, परिवार जिसका सो सुपक्ष युक्त है. अन्यकुं धर्म कर- तेको विघ्न न करे. धर्मशील, धर्मी, सुसमाचारः— सत् आचार- का आचरणवाला ऐसा जिसका परिवार होवे तिसको सुपक्ष यु- क्त कहते है. तिनमें अनुकूल उसको कहते है जो धर्म करतेको साहाय्यकारी होवे. धर्मशील वा धर्मप्रयोजनके वास्ते प्रार्थना करे तो अनियोग अर्थात् बगार न समजे अपितु अनुग्रह माने. सुसमाचारी होनेतो जिससें धर्मकी लघुता न होवे ऐसा काम करे. राज्य विरुद्ध कृत्य न करे. पूर्वोक्त ऐसा परिवार जिसका होवे सो सुपक्ष युक्त है सोइ धर्मके योग्य है. भद्रनंदि कुमार वत्. इति चतुर्दशमो गुणः

पंदरमा दीर्घदर्शी नामा गुणका स्वरूप लिखते है. जो कार्य करे तिसका परिणाम प्रथम विचारके करे, सर्व कार्य परिणाम सुंदर, आवते काले सुख देनेवाला करे. जिस कार्यमें बहुत लाभ होवे और क्लेश महेनत थोडी होवे, बहुत स्वजन, परजन जिस कार्यकी स्तुति श्लाघा करे, शिष्ट जन जिस कार्यको अच्छा जाने ऐसा कार्य करे. सो पुरुष इस लोकमेंभी अच्छा होय परं

ऐसा कार्य परिणामिक बुद्धिके बलसें करे, धनश्रेष्टिवत्. इति पचदशमो गुणः.

विशेषज्ञ नामा सोलमा गुणका स्वरूप लिखते है. सचेतन अचेतन वस्तुओंका अथवा धर्मके हेतुओंका गुण और अवगुण जाने, अपक्षपाती, मध्यस्थ होनेसें. जो पक्षपात करके संयुक्त होता है वो गुणोंको दूषण और दूषणोंको गुण समजता है और कहताभी है. उक्तंच—

" आगृहीत वत निनीषति युक्तिं, तत्र यत्र मतिरस्यनिविष्टा । पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशं"॥ १ ॥

इस वास्ते बहुलता करके विशेषज्ञ सारतरका कहनेवाला उत्तम धर्मके योग्य होता है, सुबुद्धि मंत्रीवत् इति षोडश गुणः

वृद्धनुग नामा सत्तरमा गुणका स्वरूप लिखते है. वृद्ध वयकरी परिणाम बुद्धि, परिपक्वबुद्धिः परिणाम सुंदरसद् सद्विवेकादिगुणयुक्त इत्यर्थः तथा चोक्तं—

तपः श्रुतधृतिध्यानविवेकयमसंयमैः ।
ये वृद्धास्तेऽत्र शस्यंते न पुनः पलितांकुरैः ॥१॥
सतत्वनिकपोद्भूतं विवेकालोकवर्द्धितं ।
येषां बोधिमयं तत्वं ते वृद्धा विदुषां मताः ॥ २ ॥
प्रत्यासत्तिसमायानैर्विषयैश्चांतरंजकैः ।
न धैर्यं स्खलितं येषां ते वृद्धाः परिकीर्तिताः ॥३॥
नहि स्वप्नेपि संजाता येषां सद्वृत्तवाच्यतां ।
यौवनेपि मता वृद्धास्ते धन्याः शीलशालिभिः ॥४॥
प्रायाः शरीरशैथिल्यात् स्यात् स्वस्था मतिरंगिनां ॥

यौवने तु क्वचित् कुर्यात् दृष्टतत्वोपि विक्रियां ॥५॥
वार्द्धकेन पुनर्द्धते शैथिल्यं हि यथा यथा ॥
तथा तथा मनुष्याणां विषयाशा निवर्तते ॥६॥
हेयोपादेयविकलो वृद्धोपि तरुणाग्रणीः ।
तरुणोपि युतस्तेन वृद्धैर्वृद्ध इतीरितः ॥ ७ ॥

भावार्थः—तप, श्रुत, धृति, ध्यान, विवेक, यम, संयम, तप बारे भेदे, श्रुत अंगोपांगादि, धैर्य, धर्मध्यान, शुक्लध्यान, विवेक सतर भेद संयम, इनो करके जो वृद्ध-धरमा होवे सो जिनेंद्रशासनमें वृद्ध कहा है, परंतु पलित धवले केशांवालेको वृद्ध नहि कहा है. तत्वरूप कसोटीके रगडनेमें जो विवेकरूपी प्रकाश पाया है ऐसा बोधमय जिनको तत्वज्ञान है सो वृद्ध, पंडितोंको मान्य है. अंतरंगमें राग उत्पन्न करनेवाले ऐसे शब्दादिक विषय सेवनेवालेभी हुए है. तोभी जिनकी धैर्यता चलायमान नहि हुई वे पुरुष वृद्ध कहे है. जिनोंनें स्वप्नमेंभी व्रत खंडन नहि करा है, सो धन्य है, शीलशाली सत् पुरुषोंनें तिनको यौवनमेंभी वृद्ध कहा है, क्योंकि वार्द्धकपना करके शरीर शिथिल होनेसें जीवोंकी मति स्वच्छ हो जाति है और यौवनमें तो तत्वका जानकारभी विकारवान हो जाता है. वृद्धपणेमें जैसें जैसें शरीर शिथिलता धारण करता है तैसें तैसें पुरुषोंकी विषयमें इच्छाभी हट जाति है. जो हेय उपादेय ज्ञानमें विकल वृद्धभी है, तोभी तरुणाग्रणी है. और हेयोपादेय ज्ञान करी संयुक्त है तो तरुण अवस्थामेंभी वृद्धोंने उसको वृद्ध कहा है. जैसा जो वृद्ध होवे सो अनुसारी, पापकर्ममें नहि प्रवर्त्ते है यथार्थ तत्त्वके अवबोध होनेसें तिस हेतुसे वृद्ध [illegible] [illegible] तिस हेतुसें वृद्धोंकी सेवा करनी चाहिये: वृद्धानुगामी वृद्धोंकी तरे पापमें नहि प्रवर्त्ते है.

मनीपि वृद्धानुग मध्यम बुद्धिवत्. किस हेतुसें, वृद्धोकी सत् संगतिसें भले गुण उत्पन्न हो जाते है. प्रोक्तमागमे—

"उत्तम गुण संसर्गी शील दरिद्दं पिकुणइ सीलढं ॥ जह मेरुगिरि विलग्गं तणंपि कणगत्तण मुवे इति ॥ अर्थ—उत्तमकी संगति शील रहितकोन्नी शीलमान् कर देती है. जैसे मेरु पर्वतमें लगा हुआ तृणन्नी सुवर्णताको प्राप्त होता है. इति सप्तदशमो गुणः—

अठारमा विनय गुणका स्वरूप लिखते है. विनीयते—अपनीयते, अर्थात् दूर करीए जिस करके अष्ट प्रकारके कर्म सो विनयः यह सिद्धांतकी निरुक्ति है. सो विनय पांच प्रकारका है; ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, तप विनय, उपचारिक विनय. ए पांच प्रकारे मोक्षार्थ विनय है.

ज्ञान विनय, ज्ञान करके यथार्थ वस्तु पट् ड्रव्यांको जाणे कार्य करता हुआ ज्ञान पूर्वक करे सो ज्ञान विनय १ ड्रव्यादिकों सम्यक् श्रद्धे सो दर्शन विनय२ चारित्र सम्यक् प्रकारसें पाले सो चारित्र विनय ३ तप बारा प्रकारका सम्यग् रीतिसें सेवन करे सो तप विनय ४, उपचारिक विनयकें दो न्नेद है. प्रतिरूप योग युंजनता अर्थात् यथायोग्य न्नक्ति करणी १ अनाशातनाविनय २ तिनमेंसें प्रथम प्रतिरूप योग युंजनता विनय के तीन न्नेद है. मन विनय १ वचन विनय २ काया विनय ३ तिनमें मन विनयके दो न्नेद है. अकुशल मनका निरोध करणा १ कुशल मनको प्रगट करना २. वचन विनयके चार न्नेद है. हितकारी वचन बोलना १ मर्यादा सहित थोडा बोलना २ कठोर वचन न बोलना ३ प्रथम विचारके बोलना ४. काया विनयके आठ न्नेद है. गुरु आदिकको आता देखके खडा होना १ गुरु आदिकको हाथ

जोभना २ गुरु आदिकको आसन देना ३ गुरु नहि बेठे तब तक नहि बेठना ४ गुरु आदिको द्वादशावर्त वंदणा करणी ५ गुरु आदिककी शुश्रूषा करणी ६ गुरु आदिकको जातेको पहुंचाने जाना ७ पास रहेकी वैयावच्च, भक्ति, सेवा करणी ८. अनाशातना विनयके बावन भेद है सो इस तरेसें जानने. अरिहंत १ सिद्ध २ कुल ३ गच्छ ४ संघ ५ क्रिया ६ धर्म ७ ज्ञान ८ ज्ञानी ९ आचार्य १० स्थावर ११ उपाध्याय १२ गणी १३ यह तेरा पद है. तिनमें प्रथम अरिहंत, अरि वैरी–अष्ट कर्म रूप, जिनोंने नाश करे है, सो अरिहंत. उक्तंच.—

" अट्ठ विहंपि कम्मं अरि भूयंपि होई सव्वजीवाणं। तंकम्ममरिहंता अरिहंता तेण वुच्चंति ॥ १ ॥ अर्थ–अष्ट प्रकारके कर्म सर्व जीवांके शत्रुभूत है तिनको जो हणे सो अरिहंत कहा जाता है, अथवा अरुहंत–जिनका फिर संसारमें भवरूप अंकुर नहि होता है सो अरुहंत कहे है, अथवा अरहंत–चौसठ इंद्रोकी पूजाके जो योग्य होवे सो अरहंत कहा जाता है, अथवा जिनके ज्ञानसें कोइ वस्तु छानी नहि सो अरहंत है. यह तीनों पाठांतर है. तथा मुक्तिमें जो चढे सो आरोहंत कहा जाता है. अरिहंत किसीका नाम नहि है. जो पूर्वोक्त अर्थ करी संयुक्त होवे और चौत्रीस अतिशय, पांत्रीस वचनातिशय और बारह गुणां करके संयुक्त होवे और अगारह दोषां करके रहित होवे सो अरिहंत कहा जाता है. ईश्वर, ब्रह्मा. शिव, शंकर शंभु, स्वयंभु, पारगत, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी इत्यादि अरिहंतहीके है परंतु पूर्वोक्त नाम जो अज्ञ लोकोने कामी, क्रोधी, विषयी, राजा, नृत्य करनेवाला, निर्लज्ज होके किसीके आगे नाचनेवाला, वेश्यागमन करनेवाला, परस्त्री स्वस्त्री गमन करनेवाला, शरीरको राख ल-

गानेवाला, जपमाला जपनेवाला, शस्त्र राखनेवाला, बैल प्रमु-खकी स्वारी करनेवाला, बेटी आदिकसें विषय सेवनेवाला, वृक्षके फल खाने जावे, जब वृक्षमें फल न मिले तब शाप देके वृक्षको सुका देनेवाला, अज्ञानी, मांसाहारी, मद्य पीनेवाला इत्यादि अवगुणवालाको उपर जो ईश्वर पदका आरोप करा है-सो करने वालेकी महामूढताका सूचक है ऐसे अयोग्य पुरुषां-को बुद्धिमान् कदापि ईश्वर न कहेगा. ईश्वर तो पूर्वोक्त दूषणोंसें रहित होता है. तिसकोही जैनमतमें अरिहंत कहते है.

सिद्ध पदका स्वरूप लिखते है. यद्यपि सिद्ध अनेक प्रकार-के है नाम सिद्ध १ स्थापना सिद्ध २. द्रव्य सिद्ध ३. शरीरद्रव्य सिद्ध ४ भव्य शरीर द्रव्य सिद्ध ५ यात्रासिद्ध ६ विद्या सिद्ध ७ मंत्रसिद्ध ८ बुद्धिसिद्ध ९ शिक्षासिद्ध १० तपसिद्ध ११ ज्ञानसिद्ध १२ कर्मक्षयसिद्ध १३ इत्यादि अनेक सिद्ध है, परंतु इहा कर्मक्षय सिद्धांका अधिकार है जे सर्व अष्ट कर्मकी उपाधि क्षय करके सिद्धहुए है वे कर्मक्षय सिद्ध कहे जाते है. कितनेक सिद्धाकी आदिभी नहि और अंतभी नहि है. कितनेक सिद्धांकी आदितो है परंतु अंत नहि है. सिद्ध जो है वे अज, अमर, अलख, निराकार, निरंजन सि-द्ध, बुद्ध, मुक्त, पारगत, परंपरागत, अयोनि, अरूपी, अछेद्य, अ-भेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, कूटस्थ, परब्रह्म, परमा-त्मा शिव, अचल, अरुज, अनंगी, शुद्ध चैतन्य, अक्षय, अव्य-य, अमल इत्यादि नामोंसें कहे जाते है. ये सिद्ध पुनः संसारमें जन्म नहि लेते है. जैसें बीज अत्यंत दग्ध हो जावे तो फिर अंकुर नहि देता है ऐसेही कर्म बीज शुक्लध्यानरूप अग्नि करके दग्ध हुए फिर संसारमें जन्मरूप अंकुर नहि कर शकता है-भोले जीव जो शास्त्रमें लिख गये है और अब कहे रहे है, ई

श्वर परमात्मा जगतमें अवतार लेता है. किस वास्ते! साधुओ के उपकार वास्ते और दुष्ट दैत्योंके नाश करने वास्ते और धर्म- के स्थापन करने वास्ते परमेश्वर युग युगमें अवतार लेता है. यह कहना बालक्रीडावत् है, क्योंकि परमेश्वर विना अवतारके लिया क्या पूर्वोक्त काम नहि कर शकता है? कितनेक भोले लोक क- हते है कि परमेश्वरके तीन रूप है. पिता १ पुत्र २ पवित्रात्मा ३ ये तीनो एकही है. तिनमें जो पुत्र था वो इस लोकमें अव- तार लेके और जगतके कितनेक लोकोंको अपने मतमें स्थापन करके, तिन इमानवाले भक्तोका पाप लेके आप शूली उपर चढा ऐसा लेख वांचके हम बहुत आश्चर्य पाते है. क्या ईश्वर विना अपने पुत्र भेजे जगवासीओका अंतःकरण शुद्ध नहि कर शकता है? तथा मनुष्यणीके पेटके अवतार विना बना बनाया अथवा नया बनाके अथवा आप पुत्ररूप धारके इस दुनियामें नहि आ शकता है जो मनुष्यणीके गर्भसें जन्म लीना? क्या ईश्वरको प्रथम ऐसा ज्ञान नहि था कि इतनें जीवोंके वास्ते मुजे अवता- र लेके शूली चढना पडेगातो प्रथमही इनको पापी न होने दे- ऊ? तथा भक्तोंके पापका नाश नहि कर शकता था जिसमें शूली चढना पडा. क्या भक्तजनोंका इतनाही पाप था जो एकवार शूली चढनेसें संपूर्ण फल भोगनेमें आ गया. ईश्वरसें अन्य कोई दुसराभी बडा ईश्वर है जिनसें छोटे ईश्वरको भक्तोंके पाप फल भोगनेमें शूली चडा दीया. तथा पुत्र तथा छोटे ईश्वरनें बडी हिम्मत करी जो सर्व भक्तोंकी दया करके सर्वके पापोंका फल आपे भोगना स्वीकार कीया परंतु पिता तथा बडे ईश्वरनें परो- पकार, भक्तवत्सल, परमकृपालु एसे पुत्र तथा छोटे ईश्वरकी द- या करके पाप नाश रूप बक्षिस न करी. तथा जब पिता पुत्र

एक रूप है तो पिता शूलि नहि चढा इत्यादि अनेक तर्को मेरी बुद्धिमें प्रकट होते है. सर्व लिख नहि शकता हुं. तो क्या ईश्वर कृपालु, दयानिधि मेरा संशय दूर नहि कर शकता है. अफसोस करता हुं के नोले जीवोंने नोलेपनेसें परम पवित्र ईश्वरको कितना कलंकित करा है. मेरी लेखनमें लिखनेकी शक्ति नहि है, नोले जीव इस जगतको देखके इसी विचारसें डूब गये है कि ऐसी विचित्र रचना ईश्वर विना केसी हो शक्ति है, परंतु यह विचार नहि करते है कि ऐसा सामर्थ्य अनंत शक्तिओ करी संयुक्त ईश्वर अपनें आप नत्पन्न कैसे हो गया. नोला कहता है, ईश्वर तो अनादिसें ऐसाही है तो फिर हे नोले जीव ! तुं इस जगतकोनी इसी तरें अनादि माने तो ईश्वर परमात्माके सर्व आरोपित कलंक दूर हो जावे. क्योंकि यह संसार द्रव्यार्थिक नयके मतमें अनादि अनंत है और पर्यायार्थिक नयके मतमें आदि अंतवाला है और इसका कर्त्ता नहि है. शक्ति है, परंतु सिद्ध परमात्मा किसी वस्तुका कर्त्ता नहि है. अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंत सम्यग् दर्शन चारित्र, अनंत स्थिति, अरूपी, अगुरु लघु, सर्व विघ्न रहित सिद्ध नगवंत है. तथा शुद्ध द्रव्यार्थिक नयके मतमें सिद्ध परमात्मा परब्रह्म एकही माना जाता है. तथा अन्य नयके मतमें सिद्ध अनंतेनी माने जाते है. सर्व सिद्ध लोकाग्र आकाशमें स्थित है. द्रव्यरूप करके सर्व व्यापी नहि है, आदित्यवत्; ज्ञान शक्ति करके सर्व व्यापी है, आदित्य प्रकाशवत्. सिद्धांके सुखको कोइ नपमान नहि है. इन सर्व सिद्धकोंही लोकोने अल्ला, खुदा, ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म आदि नामो करके माना है. प्रथम पद अरिहंतको अवतार, अंशावतार, तीर्थंकर, बुद्ध, धर्मोपदेष्टा, धर्मसारथि, धर्म तीर्थनाथ, धर्मका नियामक, [illegible], धर्मका रक्षक, जगत् प्रका-

शक, शिवशंकर, अर्हन्, जिन त्रिकालवित् इत्यादि नामोंसें कहते है. जब जीवोंको प्रबल मिथ्यात्व मोहनीय कर्मका बहुत प्रचार और प्रबल उदय हुआ तब नोले जीवोंने पूर्वोक्त परमेश्वरके नाम अयोग्य अर्थात् कामी, क्रोधी, लोनी, अज्ञानी, स्वार्थ तत्पर जीवोमें आरोप करे. तबसें इस जगतमें अनेक मत बनाय गये है. जिस जीवोमें नोले लोकोने ईश्वरका उपचार करा है तिसका जब चाल, चलन, कर्तव्य वांचनेमें आता है तब नोले जीवांके समज पर लांबा उच्छ्वास लेके हाय ! कहना पमता है, इस वास्ते नोले लोकोंको सर्व कल्पित ईश्वरोंकों गेमके अढारह दूषण रहित परमेश्वरकों परमेश्वर मानना चाहिये, जिस्से सिद्धपदको प्राप्ति होवे. इति सिद्ध पदं.

तीसरे पदमें कुल–कुल उसको कहते है जो एक आचार्यकी संतानमें वहत न्यारे न्यारे साधुओंके समुदाय होवे.

गच्छ उसको कहते है जिसमें बहुत कुलोंका समूह एकत्र होवे कौटिकादि गच्छवत्.

संघ चतुर्विध—श्रमण १ श्रमणी २ श्रावक ३ श्राविका ४ तिनमें श्रमण उसकों कहते है, जो तप करे और पांचो इंद्रियकों रागद्वेषोदय करके स्वस्वविषयमें प्रवृत्त हुएको थका देवे. तथा श्रमण शब्दको प्राकृत व्याकरणमें समण ऐसा आदेश होता है, इस वास्ते समण शब्दका अन्वर्थ लिखते है. सम कहते है; तुल्य मैत्री नावसें सर्व नूतोंमें, सर्व जीवोंमें, त्रस स्थावरोंमें प्रवर्ते, इस वास्ते साधुको समण कहते है. सो साधु ऐसा विचारतें है—कोइ मुजको मारे तब जेसें मुजको दुःख प्रिय नहि तैसेही सर्व जीवांको दुःख प्रिय नहि है. ऐसे जान करके मन, वचन, काया करके कोई जीवको न हणे, न

दुखावे अन्यको दुखातां जलो न जाणे. इस प्रकारसें सर्व जीवोमें जिसका मन प्रवर्त्ते सो समण कहा जाता है. "सर्वजीवेषु समन्वे, सममणतीति समणः" एक तो समण शब्दका यह पर्यायार्थ है. ऐसेही "समं मनोऽस्येति समनाः" यह दुसरा पर्यायार्थ नाम है. इसका अन्वर्थ यह है. सर्व जीवोमेंसें नतो कोइ द्वेष योग्य है और न कोइ प्रिय है, सर्व जीवोंमे सम मन होनेसें. सम मन "समं मनोऽस्येति निरुक्तविधिना सममनाः" अथवा उरग–सर्प तिसके समान होवे. जैसें सर्प परके बनाये स्थानमें रहता है, तैसेंहि परके बनाये स्थानमें रहे. तथा पर्वत समान होवे, उपसर्गसें चलायमान न होवे. तथा अग्नि समान होवे, तप तेजमय होनेसें. तथा समुद्र समान होवे गुण रत्न करके परिपूर्ण तथा ज्ञानादि गुणां करके अगाध होनेसें. तथा आकाश समान होवे, निरालंबन होनेसें. तथा वृक्षो समान होवे, सुख दुःखमें विकार न दर्शानेसें. तथा भ्रमर समान होवे, अनियत वृत्ति होनेसें. तथा मृग समान होवे, संसार प्रति नित्य उद्विग्न होनेसें. तथा पृथ्वी समान होवे, सर्व सुख दुःख सहनेसें. तथा कमल समान होवे, पंक जल समान काम जोगांके उपरि वर्जे. तथा सूर्य समान होवे, अज्ञान अंधकारके दूर करनेसें. तथा पवन समान होवे, सर्वत्र अप्रतिबद्ध होनेसें. इन पूर्वोक्त सर्व गुणांवाले पुरुषको श्रमण कहते है. और पूर्वोक्त सर्व गुणांकी धारणेवाली स्त्रीको श्रमणी कहते है. श्रावक उसको कहते है. जो श्रद्धापूर्वक जिन वचन सुणे, तथा श्रा–पाके नव तत्वके ज्ञानको पकावे—तव तत्वका जानकार होवे; 'दु वपबीजसंतुसंताने;' न्यायोपार्जित धन रूप बीज, जिनमंदिर, जिन प्रतिमा, पुस्तक, साधु, साध्वी, श्रावक श्राविकारूप सात क्षेत्रमें बोवे; 'कृ-विक्षेप,' जो जप, तप, शील, संतोषादि करके अष्ट कर्मरूप क-

चवरको निरोरे. इन पूर्वोक्त तीनो अदरोंके अर्थ करी संयुक्त होवे तिसको श्रावक कहते है. और पूर्वोक्त गुणोवाली स्त्रीको श्राविका कहते है. इन चारोका समुदाय तथा कुलांके समुदायको संघ कहते है. ५

क्रिया ६ धर्म ७ ज्ञान ८ ज्ञानी ए चारों प्रसिद्ध है.

स्थविर उसको कहते है, जो धर्ममें डिगते जीवांको फिर धर्ममें स्थापन करे १० आचार्य उनको कहते जो उत्रीस गुणां करी सहित होवे और सूत्रका अर्थ कहे ११ उपाध्याय उसको कहते है जो पचवीस गुणां करी सहित होवे और सूत्र पाठ मात्र शिष्योको पठन करावे १२ गणी उसको कहते है जो सर्व शास्त्रका पढा हुआ बहुश्रुत होवे १३ इन तेरांकी आशातना न करे, तेरांकी नक्ति करे, तेराको बहुमान करे, तेरांके गुणांकी स्तुति करे. ऐवं ५२ नेद आशातना विनयके हुए है. इस तरेका विनय सर्व गुणांकां मूल वर्तते है. उक्तंच,

विणओ सासणे मूलं विणओ संजओभवे ।
विणयाविप्पमुक्कस्स कओ धम्मो कउ तवो ॥१॥

अर्थ—विनय जिन शासनमें मूल और विनीतही संयत होता है, विनयसें रहितको धर्म और तप दोनोंइ नहि.

विनय किनका मूल है—सत् ज्ञान दर्शनादिकोंका. उक्तंच.

विणयाउणानं नाणाउ दंसणं दंसणाउ चरणं ॥
चरणे हिंतो मुक्खो, मुक्के सुखं अणाबाहं ॥ १ ॥

अर्थ—विनयसें ज्ञान होता है, ज्ञानसें दर्शन होता है, दर्शनसें चारित्र होता है: चारित्रसें मुक्ति होती है और मुक्तिसें अनाबाध सुख होता है. तथा विनयसें किस क्रमसें गुण प्राप्त होता है सो लिखते है.

" विनयफलं शुश्रूषा गुरुशुश्रूषाफलं श्रुतज्ञानं, । ज्ञानस्य फलं विरतिर्विरतेः फलं चाश्रवनिरोधः ॥ १ ॥ संवरफलं तपो ब-लमपि तपसो निर्जरा फलं दृष्टं । तस्मात् क्रियानिवृत्तिः क्रिया निवृत्तेर्योगित्वं ॥ २ ॥ योगनिरोधाद्भवसंततिक्षयः संततिक्ष-यान्मोक्षः । तस्मात् कल्याणानां सर्वेषां भाजनं विनयः ॥ ३ ॥ तथा–मुलाउ खंधप्पभवो डुमस्स खंधाउ पच्छा समुविंति सा हा साहप्प साह विरुहं पत्ता, तउसि पुप्फं च फलं रसोय ॥ ॥ १ ॥ एवं, धम्मस्स विणउमुलं परमोसे मुक्खो। जेणकित्तिं सुयं सिग्घं नीसेसंचाभिगच्छइ " ॥ २ ॥

अर्थ—प्रथम वृक्षके मूलसें स्कंध होता है, स्कंधसें पीछे शाखा होती है, शाखासें प्रशाखा और प्रशाखासें पत्र होते हैं, तद् पीछे फुल फल और रस होता है, ऐसेही धर्मका मूल विनय है, और समान मुक्ति है. शेष, स्कंध, .शाखा, प्रतिशाखा, पत्र, पुष्प, फल समान वलदेव, चक्रवर्ती, स्वर्गादिके सुख है, इस वास्ते विनयवान् धर्मके योग्य होता है. भुवन तिलक कुमारवत् इति अष्टादशमो गुणः

ओगणीसमा कृतज्ञता नामा गुणका स्वरूप लिखते है. वहुमान करे, गौरव संयुक्त धर्म गुरु, आचार्यादिकको देखे, धर्म-गुरु धर्मके दाता आचार्यादिकको कहते है, तिनको वहुमान देवे क्योंकि यह धर्मगुरु मेरे परमोपगारी है, इनोंनें अकारण वत्स-लोनें अतिघोर संसाररूप कुवेमें पडतेको उद्धार करा है ऐसी प-रमार्थ वुद्धि करके स्मरण करता है परमागम स्थानांग सिद्धांतके वाक्यको, सो वाक्य यह है.

तीन जणोंके उपकारका वदला नहि दिया जाता है. माता पिता १ शेठ २ धर्माचार्य ३ तिनमें कोई पुरुष सवेरे और सां-

रूको मातापिताको शतपाक, सहस्रपाक तेल करके मर्दन करे, पीछे सुगंधीक उवटने करी उवटन करे, पीछे तीर्थोदक, पुष्पोदक, शुद्धोदक तीन प्रकारके पानीसें स्नान करावे पीछे सर्वालंकार करी विभूषित करे, मनोज्ञ स्थाली, पाकशुद्ध अगारह प्रकारके व्यंजन संयुक्त भोजन करावे; जब तक जीवे तब तक मातापिता दोनोंकों अपनी पिठ उपर उगायके फिरे तोभी माता पिताके उपकारका वदला नहि दीआ जाता है. जेकर पुत्र मातापिताको केवल प्ररूपित धर्ममें स्थापन करे तो देणा उतरे. तथा कोइ शेठ किसी दरिद्री उपर तुष्टमान होके रास पुंजी देह दुकान करवा देवे, पीछे दरिद्री पुण्योदयसें धनवान् हो जावे और शेठ दरिद्री हो जावे तब शेठ तिसके पास जावे, तब वो संपूर्ण धन शेठको दे देवे तोभी शेठके उपकारका वदला नहिं उतरे, जेकर शेठको केवली प्ररूपित धर्ममें स्थापन करे तो वदला उतरे.

किसी पुरुषनें तथा रूप श्रमणके मुखसें एक आर्यधर्म संबंधी सुवचन सुना है तिसके प्रभावसें कालकरी देवता हुआ है, सो देवता तिस धर्माचार्यको दुर्भिक्ष देशसे सुभिक्ष देशमें सहारे उजाम्से गाम प्राप्त करे, वहुत कालके रोगांतक पीडितको निरोग्य करे तोभी तिस धर्माचार्यका देना नहि उतरे, कदाचित् धर्माचार्य केवली कथित धर्मसें भ्रष्ट होवे जावे और वो जेकर फिर तिसी धर्ममें स्थिर करे तो देना उतरे.

वाचकमुख्येनाप्युक्तं;—“ दुःप्रतिकारौ मातापितरौ स्वामी गुरुश्च लोकेऽस्मिन्, तत्र गुरुरिहामुत्र च दुष्करतरप्रतीकारः ” इति ॥ १ ॥ तिस वास्ते कृतज्ञ भाव करके उत्पन्न हुए गुरु बहुमानसें क्षमादि गुणांकी वृद्धि होती है, और धर्मकाभी अधिकारी

होता है. धवल राजे के पुत्र विमलकुमारवत्. इति एकोन विंशतिर्गुणः.

वीशमें पर हितार्थकारी गुणका स्वरूप लिखते है. इस गुणका स्वरूप नामसेंही प्रसिद्ध है. इस गुणवालेको धर्मकी प्राप्ति हुए जो फल होवे सो कहते हैं. जो पुरुष स्वभावसेंही परहित करणेमें अत्यंत रक्त है तिसको धन्य है. तिसने सम्यक् प्रकारसें जानाहे धर्मका स्वरूप जाननेसें गीतार्थ हुआ है. इस कहनेसें अगीतार्थ पर हित नहि कर शकता है तथा चागमः—

" किं इत्तो कठयरं जंसंममनाय समय सझावो, । अन्नं कुदेसणाए कठयरगंमिपाडे इति ॥ " १ ॥ इसके उपर तभी कोइ अतिशय करके कष्टतर अर्थात् पाप है, जो बिना जाणे सिद्धांतका रहस्य कुदेशना करके अन्य जीवाकों अति कष्टमें गेरे है. परहितार्थकारी पुरुष अज्ञात धर्मस्वरूपवाले जीवांको सद्गुरु पासे सुना है जो आगमवचन प्रपंच तिस करके धर्ममें स्था- पन करे, और जिनोने धर्मका स्वरूप जाना है तिनको धर्मसें डिगता धर्ममें स्थिर करे, भीमकुमारवत्. इस कहने करके साधुकि तरें श्रावकभी धर्मोपदेश अपनी भूमिका अनुसार देवे यह कथन श्रीभगवती सूत्रके दूसरे शतके पांचमे उद्देशमे कहा है. तथाच तत्पाठः—

तहा रूवं नं भंते समणंवा माहाणंवा पज्जुवासमाणस्स किंफला पज्जुवासणा गोमाया सवणफला. सेणं भंते स वणे किं फले नाणफले. सेणं भंते नाणे किं फले विन्नाण फले. सेणं भंते विन्नाणे किं फले पच्चक्खाणफले. सेणं भंते पच्चक्खाणे किंफले संजमफले. सेण भंते संजमे किंफले

अणण्हयफले, एवं अणण्हयफले, तवे तवे वोदाणफले, वोदाणे अकिरियाफले, साणंभंते अकिरिया किंफला सि द्धिपज्जुवसणफला पन्नता गोंयमा गाहा ॥ सवणे १ ना. णेय २ विन्नाणे ३ पच्चखाणे ४ संजमे ५ अणण्हय ६ तवे ७ चेववोदाणे ८ अकिरिया ॥१॥

इस सूत्रकी वृत्तिकी न्नाषा—तथारूप उचित स्वन्नाववाले किसी पुरुषकी श्रमणं वा तपयुक्तकी उपलक्षणसें उत्तरगुणवंतकी माहनं वा आप हननेंसें निवृत्त होनेसें परको कहता है, माहन अर्थात् मत हन, उपलक्षणसें मूलगुण युक्तकी वा शब्द दोनो समुच्चयार्थमें है अथवा श्रमण साधु, माहन श्रावक इनकी सेवा करे तो क्या फल है. सिद्धांतके सुननेका फल होता है सुननेका फल श्रुतज्ञान है, सुननेसेंही श्रुतज्ञान पामीये है, श्रुतका फल विशिष्ट ज्ञान है, श्रुतज्ञानसेंही हेयोपादेयके विवेक करणेवाला विज्ञान उत्पन्न होता है, विशिष्ट ज्ञानसें प्रत्याख्यान निवृत्ति फल रूप होता है, विशिष्ट ज्ञानवालाही पापका प्रत्याख्यान करता है, प्रत्याख्यानका फल संयम है, प्रत्याख्यानवालेहीके संयम होता है, संयमका फल अनाश्रव है, संयमवाला नवीन कर्म ग्रहण नहि करता है. अनाश्रवका फल तप है, अनाश्रववाला लघुकर्म होनेसें तप करता है. तपका फल व्यवदान अर्थात् कर्मकी निर्जरा है तप करके पुरातन कर्म निर्जर जाते है, व्यवदानका फल अक्रिय योग निरोध फल है निर्जरासें योग निरोध करता है, अक्रियका फल सिद्धि लक्षण पर्यवसान फल है, सकल फलोंके पर्यंत वाले फल होता है, इस वास्ते साधु श्रावक दोनोंको उपदेश देनेका अधिकार है.

फिर परहितार्थकारी कैसा होवे—निस्पृह मनवाला होवे जो किसी पदार्थ धनादिककी इच्छासें, शुद्ध उपदेष्टाभी होवे तोभी प्रसंशने योग्य नहि है. तथा चोक्तं—

परलोकातिगं धाम तपःश्रुतमिति द्वयं ।
तदेवार्थित्वनिर्लुप्तसारं तृणलवायते ॥ १ ॥

परहितार्थकारी महा सत्ववाला होता है क्योंकी सत्ववालोहीमें यह गुण होवे है. तथाहि—" परोपकारैकरतैर्निरीहता विनीतता सत्यमतुच्छचित्तता, विद्याविनोदंनुदिनं न दीनता गुणा इमे सत्ववतां भवंति ॥ १ ॥ "

अर्थ—परोपकारमें तत्परता, विनयता, सत्य, मनकी चमाई, प्रतिदिन विद्याका विनोद और दीनताना अभाव ओ सत्व वालेका गुण है. इहां भीमकुमारनी कथा जाननी. इति विंशतितमो गुणः

एकवीसमा लब्धलक्ष नामा गुणका स्वरूप लिखते है ज्ञानावरणीय कर्मके पतले होनेसे लब्धकी तरे लब्ध है, सीखने योग्य अनुष्टान जिसके सो लब्धलक्ष है, सीखानेवालेको क्लेश नहि उत्पन्न करता है, समस्त धर्म करणी चैत्यवंदनादि सीखता हुआ, तात्पर्य यह है कि पूर्वभवसें अभ्यास करेकी तरे सर्व शीघ्रही शीख लेवे. तथा चाह,—

प्रतिजन्म यदभ्यस्तं जीवैःकर्म शुभाशुभं ।
तेनैवाभ्यासयोगेन तदेवाभ्यस्यते सुखं ॥ १ ॥

ऐसा पुरुष सुशिक्षणीय घोमेसे कालसेंही शिक्षाका पारगामी होता है नागार्जुनवत्. इति एकविंशतितमो गुणः

धर्मार्थी पुरुषोंने प्रथम इन पूर्वोक्त गुणांके उपार्जनेमें यत्न

करणा चाहिए, क्योंकि इन गुणाके विना धर्म प्राप्त नही होता है, जैसें शुद्ध नूमि विना चित्र नही रह शकता है. यहां प्रन्नास चित्र करका दृष्टांत जानना.

धर्मका स्वरूप.

अब पूर्वोक्त गुणांका धारी जिस धर्मका योग्य है तिस धर्मका स्वरुप किंचित् मात्र लिखते है,

धर्म दो प्रकारका है. श्रावक धर्म १ और यतिधर्म २. तिनमें श्रावक धर्म दो प्रकारका है. अविरति १ विरति २. तिनमें अविरत श्रावक धर्मका स्वरूप अन्यत्र ग्रंथोमें कहा है. अविरत श्रावक धर्मका अधिकारी ऐसा कहा है सामर्थ्य होवे, श्रास्तिक होवे, विनयवान् होवे, धर्मार्थे उद्यमी होवे, पुछनेवाला होवे, इत्यादि अधिकारी कहा है. और विरत श्रावक धर्मका अधिकारी ऐसा कहा है. संप्राप्त दर्शनादि, प्रतिदिन यति जनोंसें समाचारी श्रवण करे, परलोक हितकारी, सम्यक् उपयोग संयुक्त जो जिनवचन सुणे इत्यादि. और यति धर्मका अधिकारी ऐसा कहा है. आर्यदेशमें उत्पन्न हुआ होवे, जाति कुल करके विशुद्ध होवे, प्राये क्षीण पापकर्म होवे, निर्मल बुद्धिवाला होवे, संसार समुद्रमें मनुष्य जन्म दुर्लन्न है ऐसा जानता है. संपदा, चंचल और जन्म मरणका निमित्त है, विषय दुःखका हेतु है, संयोग्य वियोगका हेतु है, प्रतिसमय मरण है, इस लोकमेंही पापका फल न्नयानक है, इत्यादि न्नावनासें जाना है संसारका निर्गुण स्वन्नाव जिस्ने विरक्त हुआ है, कषाय पतला हुआ है, सुकल्पक है, विनीत है, राजविरुद्ध काम जिसनें नहि करा है, कोइ अंगहीन नहि, सर्व अंग कल्याणकारी है. श्रद्धावान है, स्थिरस्वन्नाववाला है, उपशम संपन्न होवे इत्यादि अ-

धिकारीओके लक्षण कहे है तो फिर एकवीश गुणांवाला कौनसें धर्मका यहां अधिकारी कहा है ?

श्रावकका भेद,

उत्तर—ये सर्व शास्त्रांतरके लक्षण सर्व प्राये इन एकवीस गुणांकेही अंगभूत है. इस वास्ते इन गुणांके हुए भाव श्रावक होता है.

प्रश्नः—क्या भाव श्रावक विना अन्यभी श्रावक है जो ऐसें कहते हो ?

उत्तर—इहां जिनागममें सर्व भाव अर्थात् पदार्थ चार प्रकारसें कहे है. " नामस्थापनाद्रव्यभावैस्तन्न्यास " इति वचनात्; सोइ दिखाते है. नाम श्रावक—सचेतन, अचेतन पदार्थका " श्रावक " ऐसा करणा १ स्थापना श्रावक—चित्र पुस्तकादि गत २ द्रव्य श्रावक—ज्ञशरीर, भव्य शरीर, व्यतिरिक्त देवगुर्वादि श्रद्धान विकल तथाविध आजीविकाके वास्ते श्रावकाकारधारक ३. और भावश्रावक—" श्रद्धालुतां श्राति श्रृणोति शासनं दानं वपेदाशु वृणोति दर्शनं । कृंतत्यपुण्यानि करोति संयमं, तं श्रावकं प्राहुरमी विचक्षणाः ॥ १ ॥ इत्यादि श्रावक शब्दार्थ धारी. यथाविध श्रावक उचित व्यापारमें तत्पर होवे सो इहा ग्रहण करणा, शेष तीनोको यथा कथंचित् होनेसें.

प्रश्नः—आगममें अन्यथाभी श्रावकोके भेद सुनते है, यदुक्तं श्री स्थानांगे,

" चउव्विहा समणो वासगा पन्नत्ता, तं जहा अम्मापिइसमाणे १ भाय समाणे २ मित्तसमाणे ३ सव्वत्ति समाणे ४ अथवा चउव्विहासमणोवासगा पन्नत्ता, तं जहा आयंसमाणे १ पडाग समाणे २ खाणुसमाणे ३ खरंट समाणे ४, ये साधुओंकी अ-

पेक्षासें चार प्रकारके श्रावक जानने. ये नामादि चारोंमें किसमें समवरतते है.

उत्तर—व्यवहार नयके मत करके य चारो पूर्वोक्त ज्ञाव श्रावकही हैं, श्रावकवत् व्यवहारकरनेसें. और निश्चय नयके मत करके शौकन समान और खरंट समान ये दोनों प्राये मिथ्यादृष्टि होनेसें द्रव्यश्रावक है. शेष पद् ज्ञावश्रावक है. इन आगेंका स्वरूप आगममें ऐसा कहा है.—

" चिंतइ जइ कज्जाइं न दिट्ठ खलिन्नविहोइनिन्नेहो । एगंत वच्छलो जइजणस्स जणणी समोसड्ढो ॥१॥ " ज्ञावार्थ साधुओके सर्व कार्य आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, ओषधी प्रमुख जे होवे तिनके संपादन करनेकी चिंता राखे, संपादन करे; कदापि प्रमादोदयसें साधु समाचारीसें चूक जावे तब आंखोसें देखकेजी स्नेह रहित न होवे. साधु जनांका एकांत वत्सलकारक होवे सो माता समान श्रावक कहते है.

" हियए ससिणेहोच्चिय मुणीण मंदायरो विणयकम्मे । समो सादूणं पराजवे होइ सुसहाओ " २ ज्ञावार्थ—हृदयमेंतो साधुओ उपर बहुत स्नेह रखता है परंतु साधुओकी विनय करनेमें मंद आदरवाला है, साधुओको संकट पमे तब ज्ञली रीते साहाय्य करे सो श्रावक ज्ञाइ समान है.

" मित्तसमाणो माणाईसिंरूसइअपुच्छिओकज्जे । मन्नंतो अप्पाणं मुणीण सयणाउ अब्भहियं " ३ ज्ञावार्थः—जब साधु किसी कार्यमें न पुछे तब रूस जावे परंतु साधुको अपने स्वजनोसेंज्ञी अधिक मानता है सो मित्रसमान श्रावक है.

" थद्धोछिद्दप्पेही पमायखलियाणि निच्चमुच्च रई सड्ढो । सवत्ति कप्पो साहु जणं तणसमं गणइ " ४ ज्ञावार्थ—अज्ञिमानी

काष्ट वत कठिन होवे, छीद्र देखनेवाला होवे, प्रमादसें चूक जावे तो तीस दोषको नित्य कहे, साधु जनोको तृण समान गणे, सो श्रावक शौकन तुल्य है.

दुसरे चतुष्कमें—"गुरु भणिओ सुत्तथ्थो विंबिज्जइ अवितहो मणे जस्स। सो आयंससमाणो सुसावओ वन्निओसमए" ॥१॥ भावार्थ—गुरुका कहा हुआ सूत्रार्थ अवितथ्यपणे जिसके मनमें विंबित होवे सो आदर्श समान सुश्रावक सिद्धांतमें कहा है.

"पवणेण पडागाइव भामिज्जइ जो जणेन मूढेण। अवि-णिछिय गुरुवयणो सो होइ पडाइयातुलो" २ भावार्थ—जो मूर्खोंके कहनेसेभी पताकाकी तरे फिर जावे, गुरुका वचनका जिसको निश्चय नहि है सो पताका समान है.

"पडिवन्नमसंग्गहं नमुयइ गीयथ्थ समणुसिठोवि। थाणु समाणो एसो अप्पओसी मुणिजणेणवरं ॥ ३ ॥" भावार्थ—जो असत् आग्रह पकडा है तिसको गीतार्थके कहनेसेभी नहि छोडते है सो स्थाणु अर्थात् खीला, खुंटा, ठुंठ समान श्रावक है इतना विशेष है मुनिजनों विषे तिसका द्वेष नहि.

"उम्मग्ग देसओ निन्हवोसि मूढोसि मंदधम्मोसि। इय सम्मं पिकहंतं खरंट एसो खरंट समो." ४ भावार्थ. तुं उन्मार्गका उपदेशक है, निन्हव है, मूढ है, मंद धर्मी है. इत्यादि. शुद्ध साधुको पूर्वोक्त वचनो कहके जो खरंट कलंक देवे सो खरंट समान है. जैसे ढीली अशुचि स्पर्श करनेसे पुरुषको खरंटती है तैसे शिक्षा देनेवालेकोभी दूषित करे सो खरंटसमान.

इन चारोंके भेदोंमेंसे शौकन समान और खरंट ये दोनो निश्चय नयसें [illegible] है और व्यवहार नयसें श्रा-[illegible] है [illegible]

ज्ञाव श्रावकका छ लक्षण.

पूर्वोक्त ज्ञाव श्रावकके लक्षण पूर्वसूरि सद्गुरु ऐसे कहते हुए है. करा है व्रत विषय अनुष्ठान कृत्य जिसने सो कृतव्रतकर्मा १ शीलवान् २ गुणवान् ३ ऋजु—सरल मन ४ गुरु सेवा कारी ५ प्रवचन कुशल—जैनमतके तत्वका जाननेवाला ६ एसा जो होवे सो ज्ञावश्रावक होता है. इन छहीं गुणांका विस्तारसें स्वरूप लिखते है.

छहीं लिंगोंमेंसें प्रथम कृतव्रतकर्माके चार ज्ञेद है. श्रवण करणा १ ज्ञानावबोध करणा २ व्रत ग्रहण करणा ३ सम्यक् प्रकारे पालना ४ तिनोंमें प्रथम सुननेकी विधि लिखते है. विनय बहुमान पूर्वक गीतार्थसें व्रत श्रवण करे. यहां चार ज्ञंग है, कोइक धूर्त वंदना करके ज्ञान वास्ते सुने परंतु वक्ता विषे ज्ञारी कर्मी होनेसे बहुमान न करे. दुसरा बहुमानतो करे परंतु विनय न करे, शक्ति रहित रोगी आदि. तीसरा दोनोंही करे, निकट संसारी. कोइक ज्ञारी कर्मी दोनोंही नहि करे सो अयोग्य है. इस वास्ते विनय बहुमान सार पुरुष गीतार्थ गुरु पासे व्रत श्रवण करे. गीतार्थ उसको कहते है जो वेद ग्रंथोंके गीत पाठ, और अर्थका जानकर होवे. गीतार्थ विना अन्यसें सुने तो विपत्ति बोधका हेतु होवे. यह व्रत श्रवण उपलक्षण मात्र है तिन्सें जो ज्ञान सुने सो गीतार्थसें सुने, सुदर्शनवत्, यह एक मत धर्म. १.

सर्व व्रतोंके ज्ञेद जाने तथा सापेक्ष, निरपेक्ष और अतिचारोंको जाने. (यारां व्रतांका स्वरूप जैनतत्वादर्श, धर्मरत्न, श्राद्धप्रकरणादिसें जान लेने). संयम, तपादि सर्व वस्तुके स्वरूपके बोधवाला होवे, तुंगीआ नगरीके श्रावकवत्. २

तीसरा जावजीव अथवा थोमे काल तांइ व्रत ग्रहण करे तो गुरु आचार्यादिकके समीपे ग्रहण करे, आनंदवत् व्रतके लेनेमें जो चर्चा है सो श्रावक प्रज्ञप्तिसें जान लेनी ३.

चौथा प्रतिसेवनं अर्थात् पालना सो रोगांतकमें तथा देवता मनुष्य, तिर्यंचादिकके उपसर्ग हुए जैसे जांगेसें ग्रहण करा है तैसे पाले परंतु चलायमान न होवे, आरोग्यद्विजवत्. उपसर्गमें कामदेव श्रावकवत्. इति प्रथम कृतव्रतकर्मका स्वरूप.

संप्रति शीलवान् दुसरे लक्षणका स्वरूप लिखते है. प्रथम आयतन सेवे. आयतन धर्मी जनोके एकठे मिलनेके स्थानको कहे. जहां साधर्मी बहुत शीलवंत, ज्ञानवंत, चारित्राचारसम्पन्न होवे सो सेवे अनायतन वर्जे. अनायतन यह है. भीलपल्ली– चौरोका ग्रामाश्रय-पर्वत प्रमुख हिंसक दुष्ट जीवोंके स्थानमें वास न करे. तथा जहां दर्शन भेदनी सम्यक्त्वके नाश करनेवाली निरंतर विकथा होती होवे सो महापाप अनायतन है, सो वर्जे इति प्रथम शील.

विना काम परघरमें न जावे–जावेतो चौर यारकी शंका होवे. दुसरा शील.

नित्य उद्भट वेष न करे. शिष्टोंको असम्मत वेष न पेहरे. तीसरा शील.

विकार हेतु, राग द्वेषोत्पत्तिहेतु वचन न वोले चौथा शील. वालक्रीमा, मूर्खोंका विनोद जूआदि व्यापार न करे, पांचमा शील. जो अपना काम साधे सो मीठे वचन पूर्वक साधे छठा शील. ये पूर्वोक्त षट् प्रकारके शील युक्त होवे सो शीलवान् श्रावक है.

तीसरा गुणवंतका स्वरूप लिखते है.

यद्यपि गुण बहुत प्रकारके औदार्य, धैर्य, गांनीर्य प्रियंवदत्वादिक है तोन्नी इहां पांच गुणो करके गुणवान् न्नावश्रावकके विचारमें गीतार्थ मुनिवरोंने कहा है, वे गुण ऐसे है,

स्वाध्याय करणेमे नित्य उद्यमी, अनुष्टानमेंन्नी उद्यमी, गुरु आदिककी विनयमें नित्य प्रयत्नवान् होवे, सर्व प्रयोजन-इह लोक, परलोकिकमें कदाग्रही न होवे, न्नगवानके कहे आगममें

प्रथम स्वाध्याय गुणका स्वरूप लिखते है.

पढना १, पृच्छना २, परावर्त्तना ३, अनुप्रेक्षा, ४ धर्मकथा ५, ए पांचो वैराग्य निबंधन-वैराग्यका कारण विधि पूर्वक होनःश्रेटिवत् करे. तिनमें पढन विधि-" पर्यस्तिकामवष्टंन्नं तथा पादप्रसारणं । वर्जयेच्चापि विकथामधीयन् गुरुसन्निधौ ॥१॥ पर्यस्तिका करके, अवष्टंन्न लेके, पग पसारके गुरुके पास न बेठे तथा विकथा न करे. पुछनेकी विधि-आसन उपर या शैया उपर बेठा हुआ न पूछे, किंतु गुरुके समीप आ करके पगन्नर बेठी हाथ जोडी पूछे. परावर्त्तनाकी विधि-इर्यावहि पडिक्कमी सामायिक करी मुख ढांकी, दोष रहित सूत्र पदच्छेद गुणे पढे. अनुप्रेक्षा गीतार्थ गुरुसें जो अर्थ सुना है, तिसका एकाग्र मनसें विचार करे. गुरुमें यथार्थ धारी होवे और स्वपरके उपकारकारक होवे ऐसी धर्म कथा करे शेनश्रेटिवत् इति स्वाध्याय गुणका स्वरूप. करणनामा दुसरा न्नेदका स्वरूप—तप नियम वंदनादिकके करणेमें, करावणेमें, अनुमोदनेमें नित्य प्रयत्नवान् होवे. आदि शब्दसें चैत्यवंदन जिनपूजादि करणेमें तत्पर होवे, इति करण नामा दुसरा न्नेद. गुणवान् गुरुकी विनय करे. गुरुको देखके आसनसें उठे, गुरुको आवता जाणी सन्मुख जावे, गुरुको आगे मस्तकमें अंजलि करे. आप आसन निमंत्रे, गुरु बेठे तब बेठे. वंदन करे,

सेवा नक्ति करे, गुरु जातेको पहुचाने जावे, यह आठ प्रकारका विनय है. पुष्पसालसुतवत्. इति तिसरा नेद. अनजिनिवेश–हठ रहित गीतार्थका कहा अन्यथा न जाने, सत्य माने, श्रावस्ती नगरीके श्रावक समुदायवत्. इति चौथा नेद. जिनवचन गुण रुचि पूर्वक–सम्यक्त पूर्वक सुने, विना रुचि श्रवण करना व्यर्थ है. क्योंकि सम्यक्त रत्न शश्रूषा और धर्मराग रुप होनेसे. शुश्रूषा और धर्मराग इन दोनों सम्यक्तके सहनावि लिंग करके प्रसिद्ध है. जयंती श्राविकावत्, इति पांचवा नेद. इति नावश्रावकका गुणवंतनामा तिसरा नेद.

ऋजु व्यवहारी नामा नावश्रावकका चौथा गुण लिखते हैं. ऋजु व्यवहारगुणके चार नेद है. यथार्थ कहना, अवंवादी वचन धर्म व्यवहारमें, क्रय विक्रय व्यवहारमें, साक्षी व्यवहारादिकमें सत्य बोलना. इसका नावार्थ यह है परवंचन बुद्धिसें धर्मको अधर्म और अधर्मको धर्म नाव श्रावक न कहे, सत्य और मधुर वचन बोले, और क्रय विक्रयमेंनी वस्तुका जैसा नाव होवे तैसाही कहे; मोंघेको सस्ता और सस्तेको मोंघा न कहे, राजसनामेंनी जूठा बोलके किसीको दूषित न करे, और जिस बोलनेसे धर्मकी हांसी होवे ऐसा वचननी न बोले, कमल श्रेष्ठिवत्, इति प्रथमनेद. अब दूसरा नेद लिखते है, अवंचिका क्रिया–परको दुःख देनेवाली मन वचन कायाकी क्रिया न करे, हरिनंदीवत्. इति दूसरा नेद. अशुद्ध व्यवहारमें जो जाविकाजमें कष्ट होवे तिसका प्रगट करना जैसे हे नद्र! मत कर पाप लौंगी आदिक. जिससे इस लोक परलोकमें दुःख पावेगा. नद्रश्रेष्ठिवत्. इति तीसरा नेद.

सद्नावसें मैत्रीनावका स्वरुप कहते है. निष्कपटमें मैत्री करे सुमित्रवत् क्योंकि मैत्री और ठगनावको परस्पर

गया आतपकी तरे विरोध है, उक्तंच—

" शाठ्येन मित्रं कलुषेण धर्मं, परोपतापेन समृद्धिजावं।
सुखे न विद्यां परुषेण नारीं, वांछंति ये व्यक्तमपंमितास्ते ॥ १ ॥

अर्थ—जे पुरुष शठतासें मित्र, मलिन तासें धर्म, परोपतापसें समृद्धि, सुखसें विद्या और कठोरतासें नारीकुं इछता है सो पुरुष पंमित नहि है, इति चतुर्थ नेद.

जेकर श्रावक पूर्वोक्त चारों गुणोंसें विपरीत वर्ते तो धर्मकी निंदा करावणेंसे अपनेकों और धर्मकी निंदा करनेवालोंको जन्म तकजी बोधि प्राप्त नहि होवे है. इस वास्ते श्रावक ऋजु व्यवहार गुणवाला होवे.

गुरु शुश्रूषा नामा पांचमा जाव श्रावकका लक्षण लिखते है. गुरुके लक्षण ऐसे है,

धर्मज्ञो धर्मकर्ताच, सदा धर्मप्रवर्त्तकः ।
सत्वेभ्यो धर्मशास्त्राणां देशको गुरुरुच्यते॥ १॥

अर्थ—धर्मकुं जाननेवाला, धर्मका कर्त्ता, सर्वदा धर्मका प्रवर्त्तक और प्राणीयोकुं धर्मशास्त्रोका उपदेशक होवे सो गुरु कहेवाता है.

जो इन गुणों संयुक्त होवे सो गुरु होता है. तिस गुरुकी शुश्रूषा सेवा करता हुआ, गुरु शुश्रुक होवे सो चार प्रकार है, प्रथम सेवा नेद लिखत है. यथावसरमें गुरुकी सेवा करे, धर्मज्ञान आवश्यकादिकोंके व्याघात न करणेंसें, जीर्णश्रेष्ठिवत्. इति उसरा कारण नेद. सदा गुरुके सद्भुत गुण कीर्त्तन करणेंसें प्रमादी अन्य जीवांको गुरुकी सेवा करणेंमें तत्पर करे. पद्मशेखर महाराजवत्. इति औषध नेषज प्रणामनामा तिसरा नेद–औषध क-

वल द्रव्यरूप अथवा शरीरके वाहीर काममें आवे—नेषज वहुत द्रव्यका नेलसें वनी अथवा शरीरके अन्यंतर नोगमें आवे आ-शब्दसें अन्यन्नी संयमोपकारी वस्तु आप देवे, अन्य जनोंमें दी-लावे, सम्यक प्रकारे निष्पादन करे, श्री युगादि जिनाधीश जीव अन्नय घोपवत् गुरुके तांइ उक्तंच—

अन्नं पानमथौपधं वहुविधं धर्मध्वजं कंवलं,
वस्त्रं पात्र मुपाश्रयश्च विविधो दंडादि धर्मोपधिः।
शस्तं पुस्तकपीठकादि घटते धर्माय यच्चापरं,
देयं दानविचक्षणैस्तदखिलं मोक्षार्थिने भिक्षवे॥१॥

अर्थ—दानमें निपुण ऐसा पुरुषोए अन्न, पान, विविध औपध, रजोहरण, कांवल, वस्त्र, पात उपाश्रय, विविध दंड प्रमुख धर्मका उपधि और उत्तम पुस्तक पीठक, प्रमुख सव मोक्षार्थीं मुनिकुं देना चाहिए.

जो मन वचन काया गुप्तिवाले मुनिजनांको शुद्ध नावसें औपधी आदिक देवे सो जन्म जन्ममें निरोगी होवे.

नाव नामा चौथा नेद लिखते है. गुरुको वहुमान देवे, प्रीतिसार मनसें श्लाघा करे, संप्रति महाराजवत्. गुरुके चित्तके अनुसारे चले, गुरुको जो काम सम्मत होवे सो करे. उक्तंच—

" सरुपि नतिः स्तुतिवचनं, तदन्निमते प्रेम तद्द्विपि द्वेपः दानमुपकारकीर्तन, ममूलमंत्रं वशीकरणं ॥ १ ॥

अर्थ—क्रोधीसें नमस्कार और स्तुति वचन, तिनका स्नेहीसें प्रेम और द्वेपीसें द्वेप, दान, उपकारकी प्रशंसा ओ मूल मंत्र शिवायका वशीकरण है. इति.

अथ प्रवचन कुशलनामा छग गुण लिखते है, सूत्रमें कुशल १, अर्थ सूत्रान्निधेय तिसमें कुशल २, उत्सर्ग सामान्योक्तिमे

कुशल ३. अपवाद विशेष कहनेमें कुशल ४. जाव विषे विधिसार धर्मानुष्ठान करणेमें कुशल, ५. व्यवहार गीतार्थ आचरित रूपमें कुशल ६. इन ठहोंमे गुरु उपदेशसें गुण -कुशलपणेको पाम्या है. अथ इन ठहोंका जावार्थ कहते है. उचित योग्य श्रावक जूमिका तक सूत्र पठण करे, प्रवचन माता और ठ जीव निकाय अध्ययन पर्यंत आगम सूत्र और अर्थसें पढे. और अन्य जी पंचसंग्रह, कर्मप्रकृति, कर्मग्रंथादि शास्त्र समूह गुरुगमसें पठण करे, जिनदासवत्. इति प्रवचन कुशलका प्रथम जेद.

सुणे सूत्रका अर्थ स्वजूमिकातक सुगुरु समीपे गीतार्थ गुरु समीप श्रवण करनेसें समुत्पन्न प्रवचन कौशल करके जाव श्रावक होवे, ऋषिजद्र पुत्रवत्. इति प्रवचन कुशलका दुसराजेद.

अथ उत्सर्गापवादनामा तीसरा चौथा जेद लिखते है. उत्सर्ग और अपवाद जिनमतमें दोनों प्रसिद्ध है, तिनका विषय विजाग करणा, करावणा यथावसरमें सो जाने. तात्पर्य यह है कि केवल उत्सर्गही नही माने, न केवल अपवादही माने किंतु यथावसरमें जो योग्य होवे सो करे. क्योंकि ऊंचि जगाहकी अपेक्षा नीची प्रसिद्ध है, और निंचिकी अपेक्षा ऊंची प्रसिद्ध है. ऐसेही उत्सर्ग अपवाद दोनों तुल्य है. इस वास्ते यथावसरे दोनोंमेंसें अदर बहुत देखें तैसें प्रवर्ते, क्योंकि सिद्धांतमें जितने उत्सर्ग है तितनेही तिस जगे अपवाद है. इस वास्ते यथावसरे प्रवर्ते. दोनों गुणो उपर अचलपुरके श्रावक समुदायकी कथा जाननी. इति प्रवचन कुशले तीसरा चौथा जेद.

अथ विधिसार अनुष्टाननामा पंचम जेद लिखते है. यात्रा करे, रथयात्रा करे, विधिप्रधान अनुष्टानमें देव गुरु वंदनादिकमें तात्पर्य यह है–विधिमें करणेवालेका बहुमान करे. आपजी साम-

ग्रीके हुए विधि पूर्वक धर्मानुष्ठानमें प्रवर्त्ते. सामग्रीके अन्नावसें विधि न हो सके तो विधिका मनोरथ न त्यागे, अविधि करता हुआ विधिका मनोरथ करे तोन्नी आराधक है वज्रसेन श्रेष्टिवत् इति प्रवचन कुशलका पांचमा न्नेद.

अथ व्यवहार कुशलनामा उठा न्नेद लिखते है. देश सुस्थित दुःस्थितादि, काल सुन्निक्ष दुर्न्निक्षादि, सुलन्न दुर्लन्नादि इव्य हृष्ट ग्लानादि न्नाव, इनको अनुरूप योग्य जाने. गीतार्थोंका व्यवहार जो जहां देशमें, कालमें, न्नावमें, वर्तमान गीतार्थोंनें उत्सर्गापवादिके जानकारोनें गुरु लाघव ज्ञानमें निपुणोनें जो आचरण करा है व्यवहार तिसको दूषित न करे. ऐसा व्यवहारमें तथा ज्ञानादि सर्व न्नावमें कुशल होवे, अन्नयकुमारवत्. इति प्रवचन कुशलका व्यवहार कुशल उठा न्नेद.

तिसके कहनेसें कथन करा प्रवचन कुशल न्नाव श्रावकका उठा लिंग ६.

यह उक्त स्वरूप प्रवचन कुशलके उ न्नेद. न्नाव श्रावकके लक्षण क्रियागत कहे है, जैसे धूम अग्निका लिंग है ऐसेही यह न्नाव श्रावकके लक्षण कहे है.

प्रश्न—तुम तो यह लक्षण क्रियागत कहते हो क्या अन्य न्नी लिंग है ?

उत्तर—न्नावगत सतरे लिंग अन्यन्नी है वे न्नी यहां लिखते है.

स्त्री, इंद्रिय, अर्थ, संसार, विषय, आरंन्न, गृह, दर्शन, गाडरिकादी प्रवाह, आगम पुरस्सर प्रवृत्ति, दानादिकमें यथाशक्ति प्रवर्त्तना धर्मानुष्ठान करतां हुआ लज्जा न करे, सांसारिक न्नावमें रक्तद्विष्ट न होवे, धर्म विचारमें मध्य स्वन्नावे होवे, धन स्व-

जनादिकके प्रतिबंधसे रहित होवे, परके उपरोधसें काम नोग न्नोगे है, वेश्याकी तरे गृहवास पाले.

अथ इनका स्वरूप लिखते है. प्रथम स्त्री न्नेदका स्वरूप लिखते है. स्त्री कुशीलता निर्दयतादि दोषांका न्नवन है, चल चित है, अन्य अन्य पुरुषकी अन्निलाषा करणेसे नरकके जानेको सीधी सरूक है, स्त्रीको ऐसी जानके श्रेयार्थी पुरुष स्त्रीके वशवर्ती तदधीनचारी न होवे, काष्ठश्रेष्ठीवत्. इति प्रथम न्नेद.

अथ इंद्रियनामा डुसरा न्नेद. यहां इंद्रिय, श्रोत्र चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शन, पांच न्नेद है. ये पांचो चंचल घोमेकी तरे डुर्गति, डुर्योनि, पदकी तर्फ जीवको खेंचके ले जाते है. इस वास्ते इनको डुष्ट घोमेकी तरे शोन्ननिक ज्ञानरूप लगाम करके वश करे, विजयकुमारवत्. इति डुसरा न्नेद.

अथ अर्थनामा तिसरा न्नेद. धनकों सर्व अनर्थका मूल जाणी तिसमें लुब्ध न होवे. उक्तंच—

अर्थानामर्जने दुःखं अर्जितानां च रक्षणे। नाशे दुःखं व्यये दुःखं धीगर्थो दुःख न्नाजनं ॥ १ ॥

अर्थ—द्रव्य उपार्जन करनेमें डुःख है. उपार्जन पीछे उसकी रक्षामें डुःख है. और नाश तथा खर्चमें डुःख है, द्रव्य डुःखका पात्रज है, उसको धिक्कार है. तथा धन चित्तको खेद कर्त्ता है यथा—

राजा रोत्स्यति किंतु मे हुतवहो दग्धा क्रिमेतद्धनं, किं वा मी मन्नविष्णवः कृतनिन्नं सास्यंत्यहो गोत्रिकाः। मोषिष्यंति च दस्यवः किमु तथा नष्टा निखातं न्नुवि, ध्यायन्नेवमहर्निशं धनपुनी ध्यास्नेतरां डुःखितः ॥ १ ॥

मेरा धन राजा ले जायगा, क्युं अग्नि जालेगा, क्युं मेरा

समर्थ जागीदार ले जायगा ! चोर लुंटेगा, पृथ्वीमें डाटनेसें नाश होवे तो क्या होवे ? एसा धनवान् रातदिन दुःखी रहेता है. तथा क्लेश और शरीर परिश्रम तिनका कारण है, तथाहि—

" अर्थार्थे नक्रचक्राकुलजलनिलयं केचिदुच्चैस्तरंति, प्रोयच्छस्त्राभिघातोत्थितशिखिकणकं जन्यमन्ये विशंति । शीतोष्णांभःशरीरग्लपिततनुलताः केचित्कां कुर्वतेऽन्ये, शिल्पं चानल्पभेदं विदधति च परे नाटकाद्यं च केचित् ॥ १ ॥

अर्थ—धनके वास्ते कोई कोइ लोक मगरझूमवाला समुद्रकूं तरत है, कोइ शास्त्रके घातसें अग्निकण प्रगट होवे ऐसें संग्राममें घूमते है. शीत, ताप और जलसें शरीरकुं ग्लानि करके खेती करते है. कोइ अनेक प्रकारकी कारिगरि करते है और कोइ नाटकादि करते है. तथा धन असार है, धनसें संपादन करनेसें, यदाह—

व्याधीन्नो निरुणद्धि मृत्युजननज्यानिक्षयेन क्षमं, नेष्टानिष्टवियोगयोगहृतिकृतधृद्व नच प्रेत्य च । चिंताबंधविरोधबंधनवधत्रासास्पदं प्रायशो, वित्तं वित्तविचक्षणः क्षणमपि क्षेमावहं नेक्षते ॥ १ ॥ इस वास्ते बुद्धिमान् धनमें लुब्ध न होवे चारुदत्तवत्. जाव श्रावक अन्यायसें धन उपार्जनेमें धोमाजी न प्रवर्ते और न्यायसें उपार्जनेमें अत्यंत तृष्णावान्जी न होवे. तबतो क्या करे. जितना नफा होवे तिनमेंसें अर्ध धन धर्ममें खरच करे, बाकी शेष रहे तिससें शेष काम यत्नतें करे. इस लोक संबंधी यथायोग्य विचारी तो पूर्वोक्त अर्ध धन सात क्षेत्रोंमें खर्च करे. इति तिसरा जेद.

अथ संसारनामा चौथा जेद लिखते है. इस संसारमें रति न करे—क्या करके संसारका स्वरूप जाणिने कैसा है

संसारका स्वरूप—डुखरूप है. जन्म, जरा, मरण रोग, शोक आदि करके ग्रस्त होनेसें डुःख रूप है, तथा दुःख फल है. जन्मांतरमें दुःख नरकादि फल है. डुःखानुबंधि वारंवार डुःख बांधनेसें तथा विमंबनाकी तरें-जीवांको सूर, नर, नरक, तिर्यग, सुन्नग, डुर्न्नगादि विचित्र रूप है. विमंबना जिसमें ऐसा चार गतिरूप संसारको असार सुख रहित जाणी इसमें रति, धृति न करे, श्रीदत्तवत्. इति चौथा न्नेद.—

अथ विषयनामा पंचम न्नेद लिखते है, क्षणमात्र जिनसें सुख है ऐसे जो शब्दादि पांच विषय जिनको जहर समान परिणाम खोटे जानता हुआ, जैसें विष किंपाक फल खाते हुऐ, मधुरस्वाद दिखलाता है और परिणाममें प्राणाका नाश करता है ऐसेंही विषय विरसावसान है, ऐसा जानता हुआ न्नाव श्रावक तिनमें आसक्त न होवे, जिनपालितवत्. न्नवन्नीरु संसारवासमें चकित मनवाला विषयमें क्यों नहि गृद्ध करता है? तिसने जाना है तत्वार्थ जिनवचन श्रवण करणेसें वे जिन वचन यह है. विषयमें सुख नहि है, निःकेवल सुखान्निमान है परंतु सुख नहि है, जैसें पित्तातुर और धतुरा पीनेवालेको उपलमें और सर्व वस्तु सूवर्ण दिखती है. तथा ये विषयन्नोग में मधुरपणा मालुम होता है परंतु विपाकमें किंपाक फल समान है. पामा रोगके खाज समान है, दुःखका जनक है, मध्यान्ह कालमें मृगतृष्णा तुल्य है, विषयमें कुयोनि जन्म गहनमें पडता है, न्नोग महावैरी है, अनित्य है, तुछ है, मलमूत्रकी खान है, इत्यादि. इति पांचवा न्नेद.

अथ आरंन्ननामा छठा न्नेद लिखते है. जिस व्यापारमें बहुत जीवांको पीमा होवे, खर कर्मादिमें सो आरंन्न वर्जे. क-

शक्ति ऐसा आरंभ करे विना निर्वाह न होवे तब सशूक गुरु-लाघव विचार पूर्वक करे. परंतु निर्ध्वंस परिणामोंसें न करे. स्वयंभूदत्तवत्. तथा निरारंभी साधुजनोंकी प्रशंसा करे, धन्य है है महामुनि जे मन करकेभी परपीडा नहि करते हैं, आरंभसें निवर्त्ते हैः त्रिकोटी शुद्ध भोजन करते हैं. तथा दयालु कृपावान् सर्व जीवोंमें हैं. एक अपने जीवितव्यके वास्ते क्रोडो जीवांको दुःखमें स्थापन करते हैं तिनका जिवना क्या शाश्वता है ? ऐसे भाव श्रावक भावना करे. स्वयंभूदत्त कथा अत्र ज्ञेयाः इति छठा भेद.

अथ गेह नामा सातमा भेद लिखते है. गृहस्थावासको पाशबंध समान मानता हुआ गृहस्थवासें रहे, जैसें पाशीमें पमा पक्षी भग नहि सक्ता है, तिस पाशीको कष्टरूप मानता है. ऐसे संसारभीरु माता पितादिकके संबंधसे संयम नहि धारण करशक्ता है तोभी शिवकुमारकी तरे भाव श्रावकगृहवासमें दुःखीही होता है. इस वास्ते चारित्र मोहनीय कर्मके नाश करनेको तप, संयम रूप प्रयत्न करता है. इति सातमा भेद.

अथ दर्शन नामा आठमा भेद लिखते है. भाव श्रावक दर्शन–श्रद्धा–सम्यक्त्व निर्मल अतिचार रहित धारण करे कैसा हो के–देव गुरु धर्मतत्वोंमें आस्तिरूप परिणाम तिन करके संयुक्त होके, जिन, और जिनमत और जिनमतमें स्थिर पुरुषांको वर्जके शेप संसारको अनर्थरूप माने. निश्चयसारकी प्रतिपत्ति जिनमतकी प्रभावना यथाशक्ति करे, शक्तिके अभावसें प्रभावना करणेवालेकी उपष्टंभ बहुमानसें करे तथा प्रशंसा करे. जिनमंदिर, जिनचैत्य तीर्थयात्रादिसें उन्नति करे. गुरु धर्माचार्यकी विशेष भक्ति करे. इत्यादि धर्म कृत्योसें अच्छी बुद्धिवाला निश्चल

नेःकलंक सम्यग् दर्शन धारण करे, अमरदत्तवत्. इति आठमा ज्ञेद.

अथ गाडुरिका प्रवाह नामा नवमा ज्ञेद लिखते है. गाड-
रेका एग्निका, गाडर, घेटी, ज्ञेम नामांतर तिनका प्रवाह चलना.
एक ज्ञेमके पीछे सर्व ज्ञेमां चलने लगती है, इसका नाम गमुरि-
प्रवाह है. एक ज्ञेम ज्ञां करती है तब सर्व ज्ञां करने लग जाती
है. आदि शब्दसें कीमे मकोमोंका प्रवाह तिनकी तरे ये संसारी
लोक तत्वको तो समजते नहि है, एकही देखादेखी करने लग
जाते है. इस गाडरी प्रवाहका यत्किंचित् स्वरूप हम जहां जैन-
मतादि और इतिहासादि पुस्तकोंमें देखा है और जैसें सुना है
और जो हमनें देखा है सो लिखते है. असली ईश्वर ज्ञगवंतका
मत छोड के कुच्छकतो पीछले मतोकी वातां लेकर और कुच्छक
स्वकपोलकल्पित वातां मिलाके नवीन मत चलाना तिस मतको
जब एक ज्ञोला जीव अंगीकार करे तब तिसकी देखादेख अन्य
जीव ज्ञेमोंकी तरे विना तत्वके जाने ज्ञां ज्ञां, हां हां करते हुए
तिस मतवालेके पीछे चलने लग जाते है, तिसको हम गामरिका
प्रवाह कहते है, सो इस तरेका है.

प्रथम ईश्वर, ज्ञगवान् श्री ऋषज्ञदेवनें जैनमत इस अवस-
र्पिणी कालमें इस ज्ञरतखंडमें प्रगट करा और तिसके पुत्र ज्ञर-
तनें श्री ऋषज्ञदेवकी स्तुति और गृहस्थ धर्मका स्वरूप प्रतिपाद-
न करनेंवाले चार वेद रचे थे. तिस अवसरमें ज्ञरतका पुत्र और
श्री ऋषज्ञदेवका चेला मरीचि नामा मुनि संयमसें भ्रष्ट हुआ,
तब स्वकपोलकल्पित परिव्राजकोके मूल वेशका हेतु त्रिदंमादि
रूप धारण करा. तिसका चेला कपिल मुनि हुआ, तिसनें स्व-
कपोलकल्पित सांख्य मुख्य नाम कापिल मत अपने शिष्य आ-
सुरीकों उपदेश करा. षष्ठितंत्र नामा पुस्तक रचा. जैनमतकों

जैनमतको छोडके कितनेक लोक इस मतकों मानने लगे जब नवमा सुविधिनाथ पुष्पदंतका तीर्थ व्यवछेद हुआ तब ब्राह्मणाभासोंने हिंसक वेदांके नामसें अनेक श्रुतियां रची तिनसें राजादिकोंके घरमें यजय याजन करनें लगे. जब विसमें अरिहंत मुनिसुव्रत स्वामीकी हलादमें वसुराजा शुक्तिमती नगरीमें हुआ तिसके समयमें क्षीरकदंबक उपाध्यायके पुत्र पर्वतनें महाकाल असुरके सहायसें महा हिंसक नवीन ऋचांओ रची. तद पीछे व्यासजीने सर्व ऋषि अर्थात् जंगलके ब्राह्मणोंसें सर्व श्रुतियां लेकर तिनके चार हिस्से करे. प्रथम हिस्सेका नाम ऋगूवेद रखा और अपनें पैल नामा शिष्यको दिया. दुसरें हिस्सेका नाम यजुर्वेद रखा और अपने शिष्य वैशंपायनकों दिया. तिसरे हिस्सेका नाम सामवेद रखा सो अपने जैमिनि नामा शिष्यको दिया. चोथे हिस्सेका नाम अथर्व्ववेद रखा सो सुमंतु नामा शिष्यको दिया. इन चारों वेदोके चार ब्राह्मण भाग है, तिनके अनुक्रमसें नाम रखे ऐतरेय, तैतरेय, तांम्, गोपथ. तिस अवसरमें वैशंपायन प्रमुखोंसें वैशंपायनके शिष्य याज्ञवल्क्यकी लडाइ हुइ, तब याज्ञवल्क्यनें और सुलसाने शुक्ल यजुर्वेद रचा. तिसका शतपथ नामा ब्राब्राह्मणभाग रचा. तिसमें लिखा है, याज्ञवल्क्यनें सूर्यके पास विद्या शीखके शुक्ल यजुर्वेद रचा है. यह सूर्य नामा कोइ ऋषि होगा. पीछे इनमेंसें जैमिनिने पूर्व मीमांसा रची. जब तिस मतकी बहुत वृद्धि हुइ तब तिस मतके प्रतिपक्षी ब्रह्माद्वैत मतके प्रतिपादक सांख्यमतके साहाय्यसें ब्रह्मसूत्र रचे. तिनके अनुसार अनेक ऋषियोंनें केन कठ मुंम छांदोग्यादि उपनिषद् रचे. एकदा समये मगध देशमें गौतम ऋषिको ब्राह्मणोंने बहुत सताया तब गौतमनें उपनिषद् और वेदके मतको खंमन करने वास्ते ईश्वर कर्तृ नैयायिक मत चलाया, तब लोक इसको मानने लगे.

तब ईश्वर वादीओंको देखके पतंजलिने सेश्वरसांख्य अपरनाम पातंजल मत चलाया. उधर उपनिपदवालोनेजी वेद और उपनिपदोंमें ईश्वर दाखल करा. उधर जैनमतवालाजी आता था. तिस समयमें हिंदुलोक मतोंके वास्ते परस्पर बहुत विरोध करने लगे, तब अनेक ऋषिओके नामसें अनेक स्मृतिओ रची. कीसीमें कुछ और कीसीमें कुछ लीख दीया. ऐसें गडुरी प्रवाह चला आया. जब श्रीपार्श्वनाथ जिनको हुआ २८०० वा २७०० वर्षके लगजग गुजरे है तिनके निर्वाण पीछे. तिनोंके शिष्योके शिष्योके पीछे कीसी गामके क्षत्रिके पुत्रनें जैनमुनि पासे दिक्षा लीनी साधुपणेमें तिसका नाम बुद्धकीर्ति रखा सो सरजू नदीके किनारे उपर किसी पर्वतमें तप करता था, तिसके मनमें तप करता अनेक कुविकल्प उत्पन्न हुए, तब तिसने जैनमतकी कितनीक वास्ते लेकर योगाचार विज्ञानाद्वैत क्षणिकवाद नामा मत चलाया. तब लोग उसको मानने लगे, तब तिस मतके चार मत हुए. योगाचार १, माध्यमिक २, वैज्ञाषिक ३, सौत्रांतिक ४. तब लोक चारो मतोंको मानने लगे. तिसकी परंपरामें मौदगलायन और शारिपुत्र और आनंद श्रावक हुए, इनोने बौधमतकी वृद्धि करी. जब महावीर स्वामिके पीछे राजा अशोक जैन मतको छोडके बौद्ध हुआ तिसने अत्यंत बौद्ध मतकी वृद्धि करी. अशोक राजाके पौत्र संप्रति राजानें फिर जैनमतकी वृद्धि करी. बौद्धोक और जैनमतके बलमें वेदमत, अद्वैत पातांजल, सांख्य प्रमुख मतो बहुत कम हो गये. जिस समय संवत ७००० के लगजग कुमारिलजट्ट उत्पन्न हुए तिनोनें मीमांसाके उपर वार्तिका रची. जिसमें कितनेक हिंसक काम निषेध करके और मनकल्पनासें कितनेक वेदश्रुतियोंके नवीन अर्थ बनाके फिर वैदिक मत चलाया, लोक

तिसको मानने लगे. तिस समयमेंही शंकरस्वामी उत्पन्न हुए, तिसनें विचार कियाकी जैनमत और वौधमत मानके अब लोक वैदिक मतकी हिंसा कदापि नहि मानेगे तिस वास्ते समयानुसारी उपनिषदो उपर भाष्य रची. तिसके समयमे पुराने शास्त्रोमें कीतनीक वातां निकाल दिनी और नवीन रचना करी. तिनके समयमें नवीन पुराण, उपपुराण नामसें बहुत शास्त्रों रचे गये. शंकर स्वामीनें राजाओका बल पाकर बौध्मतवालोंको हिमालयसें लेकर श्वेतबंधु रामेश्वर तक कतल करवा माला परंतु जैन मत सर्वथा नष्ट नहि हुआ, किंतु कम हो गया. शं-करस्वामिनें अद्वैतमत, शैवमत और वाममतके मुख्य देव श्री चक्रको द्वारिका शृंगेरी प्रमुख मठोंमे स्थापन करा, तब लोक तिनको मानने लगे. तिनके पीछे रामानुज उत्पन्न हुआ. संवत ११६२ के लगभग तिसने शंकरके मतको खंमन करके श्री वै-ष्णव चक्रांतियोका मत चलाया और उपनिषदोपर शंकरभाष्यसें विरुद्ध भाष्य बनाया, लोक तिसको मानने लगे. तिस पीछे सं-वत १५०० के लगभग वल्लभाचार्यनें रान विलासी मत चला-या. वैष्णवमतमेंसें अनेक शाखा निकली. निंबार्क, मध्वके रा-मानंदजीने वैरागीओका मत चलाया. गुजरात देशमें १०० वर्ष लगभग गुजरे है तिस समयमें एक ब्राह्मणने स्वामिनारायणका पंथ चलाया है. पीछले सर्व मतोंको रद करते है. इस मतके चलानेवालेका चालचलन कैसी होवेगी यह तो हम देखते है. परंतु तिनकी गादीवालेको तो हम देखते है, करोडो रुपइओकी जमा करके अपने [illegible] करा है. [illegible] लोक कहते है, और [illegible] गहना [illegible] पहनते है. [illegible] लोग मा-नते है [illegible]

और जो उनके चेले साधु है वे दो तरेके है. एक धवले वस्त्र रखते है, रुपइए रखते है, उघराणी करके महंतको देते है, और जो भगवे वस्त्र रखते है. वे तुंबा रखते है रुपईये नहि रखते है, जुत्ते पेहरते है, अस्वारिपर चढते है, माथे उपर फेंटा बांधते है, स्नान करते है, खुब नोंतरेसे जिमते है, लोकोंको कहते है नववाम सहित शील पालते है, इनके भक्तजन जैनीओकी तरे कांसिये वजाते है. इस मतको गुजरातमें रजपुत, कुनबी, कोली प्रमुख वहुत लोको मानते है. इनोंने मत वहुत गुजरातमें चलाया है. उधर सिकंदर लोदी वादशाहके समयमें काशीके पंडितोसें लम्भिडके और पतंजल शास्त्र कुच्छक सुण सुणांके कुच्छ मनकल्पित गप्पे मिलाके कवीर जुलाहेनें कवीरमत चलाया. लोक तिसकोभी मानने लगे. कबिरने मूर्ति पूजन निषेध करा. तिसके पीछे तदनुयायी वेद, पुराण और, जैनमतके और मारफतवाले मुसलमानोके मतसें कुच्छक वात लेकर नानकसाहिव वेदि क्षत्रिनें नानकपंथ चलाया, तिसको लाखो लोक मानते है. अकवर वादशाहकी वखतमें दादुजीने दादुपंथ चलाया, तिसको हजारो लोक मानने लगे. उधर तुकाराम भक्तने दक्षिणमें भक्तिपंथ चलाया, तिसको हजारो लोग मानने लगे. दील्लीके पास छुडाणी गामके रहनेवाले गरीबदास नामा जाटनें गरीवदास पंथ चलाया. तिसके संप्रदायी राघु परमानंद, ब्रह्मानंद,, हंसराम प्रमुख अव वेदांती वन रहे है. ब्रह्मानंदतो भाषाकवित वनानेमें कवि वन रहा है, इस मतको लोग मानमें लगे. उधर नानकसाहेवके समयमे गोरखनाथने कानफाडे योगीओका मत चलाया, और स्वरोदय विगेरे ग्रंथ रचे. तिसके पीछे मस्तनाथने नास्तिक कानफाडे जोगीओका पंथ चलाया. इस पंथका महंत दील्लीके पास वहेर गाममें रहता है, इनकोभी लोक मा-

नने लगे. मेवाडके शाहपुरमे रामस्नेही पंथ चलाया. निःकेवल सर्वं दीन राम–राम–राम रटते है. भियानीके पास मेडराज और नानकीने एक मस्कर पंथ निकाला है, तिसकोभी कितनेक मानते है. पंजावमे भाइरामसिंह सुतारने कुकापंथ चलाया है, तिसको हजारो लोक मानते है. गुरु गोविंदसिंहने निर्मला पंथ काढा, अब वेदांत मानते है. चक्कु, कटे, रोहे, गुलावदासी इत्यादि छोटे छोटे अनेक पंथ निकले है सर्व पंथवाले अपनी अपनी खीचडी न्यारी न्यारी पकाते है. एक दुसरे मतको जूठा कहता है, आप सच्चा वनता है. उधर युरोपीअन लोकोने हिंदुस्थानमे इसाहीके मतका उपदेश करणा शुरु किया है. उपदेशसें, धनसें, स्त्री देनेसं लोकोको अपने मतमे वेप्टिझम् देके मिलाते है उधर वंगालेमे रायमोहन, केशवचंद, नवीनचंद, विगेरे वावुओनें ब्रह्मसमाज मत खडा करा है. तिसका कहनाँ ऐसा है कि ईश्वरका कहा पुस्तक जगतमें कोईभी नहि है. लोकोनें अपनी अपनी वुद्धिसें पुस्तक वनाके ईश्वरके नामसें प्रसिद्ध करे है, पुरुषकों नेक काम करना चाहिये, परभव है वा नहि, नरक स्वर्ग कोन जाने है कि नहि. इत्यादि मतोंसे आर्य लोकोंकी वहुत दुर्दशा हो रही है तोभी इतनेमें दयानंद सरस्वतिकोंभी नवीन मत चलानेकी हिरस उत्पन्न भइ. तव अपनी अक्कलसें खुव विचारा और शौचा होवेगा कि जेकर ब्राह्मण, सन्यासी, वैष्णव वगैरा के पुस्तकानुसार उपदेश करुंगा तो प्रतिवादीओकों उत्तर देना कठिन पडेगा. और ब्रह्मा. शिव. विष्णु ये देव ठीक नहि और पुस्तकभी सन्यासी ब्राह्मणोंने वहुत जूठे रच दिये है. तिनके माननेमें आदमीका वहुत फजिता होता है. प्रतिवादीओकों उत्तर देनाभी मुशकील है. इस वास्ते वेदकी संहिता ईश्वरकी कथन करी हुइ है. एक ईशावास्यक उपनिषद् छो-

कि बाकि शेष उपनिषद्, वेदोंके चारे ब्राह्मणभाग, और सर्व स्मृतिओ, सर्व पुराणादि प्रमाणिक नहि है, जितने तीर्थ गंगा निगेरे है वे सर्व मिथ्या कल्पित है, वेदकी संहिताके जे प्राचीन भाष्य, टीका, दीपिकादि है वे भी यथार्थ नहि है, इस वास्ते अपनी बुद्धिसें दो वेद अर्थात् ऋग् और यजुर्वेद उपर भाष्य रचना शुरु करा. (सो हमने अधूरा देखा है) दयानंदजीतो अजमेरमें काल कर गये संवत् १९४० में मेंने सुणे है, सो कहा जाने भाष्य पुरा हुआ के नहि. हमारी समजमें दयानंदने बहुत बाते जैनमतसें मिलती कथन करी है. इतनाही फरक है कि दयानंद सरस्वति अढार दूषण वर्जित पुरुषको कथन मान लेता और घृतादि सुगंधी वस्तुका हवन, यजन करना छोड देना. जगतकों प्रवाहसें अनादि मान लेता और सदामुक्त रहना जीवोंको मान लेना तो दयानंद परमानंद सरस्वति हो जाता. परंतु भगवंतनें ऐसाही ज्ञानमें देखाथा सो बन गया. इसके मतमें बहुत अंग्रेजी, फारसीके पढनेवाले लोक है, वे कदाग्रहसें लोकोंमें मनकी चावन झगडते फिरते है, परंतु ब्रह्म गगाजीओने और दयानंदजीने कितने हिंदुओंको इसाइ होनेसें रोका है. ये कबीरसें लेकर दयानंदजी तक सर्व मतोंवाले मूर्तिपूजन नहि मानते है. बाकी अन्य जो देश देशांतरोंमें नवीन नवीन, छोटे छोटे पंथ निकले है वे सर्व आर्योंकी बुद्धि बीगाडने के हेतु है, वे सर्व कितनेक हिंदुओंके अंधी गदहीके समान है. जैसें अंधी गदहीको चाहे मार्ग कर्षो तो खबर नहि. जिसने गांम पर ईसा मार्ग और खान रखा मोही उसर चढ गया हसी. तें हिंदु कितनेक है, जिसनें नवीन पंथ चलाया तिसके पीछेही लग जाते है उपर जैनमतमेंसें मत निकल निकले परन्तु तिनका मत न ट बना है व मदार [illegible]

नीकला. तिसके चार मत अर्थात् संघ बने. मूलसंघ, काष्ठासंघ माथुरसंघ. और गोप्य संघ. इनमेंसें वीसपंथी, तेरापंथी, गुमान-पंथी, तोतापंथी. इनकेभी परस्पर कितनीक बातोका विरोध है. और मूल श्वेतांबर मतमेंसें पुनमीआ निकला, पुनमीएसें अंचली-आ निकला, नागपुरीआ तपामेंसें पासचंदीआ मत निकला; पी-छे लुंपक लिखारीनें विना गुरुके जिन प्रतिमाका उत्थापक सन्मू-र्छिम पंथ निकाला, लुंपकमेंसें वीजा नामकनें वीजा मत निकाला कडुआ वनीयेनें कडुआ मत निकाला, धर्मसी ढुंढीएनें आठ को-टि पंथ निकाला, लवजीनें मुखबंधे ढुंढकोका पंथ निकाला, धर्म दास छीपीनें गुजरातके मुखबंधे ढुंढकोका मत निकाला, रघुनाथ ढुंढकके चेले भीखम ढुंढकनें तेरापंथीओका पंथ चलाया, राम-लाल ढुंढकनें अजवी पंथ निकाला, वखता ढुंढकनें कालवादी-ओका मत चलाया, अब आगे क्या वत हो गइ है. बहुत कुमती नवीन पंथ चलावेंगे. इन पूर्वोक्त सर्व म-तोको परस्पर विरोध है. इन सर्व मतोके माननेवाले हिंदु भेड तुल्य है: जैसे एक भेड मां करती है तब सर्व भेडें मां करती है. इस वास्ते हिंदुलोक सर्व मतको छोडके नवीन मतोके मान-नेसें गडुरी प्रवाहकी तरें चलते है. और कहो कहो करते फिरते है. कोइ इस्लाह करता है. कोइ नहनहका कलमा पढता है. कोइ कुछ करता है और कोइ कुछ करता है तब सर्व मतोके शास्त्र पढके कोइ नहि निकलता है. इस वास्ते गडुरिका प्रवाह करते है. जिसको बुद्धिमान् परिहरे. कुलवंदनवत्. इति नवमा भेद.

अब आगम पुरस्सर सर्व क्रिया करे ऐसा दशमा भेद लि-खते है. मुक्तिके मार्गमें अर्थात् प्रधान लोक लोक निश्चय मार्ग ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपमें प्रमाण कोइ नहि है. एक गम ठेका-

दि अठारह दूषणके जितनेवाले जिनके कहे सिद्धांतकों वर्जके, क्योंकि जीनागम जूठा नहि है. उक्तंच—

" रागाद्वाद्वेषाद्वा मोहाद्वा वाक्यमुच्यते ह्यनृतं । यस्य तु नैते दोषास्तस्यानृतकारणं किं स्यात् ॥ १ ॥ "

अर्थ–जे राग, द्वेष और मोहसें जूठा वाक्य बोलते है, जीसकुं ए दोष नहिं लागता है, सो असत्यका कारण क्युं न होता है.

जिनागम पूर्वापर विरुद्ध नहि है, इस वास्ते सत्य है. तथा धर्मका मूल दया है और जिनागममें जो क्रिया करणी कही है सो सर्व दयाकीही वृद्धि करती है, इस वास्ते जगवंतनें प्रथम सामायिक कथन करा है; और क्षांति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, संयम, अकिंचन. ब्रह्मचर्यादि है ये सर्व दयाके पालक कथन करे है. इस वास्ते जिनागम समान कोइजी पुस्तक प्रमाण प्रतिदिन नहि है. इस वास्ते सर्व क्रिया, चैत्यवंदनक, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमणादि (चैत्यवंदन, गुरुवंदन, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण विधि सर्व धर्मरत्नकी वृत्तिसें जाननी) बहुत विस्तार है इस वास्ते इहां नहि लिखी है. सर्व विधि वरुण महाश्रावकवत् करे. इति दशमा जेद.

अथ अग्यारमां यथाशक्ति दानादिकमें प्रवर्त्ते सो गुण लिखते है. अपनी शक्ति न गोपवे और जिस्से आत्माको पीमा न होवे, परिणाम जग्न न होवे तेसें दानादि चार प्रकारके धर्ममें चंडोदय राजाकी तरें आचरण करे. कैसे आचरण करे जैसे बहुत काल तक दानादि करणेंमे सामर्थ्य होवे. इहां जावार्थ यह है. बहुत धन होवे तो अति तृष्णावान कृपण न होवे. धन थोमा होवे तो अति उदार न होवे. जिस्से सर्व धनका अजाव होवे

पीछे दुःखी होजावे. इसी वास्ते आगममें कहा है, "लाभोचियदाणे. लाभोचियपरिभावे, लाभोचियनिहीगरे सियासो" ऐसे करता हुआ बहुत कालमें प्रभूत दान देवे. ऐसेही शील तप भावमेंभी विचार लेना. पारिणामिक बुद्धिसें विचारके धर्ममें प्रवर्त्ते, चंद्रोदयवत्.

चतुर्विध धर्मका स्वरूप.

अथ दान, शील, तप, भावना, इन चारोंका स्वरूप इस जगे भव्य जीवोंके जानने वास्ते धर्मरत्न शास्त्रकी वृत्तिसें लिखते हे, तिनमेंसें प्रथम दानके तीन भेद है, ज्ञानदान, अभयदान, धर्मोपग्रहदान तिनमें ज्ञानदान इस तरेंका है. जीवादि नव पदार्थका विस्तार और नभय लोकमें करणीय कृत्य जिस करके जीव जाणे तिसको ज्ञान कहते है, सो ज्ञान पांच प्रकारका होता मतिज्ञान; श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, और केवलज्ञान. तिनमें मति ज्ञानके तीनसो छत्तीस भेद है, और श्रुतज्ञानके चौदह भेद हैं, अवधिज्ञानके दो भेद है, मनः पर्यायज्ञानके दो भेद है, केवलके भवस्थ, अभवस्थ दो भेद हैं. इन पांचो ज्ञानका स्वरूप अनुमाने १०००० लोकप्रमाण भाष्यटीकासें विशेषावश्यकमें कथन करा है, तहांसें जान लेना. इन पांचो ज्ञानमेंसें व्यवहारमें श्रुतज्ञान उत्तम है, दीपककी तरें स्वपरप्रकाश होनेंसें. इस वास्ते श्रुतज्ञान प्रधान है. श्रुतज्ञान मोह महांधकारकी लेहेरोके नाश करणेंको सूर्य तुल्य है, और ज्ञान दिष्ट, अदिष्ट, इष्ट वस्तुको मलनेको कल्प वृक्ष है. ज्ञान दुर्जय कर्मकुंजरकी घटाके नाश करणेको सिंह समान है. ज्ञान जीव, अजीव वस्तुका विस्तार देखनेको लोचन है. ज्ञान करके पुण्य पाप जाणीने पुण्यमें प्रवृत्ति और पापमें निवृत्ति करे, पुण्यमें प्रवर्त्तमान हुआ स्वर्ग,

अपवर्गका सुख पामे, और पापसें निवृत्ति करे तो नरक, तिर्यंच-के दुःख पापसें छुटे. जो अपूर्व ज्ञान पढे सो अन्य जवमें तीर्थंकर पद पामे, जो पढावे परको सम्यग् श्रुत तिसका फल हम क्या कहे यद्यपि बहुत दिनोंमें एकपद धारण करे, पक्षमें अर्ध श्लोक पढे तोन्नी उद्योग न छोडे. जो ज्ञान पढनेकी इच्छा है तो अज्ञानी प्राणीज्ञी बहुमान पूर्वक माषतुषवत् ज्ञान पढनेमें उद्यम करे तो शीघ्रही केवल ज्ञान पामे. यह ज्ञान निर्वाणका कारण और नरकका वारनेवाला है. जला मुनिज्ञी ज्ञान रहित होवे तोन्नी कदापि मुक्ति न होवे. सेविझपक्षी जैसें सम्यक्त्व सहित सुदृढ ज्ञान धरता है सो अच्छा है; परंतु ज्ञान विहीन तीव्र तप चरणमें तत्पर होवे तो ठीक नहि. जो जीव जिनदीक्षा पाकर पुनः पुनः संसारमें ज्रमण करता है सो परमार्थके न जाननेसें, ज्ञानावरणके दोषसें ज्ञानहीन चारित्रमें उद्यतज्ञी निर्वाण न पामे, अंधेकी तरें दोमता हुआ संसार कूपमें पमे. अज्ञानी वैराग्यवानज्ञी जिनज्ञाषित साधुश्रावकधर्म विधि पूर्वक कैसे कर सके. जे सकल जगतको करतलगत मुक्ताफलवत् जानते है और ग्रह, सूर्य, चंड, नक्षत्रकी आयु जानते है ये सर्व ज्ञानदानका प्रज्ञाव है.

दानका स्वरूप.

ज्ञान दान देता हुआ जगतमें जिन शासनको वहता है, श्री पुंडरीक गणधरकी तरें अमोल परम पद पावे. तिस वास्ते ज्ञानदान देना चाहिए, और ज्ञानवानमुनिके पीछे चलना चाहिये और कल्याणके इच्छकनें सदाज्ञानकी ज्ञक्ति करणी चाहिये. इति ज्ञानदान.

दुसरा अजय दान—सर्व जीवांकी रक्षा करणी ऐसा दयाधर्म प्रसिद्ध है, एकही अज्ञयदान सर्व जीवांको देकर वज्रायु-

षकी तरें क्रममें प्रक्षीण जरामरण सिद्ध होवे. नवनीरू जीवांको शरण रहितांको जाणीने स्वाधीन अन्नयदान नव्य जीवने देना चाहिये. इति अन्नयदान.

धर्मोपग्रहदान अन्नादिदान आरंनसें निवृत्ते मुनियोंको देवें. इस दानके प्रनावसें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वलदेव, वासुदेव, मंरुलीक जगतमें अधिक पद्वीवाला होता है, सो सुपात्र दानसें होता है. जैसें नगवान श्री कृष्ण जगतनाथ हुआ घृतके दान देनेसें, और मुनियोंको नक्तदान देनेसें जैसें नरत चक्रवर्ती हुआ. मुनिवरका दर्शन करनेसे एक दीनका पाप नष्ट होता है, और जो कोइ मुनिको दान देवे तो तिसके फलका तो क्या कहेना है. ज्यां समनाववाला मुनि प्रवेश करे तो वो घरनी पवित्र है. साधु विना जिनधर्म कदापि प्रगट नहि हो सकताहै, इस वास्ते मुनियोंकों शुद्ध दान गृहस्थनें देना चाहिये. और सुपात्र विना अनुकंपादान सर्व जीव नूखे, प्यासे, नंगे, रोगी प्रमुखकों अपनी शक्ति अनुसारे देना चाहिये. गृहस्थोसें शुद्ध तपनी नहि हो शकता है, और विषयासक्तोंसें शीलनी पूर्ण नहि पल शकता है, आरंनी होनेसें नावी कठिन होता है, इस वास्ते गृहस्थके दानही मुख्य स्वाधीन है. ऐसे दानके तीन नेद है.

शीलका विचार.

शील है सो अपने कुल घर नन्नस्थलमें चंद्रमाकी तरें जगतमें कीर्तिका प्रकाशक है. नर, सुर, शिव सुखका करणेवाला शील है सो सदा पालना चाहिये. जाति, कुल, रूप, बल, श्रुत, विद्या, विज्ञान, बुद्धि करके रहितनी शीलवान् पुरुष सर्वत्र पूजनीय है, सो शील दो तरेंका है, देश और सर्व: तिनमें देशशील सम्यक्त्व मूल बारा व्रत गृहस्थके है और साधुओके अठारह ह-

जार शीलांग निरतिचार जावजीव विश्राम रहित धारण करणा सर्वशील है. लघुकर्मी और महासत्ववानो जीव विषम आपदामेंजी पमा हुआ मन वचन काया करके शील पालता है सीताकी तरें.

तपका विचार.

असंख्य जावोंमें उपार्जित कर्मरूप कचरके पुंजको उमावनेमें पवन समान ऐसा तप, शीलयुक्तकोंजी यथाशक्ति करना चाहिये, सो तप दो प्रकारका है, बाह्य ने अन्यंतर; दोनोंके ब ब जेद है. इतने कर्म नरकवाला जीव बहुत हजारो वर्ष तक दुःख जोगनेमें क्षय नहि कर शका है. जितने कर्म चतुर्थजक्त एक उपवास शुज जावांसे करनेवाला क्षय कर शकता है. तीव्र तप चरण करनेसें सिंह समान साधु तीर्थकी उन्नति करके विष्णुकुमारवत् परम पदको प्राप्त हुए है. इस वास्ते तपयुक्त साधुजनोंकी जक्ति करे और आपजी कर्मक्षय करणे वास्ते तप करे. इति तप.

भावका विचार.

शील पालो, दानजी देवो, तपजी करो परंतु निर्मल जाव विना सर्व करणी निष्फल है, फ्कुके फुलवत. शुज जावकी वृद्धि वास्ते अनित्यादि बारां जावना जव समुद्रमें नाव समान जावनी चाहिये. नाक विना जैसे रूप और लवण विहीन व्यंजन, जाव विहुणा धर्म ये तीनों हसनेकी योग्य है. जिसनें पूर्व जवमें सुकृत्य नहि करा, मरुदेवी स्वामिनीकी तरें शुज जावनाके वशमें जीव निर्वाण पद पामे है. इति जावना. इति अष्टाम्सा जेद.

अब विशेष नामा बारमा गुन लिखते है. हितकारी,

पच्चक्खाणी इसलोक परलोकमें पाप रहित षमावश्यककी क्रिया जिनपूजादि निरवद्य क्रिया तिसको सम्यग् गुरुके उपदेशसें अंगीकार करता हुआ, सेवता हुआ लज्जा न करे. कैसी है क्रिया, चिंतामणि रत्नकी तरें दुर्लन पावणी है, तिस क्रियाको देखके जेकर मूर्ख लोक हांसीन्नी करे-तोन्नी लज्जा न करे. दत्तवत्, इति वारमा न्नेद.

अथ अरक्तद्विष्ट नामा तेरमा गुण लिखते है. देहकी स्थितिके निबंधनकारण धन, स्वजन, आहार, घर, क्षेत्र, कलत्र, वस्त्र, शस्त्र,यानवाहनादिक जे है तिनमें रागद्वेष रहितकी तरें वास करे, संसार गत पदार्थोंमें अत्यंत गृद्धि न करे, शरीरके निर्वाहकी वस्तुमें अरक्तद्विष्ट न होवे, ताराचंद्रनरेंद्रवत्. इति तेरमा न्नेद.

अथ मध्यस्थ नामा चौदमा न्नेद लिखते है. उपशम कषायका अनुदय तिस करके सार पधान धर्मस्वरूप जो विचारे सो उपशम सार विचारवाला न्नाव श्रावक होता है. कैसे ऐसा होवे, विचार करता हुआ राग द्वेषसें बाधित न होवे, सो दिखाते है. मैंने यह पक्ष बहुत लोकोंके समक्ष अंगीकार करा है, और बहुत लोकोंने प्रमाण करा है. अब मैं इस पक्षको कैसे छोडुं यह विचार मध्यस्थके मनमें नहि आता है, इस वास्ते रागन्नी पीडा नहि कर शक्ता है, तथा मेरा यह प्रत्यनीक है, मेरे पक्षको दूषित करनेसें; इस वास्ते इसको बहु जनो समक्ष शिष्ट करूं, सत्, असत् दूषण प्रगट करी आक्रोश देने करके तिरस्कार करूं. मध्यस्थ पुरुष ऐसे द्वेष करकेन्नी पीडित नहि होता है किंतु मध्यस्थ सर्वत्र तुल्यचित्तहितकान्नी अपना और परका उपकार वांछता हुआ असत् आग्रह सर्वथा गीतार्थ गुरुके वचनसें त्याग देता है प्रदेशी महाराजवत्. इति चौदमा न्नेद.

अथ असंवद्ध ऐसा पंदरवा ज्ञेद लिखते है. विचार निरंतर करता हुआ तन, मन, धन, स्वजन, यौवन, जीवित प्रमुख सर्व वस्तु क्षणजंगुर है, ऐसा जानता हुआ बाह्य संबंधजी बाह्य वृत्तिसें प्रतिपालन वर्धनादि करके संयुक्तजी है तोजी तन, धन, स्वजन करि हरि प्रमुख वस्तुओमें प्रतिबंध मूर्छा न करे, नरसुंदर नरेश्वरवत्. जाव श्रावक ऐसा विचारता है, ग्रेन करके द्विपद चतुष्पद क्षेत्र, घर, धन धान्य, सर्व. एक कर्म डुसरा आत्मा यह आत्मा कर्मके वश जैसें अच्छे ज्ञुंमे कर्म करे है तैसे अच्छे ज्ञुंमे परज्ञवको जाता है. कोइ दिनकी बाजी स्वप्नेंइजालवत् है. हे चिदानंद ! इनमेंसे तेरी वस्तु कोइ नहि है. इति पंदरवा ज्ञेद.

अथ परार्थ कामोपज्ञोगी ऐसा सोलमा गुण लिखते है. यह संसार अनेक डुःखकां ज्ञाजन है. यतः—

" डुःखं स्त्रीकुक्षिमध्ये प्रथममिह ज्ञवेद् गर्जवासे नराणां बालत्वे चापि डुःखं मललुलिततनुः स्त्रीपयःपानमिश्रं । तारुण्ये चापि डुःखं ज्ञवति विरहजं वृद्धजावोप्यसारः संसारे मर्ण मुक्त्वा वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित्. " ॥ १ ॥

अर्थ—प्रथम स्त्रीका उदर में गर्जावासमें डुःखहै, पीछे बाल वयमें शरीर मलसें मलिन होता है, और स्त्रीका स्तनपानमेंजी डुःख है. यौवन वयमें विरहका डुःख वृद्ध पणमें तो सब असार है. कहो संसारमें अल्प पण सुख है ? अर्थात् नहिं है.

तैसें विरक्त मन हुआ थका ऐसा विचारे, इन ज्ञोगोंसें प्राणीओकों कदी तृप्ति नहि होती है ऐसा जानकर अन्य जनोंकी दाक्षिण्यसें ज्ञोगोंमें प्रवर्त्तते है, जाव श्रावक पृथ्वीचंद्र नरेंद्रवत् इति सोलमा ज्ञेद.

अथ वेश्याकी तरें निराशंस होके गृहवास पाले ऐसा स-तरमा भेद लिखते है. वेश्याके तरें छोडी है टकाववाली बुद्धि, जैसें वेश्या निर्धन कामुकसें जब विशिष्ट लाभ नहि जानती है और किंचित लाभभी नहि जानती है तब विचारती है, आज वा कल्ल इसको छोड देवेंगी तब तिसका मंदादरसें उपचार करती है. ऐसेही भाव श्रावकभी आज वा कल्ल मैंने यह संसार छोड दे-ना है ऐसे मनोरथ वाला परकीय पर संबंधी घर मानके गृहवास पालन करे, किस वास्ते ? संसार छोडनेकीतो शक्ति नहि है, इस वास्ते शिथिल भाव मंदादरवाला हुआ थका संयमके न प्राप्त होनेसेंभी कल्याणको प्राप्त होता है, वसुश्रेष्ठिसतसिद्धवत्. इति सत्तरमा भेद.

इति कथन करे सतरे प्रकारके भाव श्रावकका भेद. इन पूर्वोक्त गुण युक्तको जिनागममें भाव श्रावक कहा है. भाव श्रावक कहो वा द्रव्य साधु कहो. आगममें भाव श्रावककों द्रव्य साधु कहा है. यदुक्तं—" मिउपिंडो दव्वघडो सुसावओ तह दव्व साहुत्ति. " अर्थ—मृत पिंड है सो द्रव्य घट है और भाव श्रा-वक है सो द्रव्यसाधु है. इति भावश्रावक धर्म निरूपणं संपूर्ण.

भावसाधुका स्वरूप.

अथ भावसाधुका स्वरूप लिखते है. पूर्वोक्त भाव श्रावकके गुण उपार्जनेंसे शीघ्र भाव साधुपणेको प्राप्त होता है. यह उ-त्सर्ग है एकांत नहि, इनके विना उपार्जेभी साधु व्यवहार नयके मतसें हो शक्ता है. परंतु यहां भावसाधुहीका स्वरूप लिखते है. भाव साधु कैसा होना है सो लिखते है. निर्वाण साधक यो-गांको जिस वास्ते साधते है, निरंतर और सर्व जीवो विषे स-मभाववाला है तिस वास्ते साधु कहते है. क्षमादि गुण संपन्न

होवे, मैत्र्यादि गुण भूषित होवे; सदाचारमें अप्रमादी होवे, सो भाव साधु कहा है. यतः—" निर्वाणसाधकान् योगान् यस्मात् साधयतेऽनिशं । समश्च सर्वभूतेषु तस्मात् साधुरुदाहृतः" ॥ १ ॥ क्षान्त्यादिगुणसंपन्नो, मैत्र्यादिगुण भूषितः । अप्रमादी सदाचारे भावसाधुः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥ अर्थ—जे निर्वाणका साधने वाले योगकुं सदा साधते है. और सर्व प्राणी मात्रमें समभाव रखते है, उसकुं साधु कहते है. जे क्षमा प्रमुख गुणवाले है, मैत्री आदि गुणसे सुशोभित है, प्रमाद रहित और सदाचारी है, सो भावसाधु कहा है. १–२

प्रश्न—कैसे छद्मस्थ जीव भाव साधुको जाणी शके?

उत्तर—लिंगो, चिन्हो करके जाणे,

प्रश्न—वे चिन्ह कौनसें है ?

उत्तर—वेही लिखे जाते है. तिस भाव साधुके लिंग चिन्ह सकल संपूर्ण मोक्ष मार्गानुपातिनी मार्गानुसारिणी क्रिया पडिलेहनादि चेष्टा करे तथा करणेकी इच्छा प्रधान धर्म संयममें होवे तथा प्रज्ञापनीयत्व असत् अभिनिवेशपणेका त्यागी अर्थात् कदाग्रहका त्यागी, कुटिलतासें रहित तथा क्रिया सुविहित अनुष्टानमें अप्रमाद अशिथिल पणा तथा तप, संयम, अनुष्टानमें यथा शक्ति प्रवर्त्तना तथा महागुणानुराग गुण पक्षपात तथा गुरु आज्ञा आराधन धर्माचार्यके आदेशमें वर्तना, यह सात लक्षण भाव साधुके है.

भाव साधुका लिंग.

अथ इनका विस्तारसें स्वरूप लिखते है.

अन्वेषण करीए अभिमत स्थानकी प्राप्तिके ताई पुरुषोंने जो, सो मार्ग कहीये है. सो मार्ग दूप, भाव भेदोंसें दो तरेका

है. द्रव्य मार्ग ग्रामादिकका है. और भाव मार्ग मुक्ति पुरका सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप है अथवा क्षयोपशम भावरूप भाव मार्ग है. तिस करके इहां अधिकार है. सो फेर मार्ग कारणमें कार्यका उपचार करणेमें आगम नीति अर्थात् सिद्धांतमें कथन करा आचार है. अथवा संविज्ञ, पापसें डरनेवाले बहुत सत् साधुओने जो आचीर्ण करा है सो वीतरागके वचन रूप है. उक्तंच—

" आगमो हि आप्तवचनं, आप्तं दोषक्षयाद्विदुः, वीतरागोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयाद्धेत्वसंभवात्." ॥ १ ॥ इसका भावार्थ आगम सिद्धांत आप्तके वचनांको कहते है: और आप्त अगरह दूषणोके नाश होनेसें होता है. आप्त कहो चाहे वीतराग कहो. और वीतराग अनृत वाक्य असत्य वचन नहि बोलता है, हेतुके असंभव होनेसें. तिस आगमकी नीति उत्सर्ग, अपवादरूप शुद्ध संयमोपाय, सो मार्ग है. उक्तंच—

" यस्मात् प्रवर्त्तकं भुवि निवर्त्तकं चांतरात्मनो वचनं । धर्मश्चैतत्संस्थो मौनींद्रं चैतदिह परमं ॥ १ ॥ अस्मिन् हृदयस्थे सति हृदयस्थस्तत्त्वतो मुनींद्र इति । हृदये स्थिते च तस्मिन् नियमात् सर्वार्थसंसिद्धिः ॥ २ ॥ " भावार्थ—जिस हेतुसें जगतमें प्रवर्त्तक और निवर्त्तक वचन अंतरात्माके है और यही धर्म है जब ऐसा धर्म संस्थित है सो जैनमतमें परम मुनींद्र तीर्थंकर भगवान् है. ऐसें धर्मके हृदयमें स्थित हुआ निश्चयही सर्वार्थकी सिद्धि है. तथा संविज्ञ मोक्षाभिलाषी बहुत पुरुष अर्थात् गीतार्थ मुनिजन तिनके विना अन्य जनोंके वैराग्य नहि हो शक्ता है. तिनोंने जो आचीर्ण करा है, क्रियारूप अनुष्टान यहां संविज्ञ ग्रहणेसें असंविज्ञ बहुत जनोंभी कोइ आचीर्ण करे तोभी प्रमाण नहि ऐसा दिखलाया है. यह व्यवहारभाष्यं,

" जंजीयमसोहीकरं पतछ्यपमत्तसंजयाइहिं । बहुएहिवि आयरियं न पमाणं सुद्वचरणाणं ॥ १ ॥ " जो जीतव्यवहार शुद्धिका करनेवाला नहि, क्योंकि पार्श्वस्थोनें प्रमत्त संयती बहुते आलसीओ नें आचरण करा है, प्रवर्त्ताया है सो जीत अर्थात् आचरणा, शुद्ध चारित्र पालनेवाले मुनिओंकों प्रमाण नहि. वह जनोंके ग्रहण करनेंसें कदाचित् किसी एक संविझनें अजाणपणे आदिसें वितथ आचरणा करी होवे सोन्नी प्रमाण नहि. इस वास्ते संविझ बहुजनोंने आचरण करा होवे सो मोक्ष मार्ग है. इस वास्ते नयानुसारणी आगम बाधा रहित संविझ व्यवहाररूप सो मार्गानुसारिणी क्रिया है.

प्रश्न—आगममें कथन करा है सोइ मोक्षमार्ग कहना युक्त है, परंतु बहुजनाचीर्णकों मार्ग कहना अयुक्त है, शास्त्रांतरसें विरोध होनेंसें; और आगमको अप्रमाणकी आपत्ति होनेंसें; सोइ दिखाते हैं. जेकर बहुत जनोंका आचरण करा मार्ग सत्य मानोगे तबतो लौकिक धर्म मानना चाहिए, तिसको बहुत लोक मानते हैं. इस वास्ते जो आगम अनुगत है सोइ बुद्दिमानोंकों मानना—करणां चाहिये. बहुतोंने मानातो क्या है, क्योंकि बहुते माननेवाले श्रेयार्थी नहि होते हैं. तथा ज्येष्ठ—बडे उचितके विद्यमान हुआ कनिष्टको पूजना अयुक्त है. इसी तरें ज्ञगवंतके वचन आगमके विद्यमान हुआ चाहो बहुतोंनें आचरण करा है, तोन्नी तिसको मानना अयुक्त है. और आगमको तो केवली न्नी अप्रमाण नहि कर शक्ता है, क्योंकि समुचय उपयोग संयुक्त श्रुतज्ञानी यद्यपि अशुद्ध सदोष आहार ग्रहन करे तिस आहारको केवली न्नी खा लेता है. जेकर केवली तिस आहारको न ज्ञोगे तब तो श्रुतज्ञान अप्रमाणिक हो जावे. एक अन्य दूषण यह है कि

आगमके होते हुआ आचरणा प्रमाण करीए तो आगमकी लघुता प्रगट होवे है.

उत्तर—पूर्वपक्षीनें जो कहा सो सत्य नहि है. "अस्यसूत्रस्य"—इस सूत्रका और शास्त्रांतरोंका विषय विभागसे न जाननेंसें, सोइ दिखाते है. इस सूत्रमें संविज्ञ गीतार्थ जे है वे आगम निरपेक्ष नहि आचरणा करते है. तो क्या करते है? जिस आचरणासें दोषतो रुक जाते है और पूर्वकृत कर्म क्षय हो जाते है सो सो मुख्योपाय रोगीकी रोगावस्थामें जैसे रोग शांती होवे तैसें करते है " दोषा जेण निरुझंति जेण खिज्जंते पुव्वकम्माइं । सो सो मुक्खो वाउ रोगावथ्था सुसमणंच " ॥ १ ॥ इत्यादि आगम वचनका अनुस्मरण करते हुए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव पुरुषादि विचारके यथा उचित संयमकी वृद्धि करनेवालाही आचरणा करते है, सो अन्य संविज्ञ गीतार्थ प्रमाण कर लेते है, सोइ मोक्ष मार्ग कहा जाता है. पूर्वपक्षीके कथन करे शास्त्रांतर जे है वे असंविज्ञ अगीतार्थोंनें जो असमंजसपणे आचरणा करी है तिसके निषेध वास्ते है इस वास्ते आचरणांका शास्त्रांतरोंके साथ कैसें विरोध संभव होवे. तथा आगमकोंभी अप्रमाणता नहि है किंतु सुष्टुतर प्रतिष्ठा है जिस वास्ते आगमभी आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा, जीत भेदसें पांच प्रकारका व्यवहार प्ररूपण करता है. यदुक्तं श्री स्थानांगे—

" पंचविहे ववहारे पन्नत्ते, तं जहा, आगमववहारे, सूयववहारे, आणाववहारे, धारणाववहारे, जीयववहारे. " जीत और आचरणा दोनों एकही नामके अर्थ होनेंसें. जब आगम आचरणाकों प्रमाण करता है तब तो आगमकी अतिशय करके प्र-

तिष्ठा सिद्ध है. इस वास्ते आचरणा आगमसें विरुद्ध नहि और प्रमाणिक है, यह स्थित पक्ष है. इस वास्ते धर्मरत्न शास्त्रका कर्त्ता कहता है—

" अन्नह जणियं पिसुए किंची कालाइ कारणा विरूव। आइन्न मन्नहच्चिय दीसइ संविग्ग गीएहिं ॥ ८१ ॥ व्याख्या–अन्यथा प्रकारांतर करके पारगत तीर्थंकरके आगममें कथन कराजी है तोजी कोइ कोइ वस्तु कालादि कारण विचारके दुःखमादि स्वरूप आलोचन पूर्वक आचरणा व्यवहार गीतार्थ संविज्ञोंने अन्यथा करा देखते है, सोइ दिखाते है. गाथा—

" कप्पाणं पावकरणं अग्गोयरचाउझोलिया जिखा । उवग्गहिय कडाहय तुंबय मुहदाण दोराइ ॥ ८२ ॥ " व्याख्या कल्प साधुकी चांदरा पछेवमीयां प्रावरणा आत्मप्रमाण लंबीया और अढाइ हाथ प्रमाण विस्तार चौमीयां कथन करीयां है सो आगममें प्रसिद्ध है. प्रावरणका अर्थ जिस्से शरीर सर्व ओरसें वेष्टन करीये ते प्रावरण है ने प्रसिद्ध है. ये प्रावरण कारण विना जब जिक्षादिकके वास्ते जावे तब प्रावरणा समेटके, स्कंधे उपर रखे, यह आगम कथन है. और आचरणासें तो इस कालमें सर्व शरीर ढांकके जाते है. तथा अग्रावतार नामा वस्त्र साधु जनोंमे प्रसिद्ध है सो साधु गखे ऐसा आगममें कथन है. संप्रति कालमें पूर्व गीतार्थ संविज्ञोंकी आचरणासें तिस अग्रावतार वस्त्रका त्याग करा है. तथा कटीपट्टक, चोलपट्टकका अन्यथाकरणा, आगममें तो चोलपट्टक करणा कारण पडे तो कहा है और कायोत्सर्गादिकमें चोलपट्टेको कुहणीओंमें दाबके रखना कहा है. और संप्रति कालमें आचरणामें चोलपट्टक सदा कटिमें कड़ी दोरमें बांधते है. तथा जोलिका दो गांठ करके निपं-

लित पात्र वेदरूप तिस्सें भिक्षा लेनेको जाना. आगममें तो भणिवेद प्रत्यासन्न पात्रबंध झोलिके दोनों अंचल मुष्टिसें धारण करणे कहे है. और आचरणासें अब कुहणीके समीप बांधते है. तैसेंही उपग्राही तुंबकके नवीन मुख जोडना तथा डुंबक लेपनकादिके मुखमें डोरी देनी यह मुनि जनोंमें प्रसिद्ध है. ये आचरण संप्रतिकालमें है. तथा—

" सिक्किगनिक्खिवणाइ पज्जोसवणाइतिहिपरावत्तो । भोयण विहियअन्नत्तंएमाइं विविहमन्नंपि ॥ ८३ ॥ टीका दवरक डोरी करके रचा हुआ भाजनाधारविशेष तिसमें रखके पात्रांको बांधना आदि शब्दसें उक्त लेपरोगानादिसे पात्रांको लेप करणां, तथा पर्युषणादि तिथिका परावर्त्त करणा. पर्युषणा तिथि संवत्सरिका नाम है, तिसका परावर्त्त पंचमीसें चौथके दिन करणी, आदि शब्दसें चतुर्मासिक ग्रहण करणा, तिसकी तिथिका परावर्त्त चौमासा पूर्णमासीसें चौदसकों करणां ऐसा जो तिथ्यंतर करणा सो प्रसिद्ध है. तथा भोजन विधि जो अन्यतरें सें करते है सो यतिजनोंमें प्रसिद्ध है. यह सर्व व्यवहार पूर्व गीतार्थ संविज्ञोंकी आचरणासें संप्रतिकालमें चलता है. एवमादि ग्रहण करणेंसें षट् जीवनिकाय अध्ययन पढनेंसें शिष्यकों छेदोपस्थापनीय चारित्र देते है. इत्यादि गीतार्थोंकी आचरणासें विविध प्रकारका आचरित प्रमाणभूत है ऐसा भव्य जीवोंकों जानने योग्य है. तथा च व्यवहार भाष्यं—

"सथ्थ परिन्ना छक्काय संजमो पिंड उत्तर झाए रुखे वसहे गोवे जो सोहीय पुक्खरिणी ॥ १ ॥" इस गाथाका लेश मात्र अर्थ ऐसे है. आचारांगका शस्त्रपरिज्ञाध्ययन सूत्रसें और अर्थसें जब जाणे, पढ लिया होवे तब शिष्यो महाव्रतमें उपस्थापन करना;

ऐसा अप्रेय प्रभाव परमेश्वरके वचनकी मुद्रा है. और जीत व्यवहार ऐसा चलता है. षट्काय संयम, दशवैकालिकका चौथा षट्जीवनिकाय अध्ययन सूत्रार्थसें जाणे तब पीछे उपस्थापन करते थे. तथा प्रथम पिंमेषणा पठन करके पीछे उत्तर अध्ययन पठन करते थे. संप्रति कालमें प्रथम उत्तराध्ययन पठन करके पीछे अचारांग पढते है. पूर्वकालमें कल्पवृक्ष लोकांके शरीर स्थिति निर्वहके हेतु होतेथे, संप्रतिकालमें आंबकरीर प्रमुखसें निर्वाह होता है. पूर्वकालमें अतुल वल धवल वृषभ होतेथे, संतकालमें सामान्य वैलोंसें व्यवहार चलाता है. गोपा और कर्षका गोपाल और क्षेती करनेवाले चक्रवर्तीके गृहपति रत्नकी तरें जिस दिन वोवे तिसही दिनमें धान्यके निष्पादक थे. संप्रति कालमें तिनके अभावसें थोमी गौवाले गोपाल और जाट कुणबीओसें काम चलता है. तथा पूर्वकालमें योधा सहस्र योधादिक होते थे, संप्रति कालमें अल्प वल पराक्रमवालेभी राजे शत्रुओकों जीतके राज्य पालन करते है. पूर्वोक्त दृष्टांतोकी तरे साधुभी जीतव्यवहारकरके संयम आराधन करते है, यह उपनय है. तथा शोधि प्रायश्चित्त षट्मासिक प्राप्त हुएंभी जीतव्यवहारसें द्वादशक अर्थात् पांच उपवासे लगत मार करनेंसे छमासी तपकी तरें शुद्धि करता है. पुष्करणीयांभी पूर्व पुष्करणीयोसें हीन है तोभी लोकोंकों उपकारिणी है. दार्ष्टान्तिक योजना पूर्ववत् कर लेनी, इस प्रकारसें अनेक प्रकारका जीत उपलब्ध होता है. अथवा–

"जंसव्वहान सुत्ते पमिसिद्धं नयजीववहहेउ तं सव्वंपि पमाणं चारित्त धणाण भणियंच ॥ ८४ ॥" जो वस्तु सर्वथा सर्व प्रकारसें सिद्धांतमें निषेध नहि करी है, मैथुन सेवनवत्. उक्तंच निशीथ भाष्यादौ–

"नय किंचि अणुन्नायं पिडिसिद्धं वाविजिणवरें देहिं; मो-

सुमेलुणजावे नते विणारागदोसेहिं ॥ १ ॥ "और जीववधभी जिसमें नही है, आधाकर्म ग्रहणवत्. सो अनुष्ठान सर्वथा प्रमाणिक है. चारित्र धनवाले मुनिजनांको आगममें अनुज्ञात आज्ञा देनेसें कथन करा है. पूर्वाचार्योंनें जो कथन करा है सो दिखाते है—

"अवलंबिऊणकज्जं जंकिंपिसमायरंतिगीयथ्था । थोवावराह बहु गुण सव्वेसिं तं पमाणंतु ॥ ७५ ॥ अवलंबनको आश्रित होके जोजो संयमोपकारी कृत्य गीतार्थ सिद्धांतानुसारी आचरण करते है तिसमें दूषणतो अल्प है और निष्कारणें परिभोग करेतो प्रायश्चित पावे और जिसमें बहु गुण होवे, गुरु, ग्लान, बाल, वृद्ध, क्षपक प्रमुखोंके उपष्टंभक उपकारकारक होवे, मात्रक अर्थात् मोटे वमे पात्रादि परिभोगकी तरें सो सर्व चारित्रियोंको प्रमाण है, आर्यरक्षित सूरि समाचरित दुर्बलिका पुष्पमित्रकी तरें. इहां आर्यरक्षित दुर्बलिका पुष्पमित्रकी कथा जाननी. आर्यरक्षित सूरिनें चारों अनुयोग पृथक् पृथक् करे, और मुनियोंकी दया करके मात्रक मोटे वमे पुत्रके परिभोगके आज्ञा दीनी, और

आर्यरक्षित. दुर्बलिकाऔर पुष्पमित्रकी कथा.

साधु पुरुष साध्वीको दीक्षा न देवे, साध्वी साधु आगे आलोयणा न करे, और साध्वीकों छेदसूत्र नहि पढाने. यद्यपि आगममें पूर्वोक्त काम करणेंभी कहे है तोभी काल भाव देखी आर्यरक्षित सूरियें अशठ भावतें आचरणां बांधी सो सर्व अन्य आचार्योंका तव्य करके मानी. यहां कोइ प्रश्न करे. उक्त रीतिसें तुमनें आचरणा जैसें अपनें वडे वमेरोकी प्रमाण करी है. तैसे हमकोभी अपने पिता दादादिककी नानारंभ मिथ्यात्व क्रियाकी चलाइ प्रवृत्तिमें चलना चाहिये. उत्तर तिनको देते है, हे सौम्य ! तेरी समज ठीक नाहे क्योंकि हमने संविज्ञ गीतार्थोंका आचरित स्या-

पन करा है. न तु सर्व पूर्व पुरुष आचरित, इस वास्ते ग्रंथकार कहता है—

" जंपुण पमायरूवं गुरुलाघव चिंता विरहियं सवहं। सुहसील सढाइन्नं चरित्तिणो तं न सेवंति " ॥ ८६ ॥ व्याख्या, जो आचरित प्रमादरूप है संयमका बाधक होनेसें, इस वास्तेही गुरु लाघव सगुण अवगुणकी चिंता करके विचार करके वर्जित है. इस वास्तेही सवधं जीव वध संयुक्त यतनाके अन्नावसें सु-खशील इसलोकमें जे प्रतिबद्ध है. शठ मिथ्या जूठा आलंबन करा है जिनोंमें तिनोंने जो आचीर्ण आचरा है सो आचीर्ण शुद्ध चारित्र वंत नहि सेवते है. इस बातकाही उल्लेख स्वरूप दि-खाते है.

" जह सढे सममत्तं राढाइ असुद्ध उवही न्नत्ताइ, निद्दिन्न वसहि तूलीमसूरगाईणपरिन्नोगो. ॥ ८७ ॥ " अर्थ—व्याख्या, यथा शब्द उपदर्शनमें है. श्रावकों विषे जिनको ममत्व ममीकार मेरा यह श्रावक है ऐसा जिसको अति आग्रह है; गाममें, कुलमें, न-गरमें, देशमें ममत्व न्नाव कदीन्नी नहि करे; " गामे कुले वा नगरे वादेसेवा ममत्तन्नावं न कहिं चिकुज्जा. " ऐसे आगममें निषिद्ध है, तोन्नी कितनेकी ममत्व करते है. तथा राढाया श-रीरकी शोन्नाकी इच्छामें अशुद्ध उपधि न्नक्त पानी आदिक कित-नेक ग्रहण करते है. तहां अशुद्ध उद्गम उत्पादनादि दोष दुष्ट उ-पधि वस्त्र पात्रादि, न्नक्त अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यादि आदि शब्दसें उपाश्रय ग्रहण है. ये पूर्वोक्त आगममें अशुद्ध लेने निषेध करे है. " पिंडं सिज्जं वत्थं च चउत्थं पायमेव य। अकप्पियं न इच्छेजा पडिगाहिज्ज कप्पियं ॥ ' ॥ इहां गाढा ग्रहण करणेंमें पु-ष्टालंबन करके दुर्भिक्ष अशेमादिकमें चनक परिहार्य करके कि-

चित् अशुद्धनी ग्रहण करे तो दोष नहि. यह ज्ञापन करा है. यन्तोऽन्नाणि पिंडनिर्युक्तौ.

" ऐसो आहार विही जह न्नणिओ सव्वन्नावदेसीहिं । धम्मावसग्ग जोगा जेण नहायंति तं कुज्जा ॥१॥" तथा, " कारण पमिसेवा पुणन्नावेण सेवणत्ति दव्वा । आणाइ तिझ्नवे सोसुद्धो मुखहेउत्ति ॥ २ ॥ इन दोनों गाथाका न्नावार्थ यह है. जिस्सें आवश्य करणे योग धर्म कृत्यकी हांनि न होवे, ऐसा आहारादि ग्रहण करणा न्नगवंतने कहा है १ और जो कारणसें दूषण सेवना है सो नहि सेवना है. सो दोष सेवना शुद्ध है, मोक्षका हेतु है २. जिनकी वसति मनोहर चित्र सहित होवे ऐसी वसतिमें रहनेवालेके अनगारपणेकी हानि है. तथा न्नग्न हुइ वसतिकों समरावे तोन्नी साधु नहि, षट्कायका वध होनेसें. तथा तुलीगदयला और मसुरकगिंडुयातकीया ये दोनों प्रसिद्ध है. आदि शब्दसें तुलीका खल्लक कांस्य ताम्रके पात्रादि ग्रहण करलें यहन्नी साधुको नहि कल्पते है. " इच्चाई असमंजसमणे गहा खुद्द चिठीयं लोये वहुएहिवि आयरियं नपमाणं सुद्ध चरणाणं ॥ ८८ ॥ " इत्यादि इस प्रकारका असमंजसमणा जो कहना सोन्नी उचित नहि शिष्ट जनांको. अनेक प्रकारका क्षुद्र तुच्छ जीवांका आचरण लिंगीयोनें बहुतोनेंन्नी आचरण करा है तोन्नी प्रमाण आलंबनका हेतु शुद्ध चारित्रीयोंकों नहि है. इस आचरणको अप्रमाणता इस वास्ते है; सिद्धांतमें निषेध करणेंसें, संयमके विरोधी होनेंसें, विना कारण सेवनेंसें; ऐसें आनुषंगिक कथन करके प्रारंन्नितकी समाप्ति करते है. " गीयत्थ पारतंता इय दुविहं मग्गमणुसरंतस्स न्नावजइत्तं युत्तं दुप्पसहंतं जउचरणं ॥ ८९ ॥ " गीतार्थकी पारतंत्रतासें आगमके जानकारकी आज्ञासें जैसें पूर्व दो प्रकारका मार्ग एक आगमानुसारी दुसरा संविझ गीतार्थ वृद्धोकी

आचरणारूप इन दोनों मार्गानुसारे जो प्रवर्त्तते है साधु तिसको जाव साधु कहना उचित है, सत्य है, कहां तक यावत् दुःप्रसहा नाम पर्यंतवर्त्ति आचार्य होवेगा तहां तक क्योंकि तिस आचार्य तक सिद्धांतमें चारित्रवान् चारित्रिये कहे है. इहां यह अजिप्राय है, जेकर मार्गानुसारी क्रिया करता हूआ और यतन करता हूआ चारित्रिया साधु न मानीये तबतो ऐसें साधुयोंके विना अन्य-तो कोइ देखनेंमें आता नहि है, तबतो चारित्र व्युच्छेद हूआ. चारित्रके व्यवच्छेद होनेंसें तीर्थ व्यवच्छेद कहना प्रत्यक्ष अतीत, वर्तमान, अनागत कालके सर्व जिननाथके कथन करे सिद्धांतसें विरुद्ध है. इस वास्ते परीक्षावान् पूर्वोक्त मिथ्यादृष्टि लिंगी, शिथिलाचारी निर्धर्मीओका कहना कदापि नहि मानते है. तथा च व्यवहारजाष्यं—

"केसिंचयआए सो दंसण । नाणेहिं वट्टएतित्थ्यं वो छिन्नंच चरित्तं वयमाणो जारिया चउरो ॥ १ ॥ जो जणीइनत्थि धम्मो नय सामइयं नचेव वयाइं । सो समण संघ वज्झो कायव्वो स-मण संघेण ॥ २ ॥" इन दोनोंका जावार्थ—कितनेक लिंगि बुद्धिहीन, मिथ्यादृष्टि स्त्रीओके लोलुपीयोंका ऐसा कहना है, ज्ञान दर्शनसेंही तीर्थ चलता है, चारित्रतो व्यवच्छेद हो गया है. ऐसा कहनेवाला अवश्य विषय लंपटी जानना. जो कहता है साधुधर्म नहि है, सामायकजी नहि और व्रतजी नहि है तिसको श्रमण संघसें बाहिर काढना चाहिये. इत्यादि आगमके प्रमाणसें मर्गानुसारि क्रिया करणेवालेंकों जावयति साधुपणा है. यह स्थितपक्ष है. इति सकलमार्गानुसारीणी क्रिया रूप जाव साधुका प्रथम लिंग ॥ १ ॥

संप्रति श्रद्धा प्रवरा प्रधान है धर्म विषे ऐसा दुसरा लिंग कहते है. श्रद्धा अजिलाषवाला है श्रुत चारित्ररूप धर्ममें. प्रवर

जो विशेषण है सो कहेंगे तिस श्रद्धाका फलभूत तो यह है. विधि सेवा, अतृप्ति, शुद्ध देशना, स्खलित हूए शुद्धि करणी, यह प्रवर विशेषणवाली श्रद्धाके लिंग है. तिनमें प्रथम विधि सेवाका ऐसा स्वरूप है. विधि करके प्रधान अनुष्ठान सेवे श्रद्धा गुणवाला, शक्तिमान्, सामर्थ्य संयुक्त होता हूआ अनुष्ठान प्रतिलेखनादि करणेमें श्रद्धावान् होवे, अन्यथा श्रद्धालु नहि हो शक्ता है, यदि पुनः शक्तिमान् न होवे तब क्या करे. द्रव्य आहारादिक, आदि शब्दसें क्षेत्र, काल, भाव ग्रहण करीये है. तिनकी प्रतिकूलतासें गाढ पीडित होवे, तब विधि सेवाका पक्षपात करे.

प्रश्न—विधि अनुष्ठानके अभावसें पक्षपात कैसे संभवे?

उत्तर—रोग रहित पुरुष खंड खाद्यादि सुंदर भोजनके रसका जाननेवाला किसी आपदा दरिद्रावस्थामें पडा हुआ अशुभ अनिष्ट भोजन करताभी है तोभी तिसमें राग नहि करता है, क्योंकि वो जानता है मैंतो इसकु भोजनके खानेसे आपदाको उल्लंघन करता हूं, जब सुभिक्ष होवेगा तब शोभनिक आहार भोगुंगा ऐसा तिसका मनोरथ होता है. अब इस दृष्टांतका दार्ष्टांत कहते है. ऐसे कुभोजनके दृष्टांतसें शुद्ध चारित्र पालनेका रसीआ है पण द्रव्यादिककी आपदासें बाह्य वृत्ति करके आगम विरुद्ध नित्यवासादि करता है और एकला होगया है, परंतु संयम आराधनेकी लालसा जिसके मनमें है सो पुरुष भावचारित्र, भावसाधुपणा उल्लंघन नहि करता है; एतावता वो भाव साधुही है संयम सूरिवत्. तथा चोक्तं, 'दव्वाइ' इत्यादि अशुद्ध द्रव्यादिक भोगनिक भावांका प्राये विघ्न नहि कर शकते है. भाव शुद्ध और बाह्य क्रिया विपर्यय यह लोकमें प्रसिद्ध है.

संग्राममें अपने प्रजुकी आज्ञासें सुजटको जो बाण लगता है सो परम वल्लज अपनी स्त्रीके करे कमल प्रहारकी तरें मालुम होता है. तथा जैसें स्वदेशमें, तैसेंही परदेशमें सत्वसें धीर पुरुष नहि चलायमान होते है धीर पुरुष मन वांछित कार्यको सर्व जगे सिद्ध करते है. तथा डुर्जिक्षादिकके उपद्रव दानमें, शूरमे पुरुषोंके आशयरूप रत्नको नहि जेद शकते हे, किंतु तिन दातांके अविधि दानके देनेको शुद्ध करते है. इस दृष्टांत करके महानुजाव शुज समाचारि गत चारित्रीयेके जावकों इत्यादि आपदाके उपद्रव नाश नहि कर शकते है. जो असामर्थ्य होवे, रोग पीमित जर्जर देहवाला जैसें सिद्धांतमें मुनिमार्ग कहा है कदापि वेसें नहि पालता है. सोजी अपने पराक्रम धैर्य वलको अणगोपता हूआ और कपट क्रियासें रहित हो करके प्रवर्त्ते वोजी अवश्य साधुही जानना. इति विधि सेवास्वरूप प्रथम श्रद्धाका लक्षण.

अतृप्ति श्रद्धाका स्वरूप.

संप्रति अतृप्ति स्वरूप डुसरा लिखते है. तृप्ति संतोष, वस मेरोकों इतनाही चाहिये, ऐसी तृप्ति ज्ञानके पढनेमें चारित्रानुष्टानके करणेमें कदापि न करे, किंतु नव नव श्रुत संपद उपार्जनेमें विशेष उत्साहवान् होवे; क्योंकि सिद्धांतमें कहा हे, जैसें जैसें श्रुतशास्त्र मुनि अवगाहन करता है, पढता है कैसा श्रुत अतिशय रस प्रसर विस्तार संयुक्त, अपूर्व श्रुत, तैसे तैसे मुनि नव नव श्रद्धा संवेग करके आनंदित होता है. तथा जिन शास्त्रका अर्थतो मोहक्षयवाले जिनोत्तम तीर्थंकरोंने कथन करा है, और महाबुद्धिमान् गौतम, सुधर्म स्वाम्यादिकोंने सूत्ररूप रचा है सो सूत्र संवेगादि गुणोका जनक है. जैसे अपूर्व ज्ञानके

पढनेका यत्न, नवीन ज्ञानका उपार्जन सदा करणा. तथा चारित्र विपये विशुद्ध विशुद्धतर संयमके स्थानकोंकी प्राप्तिके वास्ते सद्भावनासार अर्थात् शुद्धभाव पूर्वक सर्व अनुष्टान उपयोग संयुक्त करे; क्योंकि अप्रमादसें करे हुए सर्व साधुके व्यापार अनुष्टान उत्तरोत्तर संयम कंडकमें आरोहण करणेसें केवल ज्ञानके लाभ वास्ते होते है. तथा चागमे—

जिनशासनमें जे योग कहे है तिनमेंसे एकैक योगको कर्म क्षयार्थ प्रयंजुन करता हुआ एकैक योगमे वर्त्तते हुए अनंते केवली हूए है. तथा वैयावृत्त तपस्वि प्रमुखकी आदि शब्दसे पडिलेहना, प्रमार्जनादि ग्रहण करणें तिनमे यथाशक्ति शुद्ध भाव पूर्वक प्रयत्नवान् होवे, अचल मुनीश्वरवत्. इति अतृप्ति नामा दुसरा श्रद्धाका लक्षण.

शुद्ध देशना श्रद्धाका स्वरूप.

अथ शुद्ध देशना स्वभाव तिसरा लक्षण लिखते है. प्रथम देशनाका अधिकारी लिखते है. सुगुरु, संविज्ञ गीतार्थ आचार्यके समीपे पूर्वापर सम्यक् प्रकारसें सिद्धांत आगमके वाक्य पदार्थ, वाक्यार्थ, महावाक्यार्थ, तिनका यह तात्पर्यार्थ है, ऐसा तत्व स्वरूप सिद्धांतका, जाना है, जिसनें उक्तंच—

" पयवक्क महावक्क पअइदं पज्जत्थ वत्थु चत्तारि । सुय, भावावगमंम्मीइंदिपगाराविणिदिठा ॥ १ ॥ संपुन्नेहिं जायइ भावस्सय अवगमो इहरहाउ । होइ विविभा सो विहु अणिठ्ठफल श्रोय नियमा ॥ २ ॥ " इनका भावार्थ, पदवाक्य, महावाक्य- यह तात्पर्य, यह वाक्य है, यह चार श्रुतभावके जाननेके प्रकार कहे है. इन चारों प्रकारसें पदार्थका यथार्थ स्वरूप जाना जाता है. अन्यथा विपर्यय होनेंसे नियमसें अनिष्ट फल है. ऐसे ज्ञानके

हुएभी गुरुकी आज्ञासें नतु स्वतंत्र मोखर्यादिकी अतिरेकतासें इस वास्ते धन्य धर्म धनके योग्य होनेसें मध्यस्थ, स्वपक्ष परपक्षोमे रागद्वेष रहित सद्भूतवादी ऐसा जो होवे सो देशना धर्म कथा करे. इति धर्मदेशनाका अधिकारी.

धर्मदेशनाका स्वरूप.

अथ धर्मदेशना किस तरेसे करे सो कहते है. सम्यक् प्रकारसें जाना है पात्र धर्म, सुनने योग्य पुरुषका आशय जिसनें सो 'अवगतपात्रस्वरूपः." तथाहि, बाल, मध्यम बुद्धि, और बुध येह तीन प्रकारके पात्र धर्म सुणावने योग्य है. तत्र "बालः पश्यति लिंगं मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तं। आगमतत्वं तु बुधः परीक्षते सर्वयत्नेन ॥ १ ॥

अर्थ—बाल लिंग देखते है, मध्यम बुद्धि आचरणका विचार करते है, और बुद्ध सर्व यत्न करके आगम तत्वकी परीक्षा करते है.

इन तीनोंका देशना देनेकी विधि ऐसें है. बालको बाह्यचारित्र प्रवृत्तिकी प्रधानताका उपदेश करणा, और उपदेशकनें आपभी तिस बालके आगे बाह्य क्रिया प्रधान चारित्राचार सेवन करना, लोच करणा, पगामें उपानह, मोजा प्रमुख न पहनना, भूमिका उपर उकका एक आसन और एक उपर एक उपरपट्ट, बीगके सोना, रात्रिमें दो प्रहर सोना, शीतोष्णको सहना, उपवास बेला आदिक विचित्र प्रकारका तप महाकष्ट करना, अल्प उपकरण राखने, उपधि निर्दोष लेनी, आहारकी बहुत शुद्धि करणी. नाना प्रकारके अभिग्रह ग्रहण करके, विगयका त्याग करणा, एक कवलादिकमें पारणा करणा, अनियत विहार करणा. नवकल्प करणा, कायोत्सर्गादिक करणा, इत्यादि क्रिया चारित्रकी

बाह्यप्रवृत्ति आप करणी, श्रोर बालजीवोंकों उपदेशभी इसी बाह्य क्रियाका करणा.

मध्यम बुद्धिकों इर्यासमित्यादि पांच समिति, तीन गुप्ति' यह अष्ट प्रवचन मातारूप मोक्षार्थीने कदापि नहि गेम्के. इन अष्ट प्रवचनके प्रधान होनेसे साधु मुनिकों संसारका नय नहि होता है अत्यंत हितकारक फल होवे. गुरुकी आज्ञामें रहणा, गुरुका बहुमान करणा, परम गुरु होनेका यह बीज है. तिस्सें मोक्ष होता है. इत्यादि साधुवृत्ति मध्यम बुद्धिकों सदा कहनी. आगमका परम तत्त्व बुधको कहना. नगवंतका वचन आराधना धर्म है, तिसका न मानना अधर्म है. यही सर्व रहस्य गुह्य सर्व सुधर्मका है इत्यादि. अथवा पारिणामिक, अपारिणामिक, अति पारिणामिक नेदसें तीन प्रकारके पात्र है. इत्यादि पात्र स्वरूप जान करके श्रद्धावान् तिस पात्रको अनुग्रह हेतु उपगारी शुन्न परिणामाकी वृद्धिकारक आगमोक्त कथन करे, उत्सूत्र मोक्षके वैरी नूतको वर्जे, जैसे श्रेणिक राजा प्रति महा निर्ग्रंथने उपदेश करा.

प्रश्न. देशना नाम धर्मोपदेशका है, सो नाव साधुकों सर्व जीवांको विशेष रहित करनी चाहिये. पात्र अपात्रका विचार काहेकों करणा चाहिये ?

उत्तर—पूर्वोक्त कहना ठीक नहि. जैसें अन्य जीवांको डुध मीसरी पथ्य और स्वादनीय है तैसें संन्निपात रोगवालेकों देनेंसें गुण नहि होता है. इसी वास्ते निषेध करते है, क्वाथादि कडवी वस्तु देते है; इस वातमें देनेवालेका नाव विषम नहि कहा जाता है; तैसें देशनामेंभी योग्य अयोग्यका विचार करना ठीक है. सर्वदान पात्रके तांइ दीआ कल्याणफलका जनक है. पात्र कहते है. उचित ग्राहक जीवादि पदार्थका जाननेवाला

और समभावसें सर्व जीवांकी रक्षा करणेंमें उद्यतमति साधु यति सो पात्र है, तिसकों दीक्षा कल्याण फल है. अन्यथा अ-निरुद्ध आश्रवद्वारवाले कुपात्रको दीक्षा अनर्थजनक संसारके दुःखांका कारक होता है. क्या वस्तु प्रधानदान अर्थात् श्रुतज्ञा-नदान देशनादिरूप अतिशय करके कुपात्रकों नहि देना शास्त्रके जानकारोंने ? रक्त, दुष्ट, पूर्वकुप्राहित ये उपदेश देने योग्य नहि है. उपदेश देने योग्य मध्यस्थ पुरूष है. इस वास्ते अपात्रको गेमके पात्रकुं उचित देशना करणी; शुद्ध देशना कहते है. जे-कर अपात्रकुं देशना देवे तब श्रोताकु मिथ्यात्व प्राप्ति होवे. द्वेष करे, तिस्सें भात, पाणी, शय्या, वस्ति आदिकका व्यवच्छेद प्रा-णनाशादिक उपद्रव करे. इतने दूषण देशना करनेवालेकुं होते है. इस वास्ते जो अपात्रकों त्याग के पात्रको देशना करे सो गीतार्थ स्तुति करणे योग्य है.

प्रश्न—तुमने कहा है. जो सूत्रमें कथन करा है सो प्ररू-पण करे. जो पुनः सूत्रमें नहि है और विवादास्पद लोकांमे है, कोइ कैसें कहता और कोइ किसीतरें कहता है. तिस विषयक जो कोइ पूछे तब गीतार्थको क्या करणा उचित है.

उत्तर—जो वस्तु अनुष्ठान सूत्रमें नहि कथन करा है, करणे योग्य चैत्यवंदन आवश्यकादिवत्; और प्राणातिपातकी तरें सूत्रमें निषेधभी नहि करा है, और लोकोमें चिरकालसें रू-ढिरुप चला आता है सोभी संसार भीरु गीतार्थ स्व-मतिकल्पित दूषणे करी दूषित न करे. गीतार्थोंके चित्तमें ये वात सदा प्रकाशमान रहती है सोइ दिखाते है.

संविज्ञ गीतार्थ मोक्षाभिलाषी तिस तिसकाल संबंधी बहुत आगमोंके जानकार और विधिमार्गके रसीये, विधिकों बहुमान

देनेवाले, संविज्ञ होनेसें पूर्वसूरि चिरंतन मुनियोके नायक जे होगये है तिनोनें निषेध नहि करा है; जो आचरित आचरण सर्व धर्मीलोक जिस व्यवहारको मानते है तिसकों विशिष्ट श्रुत अवधि ज्ञानादि रहित कौन निषेध करे ? पूर्व पूर्वतर उत्तमा चार्योकी आशातनासे डरनेवाला अपितु कोइ नहि करे, बहुल कर्मीकों वर्ज के ते पूर्वोक्त गीतार्थो ऐसें विचारते है. जाज्वल-मान अग्निमें प्रवेश करनेवालेसेंभी अधिक साहस यह है. उत्सूत्र प्ररूपणा, सूत्र निरपेक्ष देशना, कटुक विपाक, दारुण, खोटे फलकी देनेवाली, ऐसे जानते हुएभी देते है. मरीचिवत्. मरीचि एक दुर्भाषित वचनसें दुःखरूप समुद्रकों प्राप्त हुआ एक कोटा कोटि सागर प्रमाण संसारमें भ्रमण करता हुआ; जो उत्सूत्र आचरण करे सो जीव चीकणे कर्मका बंध करते है. संसारकी वृद्धि और माया मृषा करते है तथा जो जीव उन्मार्ग-का उपदेश करे और सन्मार्गका नाश करे सो गूढ हृदयवाला कपटी होवे, धूर्ताचारी होवे, शल्य संयुक्त होवे, सो जीव तिर्यंच गतिका आयुबंध करता है. उन्मार्गका उपदेश देने सें भगवंतके कथन करे चारित्रका नाश करता है. ऐसे सम्यग् दर्शनसें भ्रष्टकों देखनाभी योग्य नहि है. इत्यादि आगम वचन सुणकेभी स्व-अप ने आग्रहरूप ग्रह करी ग्रस्तचित्तवाला जो उत्सूत्र कहता है क्योंकि जिसका उरला परला कांठा नहि है ऐसे संसार समुद्रमें महा दुख अंगीकार करणेसें.

प्रश्न. क्या शास्त्रकों जानकेभी कोइ अन्यथा प्ररूपणा क-रता है. ?

उत्तर—करता है सोइ दिखाते है. देखनेमें आते है—दुषम कालमें वक्रजड बहुत साहसिक जीव भवरूप भयानक संसार

पिशाचसें करनेवाले निज मतिकल्पित कुयुक्तियों करके विधि मार्गको निषेध करणेमे प्रवर्त्तते हे. कितनीक क्रियांकों जे आगममें नहि कथन करी हे तिनको करते हे और जे आगमने निषेध नहि करी है—चिरंतन जनोंने आचरण करी है तिनको अविधि कह करके निषेध करते हे, और कहते है—यह क्रियायो धर्मी जनांकों करणे योग्य नहि हे. किन किन क्रियायों विषे "चैत्य कृत्येषु स्नात्रबिंबप्रतिमाकरणादि."

तिन विषे पूर्व पुरुषोंकी परंपरा करके जो विधि चली आती हे तिसकों अविधि कहते है. और इस कालकी चलाइकों विधि कहते है. ऐसे कहनेवाले अनेक दिखलाइ देते है. वे महा साहसिक है.

प्रश्न. तिनोंने जो प्रवृत्ति करी हे तिसकों गीतार्थ प्रसंशे के नहि प्रसंशे ?

उत्तर. तिस प्रवृत्तिकों विशुद्धागम बहुमान सार श्रद्ध है जीनकी ऐसे गीतार्थ सूत्र संवादके विना अर्थात् सूत्रमें जो नहि कथन करा हे तिस विधिका बहुमान नहि करते है किंतु तिसका अवधीरण अर्थात् निरादर करके मध्यस्थ भावसें उपेक्षा करके सूत्रानुसार कथन करते है. श्रोताजनोंको उपदेश करते है. ऐसे कथन करा शुद्ध देशना कर विस्तार सहित तीसरा श्रद्धाका लक्षण.

स्खलित परिशुद्धि श्रद्धाका लक्षण.

संप्रति स्खलित परिशुद्धि नामा चौथा श्रद्धाका लक्षण लिखतेहै. मूल गुण, उत्तरगुणकी मर्यादाका उल्लंघन करना निश्चय नाम अतिक्रम अतिचार करते है, सो अतिचारकी निःशीर जानके जिसकी तरे उत्तर गुण गणके सर्वातिचार हेतु होनेमें मत्त अर्थात् मेत्त है सो चारित्रकर चंद्रमाकों स्खलितकी

तरें कलंक है. सो कलंक प्रमादादि प्रमाद दर्प कल्पादि करके, आकुट्टि करके हिंसादिका करणा साधुकों प्रायें संभव नहि है; परंतु किसी तरें कांटो वाले मार्गमें यतनसें चलतांभी जेसें पगमें कांटा लग जाता है तेसें यतना करता हुआ जीव हिंसादि हो जाती है. आकुट्टिका उसको कहते जो जानके करे १ दर्प्प उसकों कहते है जो जोरावरीसें पिलचीने करे २ विकथादि करके करे सो प्रमाद है ३ जो कारणसें करे सो कल्प कहते है ४ कदाचित् इन चारों प्रकारसें हिंसादिक करे.

अथ दश प्रकारसें साधुको दूषण लग जाते है. दर्प्पसें १ प्रमादसें

साधुकुं दूषण लगनेका दश प्रकार.

२ अजाणपणसें ३ रोगपीडित होनेंसें ४ आपदामें पडनेसें ५ शंका उत्पन्न होनेंसें ६ बलात्कारसें ७ भयकरके ८ द्वेष करके ९ शिष्यादिककी परीक्षा वास्ते १० इन पूर्वोक्त कारणोंसें कदाचित् चारित्रमें अतिचारादिक कलंक लग जावे तिसकों गुरु आगे आलोचन प्रगट करनेंसे शुद्ध करे प्रायश्चित लेनेसें. कौन शुद्ध करे ? जिसको विमल श्रद्धा निष्कलंक धर्मकी अभिलाषा होवे शिवभद्र मुनिवत्. इति चतुर्थ लक्षण. इति दुसरा भावसाधुका प्रवरा श्रद्धानाम लक्षण. ऐसी श्रद्धावाला मुनि अभिनिवेश असत् आग्रह करते रहित सुप्रज्ञापनीय होता है.

प्रश्न—क्या साधुयोकेभी असत् ग्रह होता है ?

उत्तर—होता है. मतिमोह महात्म्यसें. मतिमोह किस्सें होता है. सो लिखते है. जैनमतके शास्त्रोमें इस प्रकारके सूत्र है. विधिसूत्र १ उद्यम सूत्र २ वर्णक सूत्र ३ भय सूत्र ४ उत्सर्ग सूत्र ५ अपवाद सूत्र ६ उभय सूत्र ७ इन सातोंका स्वरूप ऐसें है. कितनेक विधमार्गके सूत्र है. यथा दश वैकालिकके पांचमे अध्ययने.

" संपत्ते निरक कालंमि असंजंतो असुच्छित्त । इमेण कम्म जाएण, भत्त पाणंग वेसइ ॥ १ ॥ " इत्यादि. तथा कितनेक उद्यम सूत्र है. यथा उत्तराध्ययन दशमे अध्ययने,

" डुम पत्तए पंडुय यव्हा निवडे इराय गणाण अच्चए, " एवं मणुयाण जिवियं समयं गोयम मापमायए ॥ १ ॥ इत्यादि. तथा कितनेक वर्णक सूत्र है. ज्ञाता, उववाइ प्रमुखमें.

' रिद्धि च्छमिय समिद्धा. ' इत्यादि तथा कितनेक भय सूत्र है. जैसें नरकमें मांस रुधिरका कथन करना उक्तंच–

" नरएसु मंस रुहिराइ वन्नणं जंपसिद्धि मित्तेणा भय हेउ इह रहतेसिं वेऊ व्विय भाव उनतयं " इत्यादि. उत्सर्ग सूत्राणि यथा.

" इचे सिं उण्हं जीव निकायाणं नेवसयं दंडे समारंभिज्जा" इत्यादि. षट्जीवनिकायके रक्षाके प्रतिपादक विधायक है. अपवाद सूत्रतो प्रायछेद ग्रंथोंसें जाने जाते है. तथा

" नयालभिज्जा निवणं सहायं, गुणाहियं वा गुण उसमं वा । इक्कोवि पावाइ विवज्जयंतो, विहरिज्ज कामे सुय सज्जमाणो ॥ १ ॥ इत्यादि भावार्थ. जव निपुण सहायक गुणाधिक अथवा बरावर गुणवाला न मिले तव पापांको वर्जता हुआ और काममें अनासक्त होकर एकलाही विचरे. तथा तदुभय सूत्र जिनमें उत्सर्गापवाद दोनो युगपत् कहे जाते है. यथा

" अट्टझाणं भावे समं अहियासि पच्च उवादी " तहावि मिट्ट विहिणा पडियार पवत्तणं नेयं ॥ इत्यादि. भावार्थ. जीम रोगव्याधिके हुए आर्तध्यान न होवे तवतो सहनी जेकर आर्तध्यान मिल रोग-व्याधिके हुवे तव निरवद्य उपचारमें वर्तना. औषधी करणी. ऐसें नाना प्रकारके स्वसमय परसमय, निश्चय व्यव-

हार, ज्ञान क्रियादि, नानां नयोके मतके प्रकाशक सिद्धांतमे गंजी-रज्ञाव वाले महा मतिवालोके जानने योग्य जिनका अज्ञिप्राय है, ऐसे सूत्र हे. तिन पूर्वोक्त सूत्रांका विषय विज्ञाग, इस सूत्रका यह विषय हे; ऐसे न जानता हूआ ज्ञानावरण कर्मके उदयसे मति-मेहा होता हे; तब वो जीव अपनेको और उपासकको असत् अ-ग्रह, असत् बोध उत्पन्न करता है. जमालीवत्. ऐसे मूढ अर्थी विनीतको, गीतार्थ संविज्ञ गुरु पूज्य, परोपकार करणेमें रसिक, दयासे विचारते है; यह प्राणी दुर्गतिमें न जावे. ऐसी अनुग्रह बु-द्धि करके प्रेरे हुए प्रतिबोध करते हे. आगमोक्त युक्तिकरके जि-सको प्रतिबोधके योग्य जानते हे. अयोग्यकोतो सर्वज्ञज्ञी प्रति-बोध योग्य मुनि सुनंदनराजऋषिके सहश सरलज्ञावसें होता हे. इति कथन करा प्रज्ञापनीयत्वनामा ज्ञावसाधुका तिसरा लिंग.
द्धि करके प्रेरे हुए प्रतिबोध करते हे, आगमोक्त युक्तिकरके जिस-को प्रतिबोधके योग्य जानते हे. अयोग्यकोतो सर्वज्ञज्ञी प्रतिबोध करणे सामर्थ्य नहि हे. तोज्ञी प्रतिबोध योग्य मुनि सुनंदनराज-रुषिके सहश सरलज्ञावसें होता है. इति कथन करा प्रज्ञापनीयत्व नामा ज्ञाव साधुका तीसरा लिंग.

संप्रति क्रियासें अप्रमाद ऐसा चौथा लिंग लिखते हे. ज्ञली जो होवे गति सो कहिये सुगति—मुक्ति तिसके वास्ते चारित्रपति धर्म हे. तदुक्तं—

" विरहितनरिकांना वाडुदंमैः प्रचण्डं, कथमपि जलराशिं धीवना संधयन्ति । ननु कथमपि सिद्धिः साध्यते शीलहीनैरि-हपन इति धर्मं चित्तमेवं विदित्वा " ॥ ४ ॥

अर्थ—बुद्धिरूप धनवाले झाझविना बाहु दंमने समुद्रको तर जाते हे. शीलहीन पुरुषने सिद्धि साध्य नहि होती हे ऐसा

जानकर धर्ममें चित्त दृढ लगाना. सो चारित्त पट्कायाका संयमही है. पृथ्वी, जल, ज्वलन, पवन, वनस्पति, त्रसकायकी रक्षाकरणी सोइ चारित्र है. इन ठहीं कायोमेंसे एक जीवनिकायकी विराधना करता हुआ जगदीश्वरकी आज्ञा पालनेवाला साधु संसारका वर्धक है. तथा चाहुः—

" प्रतिसकलव्यामोहत्तमिश्राः श्रीधर्मदासगणिमिश्राः कोइ राजाका मंत्री सर्ववस्तु राजाकी, स्वाधीनन्नी कर लेता है तो राजाकी आज्ञा खंमन करे तोन्नी वध बंधन, द्रव्यहरणादि दंम पाता है. तैसें ठकाय महाव्रत सर्व निवृति ग्रहण करके जेकर एक कायादिककी विराधना करते तो संसार समुद्रमें भ्रमण करे तथा पट्काय और महाव्रतका पालना यह यतिका धर्म है. जेकर तिनकी रक्षा न करे तब कहो शिष्य ! तिस धर्मका क्या नाम है ? पट्कायकी दया विवार्जित पुरुष नतो दीक्षित साधु है साधुधर्मसें भ्रष्ठ होनेसें, और नतो गृहस्थ है, दानादि धर्मसें रहित होनेसे. यहां मागधी गाथा नहि लिखी किंतु तिनका अर्थ लिखता हैं.

सो पूर्वोक्त पुरुष संयम पालनेको समर्थ नहि है. विकथा करणेंसें. विरुद्द कथा, राज कथादि जेसें ऊपर रोहणीके दृष्टांतमें स्वरूप लिखा है तैसें जानना. विषय कथा विकथादि प्रमाद युक्त, संयम पालने समर्थ नहि है. इस वास्ते साधुको प्रमाद नहि करणा चाहिए, प्रमादही विशेष करके कष्टका हेतु है. सोइ कहते है. प्रवर्ज्या जिनमतकी दीक्षा तिसको विद्या जिसकी देवी अधिष्टाता होवे तिस विद्यांको साधता हुआ जो प्रमादवान् होवे तिसकों विद्या सिद्ध नहि होती है. किंतु उपद्रव करती है; तैसेंही पारमेश्वरी विद्या दीक्षाकी तरे महा अनर्थ करती है; अर्थात् शीतल विहारी, पार्श्वस्थादिकको जिन दीक्षा सुगतिके तांइ नहि

किंतु देव दुर्गति और दीर्घ नवभ्रमणरूप कष्टकी करता है. आर्यमंगुवत्. क्योंकि शास्त्रमें कहा है. शीतल विहारसें दीर्घकालकृत संसारमें वहुत क्लेश पाता है. तीर्थंकर १ प्रवचन २ श्रुत ३ आचार्य ४ गणधर ५ महर्द्धिक ६ इनकी वहुत वार आशातना करते तो अतंत संसारी होवे. इस वास्ते साधुने सदा अप्रमादी होना चाहिए. प्रमादकांही युक्त्यंतरसें निषेध करते है. प्रतिलेखना चलनादि चेष्टा क्रिया व्यापार षट्कायके घातक हेतु प्रमादी साधुकी सर्व क्रिया सिद्धांतमें कही है. इस वास्ते साधु सर्व क्रियायोंमें अप्रमत्त होके प्रवर्त्ते.

अप्रमादि साधुका स्वरूप.

अथ अप्रमादी साधु जैसा होवे सो लिखते है. जो व्रतोंमे अतिचार न लगावे, प्राणातिपात व्रतमें त्रस स्थावर जीवांको संघट्टण, परितापन, उपद्रव न करे. मृषावाद, व्रतमें सूक्ष्म मृषावाद अजाणपणेंसें, और वादर जाणके न वोले. अदत्तादान व्रतमें सूक्ष्म अदत्तादान स्थानादिककी आज्ञा विना लेके न रहे, और वादर स्वामि १ जीव २ तीर्थंकर ३ गुरु ४ इनकी आज्ञाविना भोजनादिक न करे. चौथे व्रतमें नव गुप्ति सहित ब्रह्मचर्य पाले पांचमें व्रतमें सूक्ष्म वालादिकि ममत्व न करे वादर अनेषणीय आहारादि न ग्रहण करे. मूर्छासें अधिक उपकरण न राखे. रात्रि भोजन विरतिमें सूक्ष्म लेप मात्र वासी न राखे और वादर दीनमें लेंकर रातकों खावे १ रात्रिमें लेकर दिनमें खावे २ दीनमें लेकर अगले दिनमें खावे ३ रात्रिमें लेकर रात्रिमे खावे ४ इन चारों प्रकारसें भोजन न करे. एसें सर्व व्रतांके अतिचार टाले और पांच समति तिन गुप्तिमें उपयोगवान् होवे. अधिक क्या लिखे. स्थिर चित्त होकर पाप हेतु प्रमादकी सर्व क्रिया वर्जे: और

अवसरमें जो जिस प्रतिलेखनादि क्रियाका अवसर होवे तिस सर्व क्रिया करे. प्रमादसें अधिक ओछी क्रिया न करे. अन्य क्रिय करता हुआ विचमें अन्य क्रिया न करे, सर्व क्रिया सूत्रोक्त रीतिसें करे. सूत्र तिसकों कहते है जो गणधरोंने रचे होवे, प्रत्येक बुद्धियोंके रचे, श्रुत केवलिके रचे, अभिन्न दश पूर्वधरकें रचे, इनको निश्चय सम्यक्तवान् सद्भूतार्थ, सत्यार्थवादी होनेसें इनका कथन सत्य है. इनके विना जो कोइ इनके कहे अनुसार कहे तोभी सत्य सूत्रही जानना. ऐसी पूर्वोक्त क्रिया करे, अप्रमादसें. सो जिन मतमें अप्रमत्त साधु है. इति कथन करा क्रियामें अप्रमादनामा भावसाधुका चौथा लिंग.

संप्रति जिस अनुष्ठानके करणेकी शक्ति होवे सो अनुष्ठान करे ऐसा पांचमां लिंग लिखते है. संहनन वज्र रीषभ नाचारादि और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इनके उचितही अनुष्ठान करे. अनुष्ठान तप १ कल्प २ प्रतिमादि जिस संहननादिकमें जो निर्वहण कर शकिये सोइ अनुष्ठान करे. क्योंकि अधिक करे तो पुरा न होवे. वीचमें छोडना पडे. प्रतिज्ञाका भंग होवे. फेर कैसें अनुष्ठानका आरंभ करे–जिसमें लाभ वहुत हुवे, और संयमको बाधा न होवे, और प्रारंभित अनुष्ठान बहुतवार वारंवार कर शके; क्योंकि अनुचित अनुष्ठान करके पीडित हुआ फेर उस अनुष्ठानके करणेमें उत्साह नहि करता है. जैसें साधु रोगी हो जावे, तिसकी चिकित्सा करे तो सदोष औषधी लेनी पमे. जेकर सदोष औषधी न करे तव अविधिसें मरे, और संयमकी अंतराय होवे, इसी वास्ते कहा है, सो तप करणा जिस्से मनमें आर्त्तध्यान न होवे, और जिस्से इंद्रियांकी हानि न होवे, और योगांकी हानि न होवे तिस अनुष्ठानके करणेमें अन्यजन सामान धर्मीयोंको करणेकी देखादेखी इच्छा उतपन्न होवे. फिर कैसी क्रिया करे जिस

के करणेसें गच्छकी, गुरुकी उन्नति होवे. धन्य यह गच्छ गुरु है. तिसके सहायसें ऐसें डुष्कर कारक मुनि दिखते है, ऐसें लोक श्लाघा करे. तथा जिस्सें जिनशासनकी उन्नति होवे. बहुत अच्छा यह जैनमत है. हममी इसको अंगीकार करेंगे. फेर कैसी क्रिया करे जिस्सें इसलोक, परलोककी वांछा न करे. आर्यमहागीरी भगवंतका चरित वृत्तांत स्मरण करता हुआ सत्क्रिया करे. अत्र कथाइेया पूर्वोक्त अर्थ प्रगटपणें कहते हैं. जिसके करणेकी सामर्थ्य होवे. समिति, गुप्ति, प्रतिलेखना, स्वाध्याय, अध्ययनादि तिसके करणेंमे आलस्य न करे. सो साधु चारित्र संयम; विशुद्ध निःकलंक, कालसंहनन आदिके अनुसारे संयम पालने सामर्थ्य है. क्योंकि शक्यानुष्टानही इष्ट सिद्धिका हेतु है.

प्रश्न. धर्मार्थी करता हुआ कोइ असत् आरंभ अशक्यानुष्ठान करता है.

उत्तर. मतिमोह मानके अतिरेकसें करता है. किसकी तरे करता है ? जो कोइ मंदमति गुरु धर्माचार्यकों अपमान करे यह गुरु हीनचारी है. ऐसी अवज्ञासें गुरुको देखता हुआ आरंभ करता है. अशक्यानुष्टानका जो काल संहननादि करके हो नहि शक्ता है जिनकल्पादिकका मार्ग, जिसको शुद्ध गुरु नहि कर शक्ते है तिसको मतिमोह अभिमानकी अधिकतासें उक्त अभिमानी जीव करता है सो कदापि नहि चल शक्ता है. शिवभूति आदि दिगंबर वत्. इति कथन करा शक्यानुष्टानारंभ रूप पांचवा भाव साधुका लिंग.

अथ गुणानुराग नाम छठा लिंग लिखते है. चरण सत्तरि ७० करण सत्तरि ७० रूप मूल गुण उत्तर गुणांमें राग प्रतिबंध शुद्ध चारित्र निष्कलंक संमयका रागी. और परिहरे—वर्जे तिस

गुणानुरागसें दूषणांको कैसे दूषणांको गुण गुणांके मलीनता क-रणेके हेतुयोंको ज्ञानादिकोंके अशुद्धि हेतुयोंको ज्ञाव साधु.

अथ गुणानुरागकाही लिंग कहते है. थोडासाज्ञी जिसमें गुण होवे तिसके गुणकी ज्ञावसाधु प्रशंसा करे. कुथितकृष्णसा-रमेय शरीरे सितदंतपंक्तिश्लाघाकारक कृष्णवासुदेव वत्. और होप लेश मात्रज्ञी प्रमादसें स्खलित हुए अपने आपकों निस्सार मानें. धिग् है मेरेको प्रमाद शीलकों. इस रीतिवाला ज्ञावयति होता है. कर्णस्थापितविस्मृतशुंठीखंमापश्चिम दशपूर्वधर श्री व-ज्रस्वामिवत्. इहां कृष्णवासुदेव और वज्र स्वामिकी कथा जा-ननी. तथा गुणानुरागकोही लिंगांतर कहते है. क्षयोपशम ज्ञावसें पाये है जे ज्ञान दर्शन चारित्रादि रूप गुण तिनकों जैसें माता प्रियपुत्रकों पालती है तैसें पाले. तथा गुणवानके मिलनेसें ऐसा आनंद मानता है जैसा चिरकालसें प्रदेश गये प्रियबंधवके मिलनेसें आनंद होता है. तदयथा.

असतां संगपंकेन यन्मनो मलिनीकृतं
तन्मेद्य निर्मलीभूतं साधुसंबंधवारिणा ॥ १ ॥
पूर्वपुण्यतरोरद्य फलं प्राप्तं मयानघं
संगेनासंगचित्तानां साधूनां गुणवारिणा ॥ २ ॥

अर्थ—असत्पुरुषरूप कादवका संग करनेसें मेरा मन म-लिन हुआ था, सो आज साधुयोंका संबंधरूप जलसें निर्मल हु-आ है. असंगचित्तवाले साधुओंका गुणरूप जलसें मेरे पूर्वपुण्य रूप वृक्षका फल आज प्राप्त हुआ.

तथा गुणानुरागमेंही उद्यम करता है. ज्ञाव, मार महनार सुंदर होके ध्यान अध्ययन तप प्रमुख साधुके कृत्योंमें. और हा-

यक भावसें जो उत्पन्न होते है ज्ञान दर्शन चारित्र रूप गुण र-त्न, तिनका अभिलाषी होवे. होतीही है उद्यमवंतको अपूर्व कारण क्षयक श्रेणि क्रम करके केवलज्ञानादिककी संप्राप्ति. यह कथन जैनमतमें प्रसिद्ध है. गुणानुराग गुणकाही प्रकारांतरसें ल-क्षण कहते है. आपणा स्वजन होवे १ शिष्य होवे २ अपणा पूर्वकालका उपकारी होवे ३ एक गच्छका वसनेवाला होवे ४ इनके उपर जो राग करणा है सो गुणानुराग नहि कहा जाता है.

प्रश्न—तब साधुचारित्रिया इन स्वजनादिकोंके साथ कैसें वर्ते करुणा परदुःखनिवारण बुद्धि उक्तंच—

परहितचिन्ता मैत्री, परदुःखविनाशिनी तथा करुणा । पर-सुख तुष्टिर्मुदिता परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥ १ ॥

अर्थ—परके हितमें चित्त रखना सो मैत्री, परदुःखको नाश करना सो करुणा, परसुखसें संतोष होवे सो मुदिता और परदोषकी उपेक्षा करे सो उपेक्षा होती है.

तिस करुणा करके रहित राग द्वेष छोडके स्वजनादिकको शिक्षा करे अथवा स्वजनादिकाको तथा अन्यजनांको मोक्षमा-र्गमें प्रवर्त्तावे. गुणानुरागका फल कहते है. उत्तम—उत्कृष्ट जे गुण ज्ञानादिक तिनमें रागप्रीति प्रकर्ष होनेसें दुसमकाल, निर्बल संहननादि दूषणो करके पूर्णधर्म सामग्री नहि प्राप्ति हुइ है, तो सामग्री गुणानुरागी पुरुषको भावांतरमें पावणी दुर्लभ नहि किंतु सुलभ है, कथन करा गुणानुराग रूप छठा भाव साधुका लिंग.

अथ गुरुकी आज्ञा आराधन रूप सातमा लिंग लिखते है. प्रथम गुरु कौनको कहिये ? जो छत्तीस गुणां करके युक्त होवे तिसको गुरु अर्थात् आचार्य कहते है. वे छत्तीस गुण येह है.

आचार्यके छत्तीस गुण.

आर्य देशमें जन्म्या होवे तिसका वचन सुखाववोधक होता है, इस वास्ते देश प्रथम ग्रहण करा १ कुल–पिता संबंधी इक्ष्वाकु आदि उत्तम होवे तो यथोक्षिप्त–यथा उगाया संयमादि ज्ञारके वहनेसें थकता नहि है २ जाति माता अच्छे कुलकी जिसकी होवे सो जाति संपन्न होवे सो विनयादि गुणवान् होता है ३ रूपवान् होवे. " यत्राकृतिस्तत्र गुणा न्नवन्ति " ॥ इस वास्तेरूप ग्रहण करा ४ संहनन धृति युक्त होवे, दृढ वलवान् शरीर और धैर्यवान् होवे तो व्याख्यानादि करणेसें खेदित न होवे ५–६ अनाशंसी श्रोताओंसें वस्त्रादिककी आकांक्षा–वांछना न करे ७ अविकथ्थनो हितकारी–मर्यादा सहित वोले ८ अमायी–सर्व जगे विश्वास योग्य होवे ए स्थिरपरिपाटी परिचित ग्रंथ होवे तो सूत्रार्थ न्नुले नहि १० ग्राह्यवाक्य सर्व जगे अस्खलित जिसकी आज्ञा होवे ११ जितपर्षत्–राजकी सन्नामें क्षोन्नको प्राप्त न होवे १२ जितनिद्रो–जितीहोवे निंदतो प्रमादि शिष्यको सूतांको स्वाध्यायादि करणे वास्ते सुखे आगता करे. १३ मध्यस्थ सर्व शिष्योंमें समचित्त होवे १४ देशकाल न्नावज्ञ–देशकाल न्नावका जानकार होवे तो सुखमें गुणवंत देशमें विहारादि करे १५ १६–१७ आसन्नलब्धप्रतिन्नः शीघ्रही पर वादीको उत्तर देने समर्थ होवे १८ नानाविधदेशन्नाषाविधिज्ञः नाना प्रकारके देशोकी न्नाषाका जानकर होवेतो नाना देशांके उत्पन्न हुए शिष्योंको सुखे समजाय शके १ए ज्ञानादि पंचाचार युक्त होवे तो तिसका वचन मानये योग्य होता है. २०-२१-२२-२३-२४ सूत्रार्थ तदुन्नयविधिज्ञः सूत्रार्थ तदुन्नयका जाननेवाला होवे तो उत्सर्गापवादका विस्तार यथावत् कह शकता है २५ आहारण दृष्टांत

हेतु अन्वय व्यतिरेकवान् कारणम् दृष्टांतादि रहित उपपत्ति मात्र नय नैगमादिक इनमें निपुण होवे तो सुखसें प्रश्नको कह शकता है २९ ग्रहणा कुशल—बहुत युक्तियों करके शिष्योंको बोध करे ३० स्वसमयपरसमयज्ञ—स्वमतपरमतका जानकार होवे सुखसेंही तिनके स्थापन उच्छेद करनेमें निपुण होवे ३१–३२ गंभीरः अलब्ध मध्य होवे ३३ दीप्तिमान् पराधृष्य होवे ३४ शिवका हेतु होनेसें शिव जिस देशमें रहे तिस देशके मारि आदिकके शांति करणेसें ३५ सौम्य—स्वजनोके मन नयनको रमणिक लागे ३६ प्रश्रयादि अनेक गुणां करके संयुक्त होवे सो आचार्य प्रवचनानु योगके कथन करने योग्य होता है. अथवा आठ गणी संपदाको चार गुणां करीए तब बत्रीस होते है. आचार १ श्रुत २ शरीर ३ वचन ४ वाचना ५ मति ६ प्रयोगमति ७ संग्रह परिज्ञाता ८ इनका स्वरूप आचार नाम अनुष्टानका है. सो चार प्रकारका है. संयम, ध्रुव, योग युक्तता. चारित्रमें नित्यसमाधिपणा १ अपने आपको जात्यादिकके अभिमानसें रहित करके २ अनियत विहार ३ वृद्ध शीलता शरीर मनके विकार रहित होवे ४ ऐसेही श्रुतसंपदा चार प्रकारे बहु श्रुतता जिस कालमें जितने आगम होवे तिनका प्रधान जानकार होवे १ परिचित सूत्रता. उत्क्रम क्रम करके वांचने समर्थ होवे २ विचित्र सूत्रका स्वसमयपरसमयादि भेदोका जानकार ३ घोष विशुद्धि करणता उदात्तादि घोषका जानकार ४ शरीर संपदा चार प्रकारे आरोह परिणाह युक्तता उचित दीर्घादि शरीर वान् १ अनवत्रप्यता अलज्जनीय अंग २ परिपूर्ण चक्षु आदि इंद्रिय होवे ३ तप प्रमुखमें शक्तिवान् शरीर संहनन ४ वच संपद् चार प्रकारे. आदेय वचन १ मधुर वचन २ मध्यस्थ वचन ३ संदेह रहित वचन ४ शिष्यको योग्य जानके उद्देश करावे १ शिष्यको

योग्य जानके समुद्देश करावे २ पूर्व दीया आलावा शिष्यकों आगया जानके नवीन आलावा–पाठ देवे ३ पूर्वापर अर्थकों अविरोधीपणेसें कहे ४ मति संपदा चार प्रकारे. अवग्रह १ ईहा २ अपाय ३ धारणा ४ संयुक्त होवे. प्रयोगमति संपद चार प्रकारे. यहां प्रयोगनाम वादमुद्राका है सो अपनी सामर्थ जानके वादीसें वाद करे १ पुरुषकों जानें क्या यह बौद्धादि है २ क्षेत्र परिज्ञानं क्या यह क्षेत्र माया वहुल है, साधुयोंका न्नक्तिवान् है वा नहि ३ वस्तु ज्ञानं क्या यह राजा, मंत्री सन्ना न्नइक है वा अन्नइक है ४ संग्रह स्वीकरणंतिस विषे ज्ञान सो आठमी संपदसो चार प्रकारे. पीठ फलकादि विषया १ बालादि शिष्य योग्य क्षेत्र विषया २ यथावसरमें स्वाध्यायादि विषया ३ यथोचित विनयादि विषया ४ विनय चार प्रकारे आचार विनय १ श्रुत विनय २ विक्षेपणा विनय ३ दोष निर्घातन विनय ४ तिनमें आचार विनय. संयम १ तप २ गच्छ ३ एकल विहार ४ विषये चार प्रकारकी समाचारी स्वरूप जाने. तिनमे पृथ्विकाय संयमादि सत्तरे न्नेद संयमे आप करे, अन्यासें करावे, डिगतेकों संयममे स्थिर करे, संयममे यतन करने वालेकी उपवृंहणा करे. यह संयम समाचारी है १ पक्षादिकमें आप चतुर्थादि तप करे, अन्योंसे करावे. यह समाचारी है २ पडिलेहणादिमे, बाल ग्लानादिककी वैयावृत्तिमें डिगतकों गच्छमें प्रवर्त्तावना इनमे आप स्वयमेव उद्यम करे. यह गच्छ समाचारी है ३ एकल विहार प्रतिमा आप अंगीकार करे अन्योंको अंगीकार करावे. यह एकल विहार समाचारी ४ श्रुत विनयके चार न्नेद है सूत्र पढाना १ अर्थ सुनावना २ हित, योग्यता अनुसारे वाचन देनी ३ निःशेष वाचना निःशेष समाप्तिनक वाचना देनी ४ विक्षेपणा विनयके चार न्नेद है. मिथ्यात्व विक्षेपणा मिथ्या दृष्टिकों

स्वसमयमें स्थापन करना १ सम्यग् दृष्टिकों आरंभसें विक्षेपणा चारित्रमें स्थापन करनां २ धर्मसें भ्रष्टकों धर्ममें स्थापन करना ३ चारित्र अंगीकार करनेवालेको तथा अपरोकों अनेषणीय भक्तादि निवारण करके हितार्थमें उद्यम करणा ४ दोष निर्घात विनयके चार भेद है. क्रोधीका क्रोध दूर करणा १ परमतकी कांक्षा वालेकी कांक्षा छेदनी २ आपणा क्रोध दूर करणा ३ अपणी कांक्षा निवारणी येह देश मात्र स्वरूप लिखा है. विशेष स्वरूप देखवाहो वे तो व्यवहार सूत्र भाष्यसें जानना. ये पूर्वोक्त सर्व एकठे करीए तो छत्तीस गुण आचार्यके होते है. तीसरे प्रकारे छत्रीस गुण लिखते है,

छत्रीस गुणका तिसरा प्रकार.

व्रतषट्, कायषट्, ये प्रसिद्ध है अकल्पादि षट्क ऐसे है. एक शिष्यक स्थापना कल्प १ दूसरा कल्प स्थापना कल्प २ तिसमें प्रथम जिसने पिंडेषणा १ शय्या २ वस्त्र एषणा ३ पात्र एषणा ४ ये चारों अध्ययन जिस शिष्यने सूत्रार्थसें पढे नहि है तिसका आण्या आहार वस्त्रपात्रादि साधुओकों लेने नहि कल्पते है. तथा स्त्रुवृद्ध कालमे असमर्थ १ और वर्षा चतुर्मासमें असमर्थ समर्थ दोनोंको प्राये दीक्षा देनी नहि कल्पते है. यह स्थापना कल्प प्रथम १ दूसरा अनेषणीय पिंड १ शय्या २ वस्त्र ३ पात्र ४ ग्रहण नहि करणा ॥ २ ॥ गृहिभाजन कांस्यकटोरी प्रमुखमें भोजनादि नहि करे ३ पर्यंक मंचकादि ऊपर नहि बैठना ३ भिक्षा वास्ते गये गृहस्थके घरमें बैठना नहि ४ स्नान दो प्रकारका आंशिक [illegible] प्रक्षालन करे तो देशस्नान सर्वांग धावना सर्वस्नान ये दोनो नहि करणा ५ शोभा विभूषा करणा वर्जे ६ सर्व अठारह हुए इनकों आचा-

येके गुण इस वास्ते कहते है, इनमें दोष लगे तो तिनका प्रायश्चित्त आचार्य जानता है ज्ञानादि पंचाचारसहित होवे सो आचारवान् १ शिष्यके कहे अपराधको धारण करे सो आचार वान् २ पांच प्रकारके व्यवहारका जानकार होवे सो व्यवहारवान् ३ नवीलए अपत्रीडकः लज्जापनोदको आलोयणा करने वालेकी लज्जा दूर करणे समर्थ होवे जिस्से आधोयण करे. ४ आलोचित दूषणकी सिद्धि करणे समर्थ होवे ५ निर्जापक ऐसा प्रायश्चित्त देवे जैसा आगला परजीव वह शके ६ अपरिस्रावी आलोचकके दोष सुणके अन्यजनो आगे न कहे ७ सातिचारको परलोकादिकमें नरकादिकें दुःख दिखलावे ८ यथा दश प्रकारका प्रायश्चित्त जाननेवाला होवे, आलोचना १ प्रतिक्रमण २ मिश्र ३ विवेक ४ व्युत्सर्ग ५ तप ६ छेद ७ मूल ८ अनवस्थाप्य ९ परांचित. १०

निरतिचार निकट घरसें भिक्षादिका ग्रहण गुरु आगे प्रगट करणा इतनांही करणा आलोचना योग्य प्रायश्चित्त जानना. १ अना भोगादिसें विना पुंज्या थूंकादि थूंके तिसमें जीव वध न हि होवे तिसका मिथ्या दुःकृत देना सो प्रतिक्रमणार्ह २ संभ्रम भयादिकसें सर्व व्रतो के अतिचार लगे आलोचना प्रतिक्रमण मिथ्यादुःकृत रुप तदुभयार्ह ३ उपयोगसें शुद्ध जानने अन्नादि ग्रहण करे पीछे अशुद्ध मालम हुआ तिस अन्नादिकका परित्याग करणा सो विवेकार्ह ४ गमना गमन विहारादिमे पच्चीस उछ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करणा सो व्युत्सर्गार्ह ५ जिसके सेवनेसे निर्विकृतिकादि षट् मास पर्यंत प्रायश्चित दिजीए सो तपार्ह ६ जीस प्रायश्चितमें पंचकादि पर्यायका छेद करीए सो छेदार्ह ७ जिसमें फेर दीक्षा देनी पडे सो मूलार्ह ८ जबतक तपनसेवन चुके तबतक व्रतमें न स्थापन करीए सो अनवस्थाप्यार्ह ९ जिस

में तप लिंग क्षेत्र कालके पारको प्राप्त होवे सो पारांचित. १०

ये पूर्वोक्त सर्व एकठे करीए तब बत्तीस होते है. ऐसा गुणां करी संयुक्त गुरु होवे तिसकी चरणांकी सेवा सम्यग् आराधना परंतु गुरुके निकट वर्ति मात्र नहि; किंतु सेवामें अतिशय करके रत होवे. कदाचित् गुरु निष्टुर कठोर वचनसें निर्भ्रंठना करे तोभी गुरुकों छोडनेकी इच्छा न करे. केवल गुरु विषये बहुमान करे. ऐसा विचारे कि धन्य पुरुषकी उपर गुरुकी दृष्टि पडती है, और अहित कार्यसे मना करते है. तथा गुरुका आदेश करनेकी इच्छावाला गुरुके समीप वर्त्ति रहे. ऐसा साधु चारित्र भार वहनेमें समर्थ होता है. तीस कोडी सुविहित कहते है. कैसें यह निश्चय जानीए सोइ कहते है. सकल अढारह सहस्र जे शीलांग गुण है तिनका प्रथम कारण आचारांगमें गुरुकुलवास करणा कहा है तिसका प्रथम सूत्र.—

" सुयंमें आव संतेणं भगवया एव मखायं " इस सूत्रका भावार्थ यह है. सर्व धर्मार्थियोनें गुरुकी सेवा करणी. इस वास्ते सदा गुरुचरणके समीप रहे चारित्रार्थी चारित्रका कामी. तथा गच्छमें वसनेंसें गुण है. गुरुके परिवारका नाम गच्छ है. तहां वसतांको बहुत निर्जरा है. विनय है. स्मारण, वारण, नोदनासें दूषण उत्पन्न नहि होते है. कदाचित् संयम छोडके निकलनेकी इच्छा होवेतोभी अन्य साधु उपदेशादिकसें तिसकों रख लेते है.

प्रश्न—आगमके तो साधुकों आहार शुद्धिही मुख्य चारित्रकी शुद्धिका हेतु कहा है यडुक्तं.

" पिंडं असोहयंतो अचरित्ती इच्छा संसडनछि । चारित्तं मिछ संते सव्वादि खानिर यथा. " अर्थ—जो आहारकी शुद्धि न करे वो चारित्रीया नहि, तव सर्व दीक्षा निरर्थक है. तथा—

" जिण सामणस्समूलं जिखायरिया जिणेहिं पन्नत्ता । इच्छ परितप्पमाणं तंजाण सुमंद सद्धीयं. " अर्थ—जिन शासनका मूल जिक्षादी शुद्धि तीर्थंकरोंनें कही है, जो इसमें शिथिल है सो मंद श्रद्धावाला जानना. आहारकी शुद्धि बहुते साधुओंमें वसता दुष्कर है ऐसा मेरेको जासन होता है. इस वास्ते एकला होके आहार शुद्धि करना चाहिये. ज्ञानादिकके लाजकों क्या करणा है. मूल जूत चारित्रही पालना चाहिये. मुलके होते हुआही अधिक लाजकी चिंता करणी उचित है.

उत्तर—पूर्वोक्त कहना सत्य नहि है. जिस वास्ते गुरु परतंत्रतासें रहित होनेसें दुसरे साधुकी अपेक्षाके अजावसें लोजको अति दुर्जेय होनेसें क्षण क्षणमें परि वर्त्तमान परिणाम करके एकला साधु आहार शुद्धिको पालनेही समर्थ नहि है. तथा चोक्तं.

" एगणियस्स दोसा इच्छी साणे तहेव पमिणीए, जिखवि सोहिं महव्वय तम्हा सवि इद्या एगमणं " ॥ १ ॥

एकले साधुकों स्त्रीसें दोष होवे, श्वानसें, प्रत्यनीकसें उपद्रव रूप दोष होवे, जिक्षाकी शुद्धि न होवे, महाव्रत नहि होवे इस वास्ते दुसरे साधुकों साथ रहना और चलना चाहिये. तथा

" पिन्नि जेसण मिक्को " इत्यादि. अर्थात् एकला एषणाका नाश करे तब एषणाको अजावसें कैसें मूल जूत चारित्र पालनेमें समर्थ होवे. कोइ एकला शुद्ध जिक्षाजी ग्रहण करे तोजी.

" सव्व जीरा पडिकुटं अणवच्छा थेर कप्प जेडय । एगोय सुपा उत्तोवि हणइ तव संजमं अइयारा " ॥ १ ॥ इति वचनात्.

अर्थ—सर्व तीर्थंकरोंनें एकला विचरणा निषेध करा है, एकला रहणा अनवस्थाका कारण है. स्थिवर कल्पका नाश जेद

करणा है. एकला साधु अच्छे उपयोगवालाभी तप संयमका नाश करनेवाला है. और अतिचार सेवनेवाला है. तीन भवनके स्वामीकी आज्ञा विरोधनेसें एकलपणा सुंदरताको नहि प्राप्त होता है. तथा चाह सूत्रकारः ।

"एयस्स परिच्चाया सुद्धं छाइ विन सुंदरं भणियं । कंमाविपरिसुद्धं गुरु आणा वत्तिनो विंति ॥ १२८ ॥ व्याख्या. एयस्स गुरु कुल वासके परित्यागसें सर्वथा गुरु कुल छोडनेसें शुद्ध भिक्षा, शुद्ध उपाश्रय, वस्त्रपात्रादिभी सुंदर शोभनिक नहि है. ऐसा कथन आगमके वेत्ताओने कथन करा है. तथाच तदुक्तिः

"सुद्धं छाइ सुजुत्तो गुरुकुल चागा इणेह विन्नेउ सवरससर स्वपिंछच्छ पाय पाया छिवण तुल्लो ॥ १ ॥ अस्य व्याख्या. शुद्ध अनिर्दोष भिक्षा लेता है. कलह ममत्व त्यागा है जिसने ऐसा उद्यमी जेकर गुरुकुलवास त्यागे तथा सूत्रार्थकी हानि जानके ग्लान रोगीकी वैयावृत्त्य त्याग देवे तिसको जैनमतमें कैसा जानना जैसा सबर राजाको सरजस्ककी पीछी वास्ते मारणा, मारतो देना, परंतु पगां करके गुरुके शरीरका स्पर्श न करना ऐसा पूर्वोक्त एकल विहारीका चारित्र पालना है. कथानक संप्रदायसें ऐसा है.

किसी एक संनिवेशमें शबर नामा सरजस्कोंका भक्त एक राजा होता भया; तिसकों दर्शन देने वास्ते एकदा प्रस्तावे तिसका गुरु मोर पांखके चंद सहित छत्र शिर ऊपर धारण करता हुआ तहां आया तब तिसका दर्शन राजाने राणी सहित करा तिसका मोर पांखका छत्र देखके राणीका मन तिस छत्रके लेनेको [illegible] हुआ. तब राणीने कहा. तब राजाने सरजस्क गुरुसें मोर पांखका छत्र मागा. [illegible]

नहि होते थे, इस वास्ते गुरुकी देनेकी इच्छा नहि हुइ, तब राजा अपने घेर गया. तहां राणीने तो ज्ञोजनका करना त्यागा; मोर पीछका छत्र आवेगा तबही ज्ञोजन करुंगी. तब राजाने वारवार सरजस्कसें छत्र लेने वास्ते प्रार्थना करी तोज्ञी गुरु देता नहि, तदा डुर्वार प्रेम ग्रहके व्यामोहसें राजा अपने सेवकोंसें कहता है–हगत् जोरावरीसें खोसल्यो ? तब सेवक कहते है गुरु मागनेसें देता नहि श्रोर जोरावरीसें लेना चाहते है तब गुरु शस्त्र लेके हमको मारणेकुं आता है. तब राजा कहता है. तुंम दुरसें बाणोंसें विंधके मारगेरो श्रोर छब लीन लेवो परंतु अपने पगोका स्पर्श गुरुके शरीरसें न करणा, क्योंकि गुरुकी अवज्ञा महा पातकका हेतु है.

जैसा शबरराजा, गुरुका विनाश करता हुआ श्रोर पगांका स्पर्श करणा मना करता हुआ विवेक है तैसा गुरुकुल वासके त्यागनेवाले शुद्ध आहार लेनेवाले साधुका संयम पालना है; श्रोर आधा कर्म उद्देशिकादि दूषण सहितज्ञी आहार गुरु आज्ञा वर्तिकों शुद्ध है. निर्दोष है, शुद्ध आहारकातो क्या कहना है जो गुरुका आदेश माने तिसकों गुरु आज्ञा वर्त्ती कहते है, ऐसा कथन आगमके जानकार करते है. इस वास्ते गुरु आज्ञा मोटी है. तिस वास्ते गुरु आज्ञा माननेवाला धन्य है, प्रशंसने योग्य है, ज्ञले मनवाले है. इस वास्ते गुरु कर्कश वचनसें शिक्षा देवे तदा मनमें रोष न करे. गुरु कुलवास न छोडे.

प्रश्न—जैसा तैसा गुरुगण संपत्तिके वास्ते सेवना चाहिये के विशिष्ट गुणवाला सेवना चाहिये ?

उत्तर—गुणवानही, गुण गण अलंकृतही गुरु हो शक्ता है सो श्रुत धर्मका उपदेशक, चारित्र धर्मका पालनेवाला, संविज्ञ,

गीतार्थ गुरु मानना योग्य है. गुरुके व्रत षट्क ५ काय षट्क ६ अकल्प १३ गृहभाजन १४ पर्यंक १५ गृहस्थके घरे बैठना १६ स्नान १७ शोभा १८ ऐसा अठारह गुणका स्वरूप दश वैका लिकके छठे अध्ययनमें श्री शय्यंभव सूरिजीए विस्तारसें कथन करा है. इन अठारह गुण विना गुरु नहि हो शक्ता है—जैसें तंतु विना पट—वस्त्र नहि हो शक्ता है. प्रतिरूप. योग्यरूपवान् होवे १ तेजस्वी होवे २ युग प्रधानागमका जानकार होवे ३ मधुर वचन होवे ४ गंभीर होवे ५ बुद्धिमान् होवे ६ सो उपदेश देने योग्य आचार्य है. किसीके आलोया दूषण दुसरे आगे न कहे १ सौम्य होवे २ संग्रह शील होवे ३ अभिग्रह मति होवे ४ हितकारी मर्यादा सहित बोले ५ अचपल होवे ६ प्रशांत हृदय होवे, इत्यादि, तथा देश कुल रूप इत्यादि विशेष गुण करके संयुक्त होवे सो गुरु जैन सिद्धांतमें माना है. कार्य साधक होनेसें. जिसमें पूर्वोक्त गुण न होवे सो जैन मतके प्रवचन वेत्ताओने गुरु नहि माना है.

प्रश्न—सांप्रत कालके अनुभवसें पूर्वोक्त सर्व गुणवाला गुरु मिलना दुर्लभ है; कोइभी किसीसें किसी गुण करके हीन है, कोइ अधिक है ऐसा तारतम्य भेद करके अनेक प्रकारके गुरु उपलब्ध होते है. तिस वास्ते तिनमेंसें किसकों गुरु मानना चाहिये और किसकों गुरु न मानना चाहिये ऐसा दोलायमान मनवाले हमकों क्या उचित है. ?

उत्तर—" मूल गुण संपउत्तो नदोस लव जोग उइ मोहेउ। महुर वक्कम उपुण पवत्तियव्वो जहुत्तमि ॥ १३१ ॥ व्याख्या.

मूल गुण पंचमहाव्रत षट्काय आदि तिन करके संयुक्त सम्यक् सद्बोध, प्रधान प्रकर्ष उद्यमातिशय करके युक्त ऐसें मूल

गुणां करके संप्रयुक्त गुरु युक्त होता है. कदाचित् गुरु मंद बुद्धिवाला और बोलनेमें अचतुर, थोमेसे प्रमादवाला होवे, इत्यादि लेश मात्र दूषण देखके यह गुरु त्यागने योग्य है ऐसा मनमें न माननाः क्योंकि मूल गुण पांच जिसमें होवे सो अन्य किसी गुण करके रहितभी गुरु गुणवंत है. चंमरुद्रवत्, इत्यादि आगम वचनानुसारे मूल गुण शुद्ध जो गुरु होवे सो छोमने योग्य नहि है. कदाचित् गुरु प्रमादवान् हो जाते तब मधुर वचन करके और अंजलि प्रणाम पूर्वक ऐसें कहे—अनुपकृत, परहितरत तुमने भला हमको गृहवाससें छोमाया अब ऊपर मार्गके प्रवर्त्तावनेसें अपणी आत्माकों भीम भवकांतार संसारसें तारो. इत्यादि प्रोत्साहक वचनोंसें फेर भले मार्गमें प्रवर्त्तावे जैसे पंथग मुनिने सेलग राजऋषिकों फेर मार्गमे स्थिर करा. अब कथा ऐसें करता साधुकों जो गुण होवे सो कहते है. ऐसे मुल गुण संयुक्त गुरुकों न छोडता हुआ और गुरुकों सत्य मार्गमें प्रवर्त्तावता हुआ साधुनें बहुमान सप्रीति भक्ति गुरुकी करी है. तथा कृतज्ञता गुण अंगीकार करा तथा सकल गच्छकों गुणांकी वृद्धि अधिक करी, क्योंकि सम्यक् आज्ञावर्त्ती पुरुष गच्छ गुरुके ज्ञानादि गुणकी वृद्धि करताही है जेकर शिष्य शिखाये पढाये अविनीत होवे गुरुकी शिक्षा न मांने. तब गुरु तिनको त्याग देता है. कालिकाचार्यवत्. तथा अनवस्था मर्यादाकी हानी तिसका त्याग करणा होता है. यह अभिप्राय है कि जो एक गुरु मुल गुण महाप्रसादको धारण करणेंकों स्तंभ समान ऐसें गुरुको अल्प दोष दुष्ट जानके जो त्यागे तिसकों अन्यभी कोइ गुरु नहि रचे. कालके अनुभावसें सूक्ष्म दूषण प्राये त्यागनेकों कोइभी समर्थ नहि हो शक्ता है. इस हेतुसें उसको कोइभी गुरु नहि रुचेगा. तबतो एकला विचरेगा तब.

" एक्कस्स कनधम्मो सच्छंद मइ पयारस्स । किंवा करे इक्को परिहर नकंइमकज्जंवा ॥१॥ कत्तो सुत्तथ्थागम पमि पुछण चो-इणे वइक्कस्स । विणय वेया वच्चं आराहणा याव मरणंते ॥ २ ॥ पिल्लेइ जेसण मिक्को पइन्न पमया जणान निच्चनयं । काउमणो विअकज्जं न तरइ काऊण वहु मझे ॥ ३ ॥ उच्चार पासवण वंत मुत मुच्छा इमो हिउ इक्को । सहव नाण विहथ्थो निखिव इव कुणइ उड्डाहं ॥ ४ ॥ एगदिव संपि वहुया सुहाय असुहाय जीव परिणामा । इक्को असुह परिणओ चइय आलंबणं लद्धु " मित्या-दिना निषिद्ध मप्ये काकित्वं. । इनका भावार्थ. एकले विचरणे-वाले साधुके धर्म नहि, स्वच्छंदमति होनेसें. एकला क्या करे; कैसें एकला अकार्य परिहरे; एकलेकों सूत्रार्थका आगम नहि. किसको पूछे; एकलेको कौन शिक्षा देवे; एकला विनय वैयावृत्तसें रहितहै. मरणांतमें आराधना न करशके. एषणा न शोधी शके. प्रकीर्ण स्त्रीओंसें तिसकों नित्य भय है. वहुत साधुओंमें र-हनेवालाके मनमें अकार्य करणेकी इच्छाभी होवे तोभी नहि कर शक्ता है. उच्चार, विष्टा, मूत्र, वमन, पित्त, मूर्छा इन करके मोहित एकला कैसें पात्राके हाथ लगावे. कैसें पाणी लावे. जेकर जगत्की अशुचि न गिणेतो जगतमें जिन मतका उड्डाह निंदा करावे. ए-कला एक अवलंवन खोटा लेके सन्मार्गसें भ्रष्ट हो जावे. इत्यादि गाथाओंसें साधुको एकला रहणा निषेध करा है. तथा एकला जो होता है सो स्वछंदसें सुख जानके होता है तिसकी देखादे-ख अन्यअन्य मूढ. विवेक विकलभी एकले होते है. ऐसी अ-नवस्था करते है. और जो पूर्वोक्त गुरु गच्छमें रहते है वे पू-र्वोक्त सर्व दूषणोंसे रहित होते है. गुरुकी सेवा करणेमें. इत्यादि अन्यभी गुरुग्लान. बाल. वृद्धादिकोंकी विनय वैयावृत्त करणे-में सूत्रागम कर्म निर्जरादि अनेक गुण होते है. जो निर्जरा

होवे तिसकों क्या होवे तो कहते है. मूल गुणधारी गुरुके त्या गमेंसें उक्त गुण गुरु बहु मानादि कृतज्ञता सकल गच्छ गुणाके वृद्धि अनवस्था परिहार इत्यादि गुणांका उच्छेद होवे. लोको साधुओंका विश्वास नहि होवे. लोक ऐसे मानें—ये एकले परस्पर निंदक स्वछंदचारी अन्यअन्य प्ररूपणा करनेवाले सत्यवादी है वा मृषावादी है ? जब लोकमें ऐसा होवे तब तिनकों परभवमें जिनधर्मकी प्राप्ति न होवे. इत्यादि एकले स्वच्छन्दचारी साधुके दूषण होते है. जेकर थोडेसें दूषण प्रमाद जन्य देखके गुरु त्या गने योग्य होवे तब तो इस कालमें कोइभी गुरु मानने योग्य नहि सिद्ध होवेगा. क्योंकि जैनमतके सिद्धांतमें पांच प्रकारके निर्ग्रंथ कहे है. पुलाक १ बकुश २ कुशील ३ निर्ग्रंथ ४ स्नातक ५ इन पांचोका भेद स्वरूप देखना होवे तो श्री भगवती सूत्रसें तथा श्री अभयदेवसूरि कृत पंच निर्ग्रंथी संग्रहणीसें जानना. इन पांचोमेंसें निर्ग्रंथ, स्नातक ये दोनों तो निश्चयही अप्रमादी होते है. किंतु ते कदेइ होते है, श्रेणिके मस्तके सयोगी अयोगी गुणस्थानमें होते है. इस वास्ते तीर्थकी प्रवृत्तिके हेतु नहि है. और पुलाकभी लब्धिके होनेसेंही होता है. यह तीनो सांप्रत कालमें व्यवच्छेद हो गये है. इस वास्ते बकुश कुशीलसेंही इकवीस हजार वर्ष तक निरंतर श्री वर्धमान भगवंतका तीर्थ चलेगा. तीर्थप्रवाहके हेतु बकुश कुशील है. और बकुश कुशील अवश्यमेव प्रमादजनित दूषण सब करके संयुक्त होते है. जेकर पूर्वोक्त दूषणोवालोकों साधु न मानीये तब तो सर्व साधु त्यागने परिहरणे योग्य हो जायेंगे. यही वात चित्तमें लाकर सूत्रकारकहताहै.

" बकुश कुशीला तीर्थं दोस लवाले सुनियम संभविणो।
जई तेहिं वयणिज्जो अवयनिज्जो तऊपञ्चिय ॥ १३५ ॥ " व्याख्या.
बकुश कुशील व्यावर्णित स्वरूप दोनो निर्ग्रंथ सर्व तीर्थंकरोंके

तीर्थ संतानके करनेवाले है. इस वास्तेही सूक्ष्म दोष वकुश कुशलमें निश्चय करके होते है. जिस वास्ते तिनके दो गुण स्थानक प्रमत्त अप्रमत्त होते है. प्रमत्त गुणस्थानकमें अंतर्मुहूर्त्त काल तक रहता है. जब प्रमत्त गुणस्थानकमें वर्त्तता है तब प्रमादके होनेसें अवश्यमेव सूक्ष्म दोष लववाला साधु होता है; परंतु जहां तक सातमा प्रायश्चित्त आवनेवाले दुषण सेवे तहां तक तिसको चारित्रवानही कहिये. तिस वास्ते वकुश कुशीलमें निश्चयसेंही दूषण लवांका संभव है. जेकर तिनको साधु न मानीए तबतो अन्य साधुके अभावसें भगवंतके कहे तीर्थकाभी अभाव सिद्ध होवेगा. इस उपदेशका फल कहते है.

" इय भाविय परमथ्था मझथ्था नियगुरुं नमुंचंति । सव्वगुण संप भगं अप्पाण मिवि अपिठंता " ॥ १३६ ॥ व्याख्या. ऐसें पूर्वोक्त प्रकार करके मनमें परमार्थका विचारनेवाला मध्यस्थ अपक्षपाती पुरुष अपने धर्माचार्य गुरुको मूल गुण मुक्ता माणिक्य रत्नाकर गुरुकों न छोडे, न त्यागे. क्या करता हुआ सर्वगुण सामग्री अपणेमें न देखता हुआ. तथा अन्य दूषण यह है. जो गुरुका त्यागनेवाला है वो निश्चय गुरुकी अवज्ञा करनेवाला है, तब तो महा अनर्थ है सो आगमद्वारा स्मरण कराके कहते है.

" एवं अवमन्नंतो वुत्तो सुत्तं मिपाव समणुत्ति । मह मोह बंध गोविय खिंसंतो अप्पमि तप्पंतो ॥ १३६ ॥ व्याख्या. ऐसे पूर्वोक्त कहे गुरुको हीलता हुआ साधु सूत्र उत्तराध्ययनमें पाप श्रमण कहा है. और गुरुकों निंदने, खिजनेवाला आवश्यक, समवायांगादिकमें महा मोहनीय कर्मका बंध करनेवाला कहा है.

प्रश्न—गुरुकों सामर्थ्यके अभाव हुए जेकर शिष्य अधिकतर यतनावाला तप श्रुत अध्ययनादि करे सो करणा युक्त है ? वा गुरुके लाघवका हेतु होनेसें अयुक्त है ?

उत्तर—गुरुकी आज्ञा संयुक्त करे तो गुरुके गौरवका हेतु होवे. शिष्य गुणमें अधिक होवे तो गुरुके गौरवका हेतु है. जैसे वज्रस्वामिके हुए सिंहगिरि गुरुवत्.

अत्र कथा. शिष्यके गुणाधिक हुआ गुरुका गौरव है, किंतु तिस शिष्य गुणाधिकनेजी गुरुकों गुणहीन जानकर अपमान करना योग्य नहि. ऐसें गुरुकी जावसें विनय, जक्ति, वैयावृत्त्यादि करे तबही साधु शुद्ध, अकलंक चारित्रका जागी होवे. इस वास्ते दुष्कर क्रियाकारकजी शिष्य तिस गुरुकी अवज्ञा न करे परंतु तिसकी आज्ञा करनेवाला होवे. उक्तंच—

"छठम दसम दुवालसेहिं मासद्ध मासखमणेहिं। अकरंतो गुरुवयणं अणंतसंसारिओ जणिओ. अर्थ—उपवास, छठ, अठम, दसम, द्वादशम, अर्धमास, मासक्षपण तप करनेवाला शिष्य गुरुका वचन न माने तो अनंतसंसारी कहा है.

अथ साधुके लिंग समाप्ति करता हुआ ग्रंथकार तिसका फल कहता है, पूर्वोक्त सात लक्षण सकल मार्गानुसारिणी क्रिया १ श्रद्धा प्रधान धर्ममें २ समजावने योग्य सरल होनेसें ३ क्रियामें अप्रमाद ४ शक्ति अनुसार अनुष्ठान करे ५ गुणसें बहुत राग ६ गुरु आज्ञा आराधन प्रधान ७ इन सात लक्षणोंका धरनेवाला जाव साधु होता है. तिस जाव साधुकों सुदेवत्व, सुमनुष्यत्व, ज्ञानिरूपादिक लाज होवे, और परंपरामें मुक्ति पद मिले. ऐसे साधुकोंही गुरु मानना चाहिये. कथन करा श्रावक साधुके संबंध लेदमें दो प्रकारका धर्म रत्न.

इति श्री धर्मरत्न प्रकरणानुसारेण भुतत्वका स्वरूप किंचित मात्र लिखा है.

अथ जैनमतका किंचित् स्वरूप लिखते हैं.

प्रथम तो आत्माका स्वरूप जानना चाहिये. यह जो रचा है सोइ जीव है, यह आत्मा स्वयंभू है परंतु किसीका रचा हुआ नहि है. अनादि अनंत है. पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध आठ स्पर्श इन करके रहित है. अरूपी है आकाशवत. असंख्य प्रदेशी है. प्रदेश उसको कहते है जो आत्माका अत्यंत सूक्ष्म अंस कथंचित् भेदाभेदरूप करके एक स्वरूपमें रहे तिनका नाम आत्मा है. सर्व आत्म प्रदेश ज्ञानस्वरूप है. परंतु आत्माके एकैक प्रदेश उपर आठ कर्मकी अनंत अनंत कर्मवर्गणा, ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ सुखदुःखरूप वेदनीय ३ मोहनीय ४ आयु ५ नामकर्म ६ गोत्रकर्म ७ अंतरायकर्म ८ करके आछादित है. जैसें दर्पणके उपर छाया आ जाती है. जब ज्ञानावरणादि कर्मोका क्षयोपशम होता है तब इंद्रिय और मनद्वारा आत्माको शब्द १ रूप २ रस ३ गंध ४ स्पर्श ५ तिनका ज्ञान और मानसी ज्ञान उत्पन्न होता है. कर्मोका क्षय और क्षयोपशमका स्वरूप देखना होवे तब कर्म प्रकृति और नंदिकी बृहत् टीकामेंसे जान लेना.

इस आत्माके एकैक प्रदेशमें अनंत अनंत शक्ति है. कोई ज्ञानरूप, कोई दर्शनरूप, कोई अव्याबाध सुखरूप, कोई चारित्ररूप, कोई थिररूप, कोइ अटल अवगाहनारूप, कोई अनंत शक्ति सामर्थ्यरूप, परंतु कर्मके आवरणमें सर्व शक्तिया लुप्त हो रहि है. जब सर्व कर्म आत्माके साधनद्वारा दुर होते है. तब यही आत्मा, परमात्मा, सर्वज्ञ, सिद्ध, बुद्ध, ईश, निरंजन, परम ब्रह्मादिरूप हो जाता है. तिसहीका नाम मुक्ति है. और जो कुछ आत्मामे नर, नारक, तिर्यग्, अमर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर

दुस्वर, उंच, नीच, रंक, राजा, धनी, निर्धन, दुःखी, सुखी जो जो अवस्था संसारमें जीवोंकी पीछे हुई है, और अब हो रहि है, और आगेको होवेगी, सो सर्व कर्मोके निमित्तसें है. वास्तवमें शुद्ध इव्यार्थिक नयके मतमें तो आत्मामें लोक १ तीनवेद २ थापना ३ उच्छेद मुख्य करके नहि ४ पाप नहि ५ पुन्य नहि ६ क्रिया नहि ७ कुच्छ करणीय नहि ८ राग नहि ९ द्वेष नहि १० बंध नहि ११ मोक्ष नहि १२ स्वामी नहि १३ दास नहि १४ पृथ्वीरूपी १५ अपूरूप १६ तेजस्काय १७ वायुकाय १८ वनस्पति १९ बेंद्री २० तेंद्री २१ चोरेंद्री २२ पंचेंद्री २३ कुलधर्मकी रीत नहि २४ शिष्य नहि २५ गुरु नहि २६ हार नहि २७ जीत नहि २८ सेव्य नहि २९ सेवक नहि ३० इत्यादि उपाधय्या नहि परंतु इस कथनको एकांतवादी वेदांतिओकी तरें माननेसें पुरुष अतिपरिणामी होके सत्स्वरूपसें भ्रष्ट होकर मिथ्यादृष्टि हो जाता है. इस वास्ते पुरुषको चाहिये, अंतरंग वृत्तिमेंतो शुद्ध इव्यार्थिक नयके मतकों माने और व्यवहारमें जो साधन अढारह दूषण वर्जित परमेश्वरने कर्मोपाधि दूर करनेके वास्ते कहे है तिनमें प्रवर्त्ते. यह स्याद्वाद मतका सार है.

तथा यह जो आत्मा है सो शरीर मात्र व्यापक है. और गीणतीमें आत्मा भिन्न भिन्न अनंत है. परंतु स्वरूपमें सर्व चेतन स्वरूपादिक करके एक सरीखे है परंतु एकही आत्मा नहि, तथा सर्व व्यापीभी नहि. जो एक आत्माको सर्व व्यापी और एक मानते है वे प्रमाणके अनभिज्ञ है. क्योंकि ऐसे आत्माके माननेसें बंध मोक्ष क्रियादिका अभाव सिद्ध होता है तथा आत्माका यह लक्षण है.

यः कर्त्ता कर्मभेदानां भोक्ता कर्मफलस्य च ।
संसर्त्ता परिनिर्वर्त्ता सआत्मा नान्यलक्षणः ॥ १ ॥

अर्थः—जो शुनाशुन कर्म नेदांका कर्त्ता है, और जो करे कर्मका फल नोगनेवाला है. और जो भ्रमण करनेवाला, और निर्वाण होता है सोइ आत्मा है. इनसेंसें एक वातनी न मानीएतो सर्व शास्त्र जुठें ठहरेंगे, और शास्त्रांका कथन करनेवाला अज्ञानी सिद्ध होवेंगे. तथा पूर्वोक्त आत्माके साथ जेकर पुन्य पापका प्रवाहसें अनादि संवंध न मानीएतो वम्हे दूषण मतधारीओंके मतमें आते है. वे ये है.

जेकर आत्माको पहिलां माने और पुन्य पापकी उत्पत्ति आत्मामें पीछे माने तवतो पुन्य पापसें रहित निर्मल आत्मा सिद्ध हुए १ निर्मल आत्मा संसारमें उत्पन्न नहि हो शकता है. २ विना करे पुन्यपापका फल नोगना असंनव है ३ जेकर विना करे पुन्य पापका फल नोगनेमें आवे तवतो सिद्धमुक्तरूपनी पुन्य पापके फल नोगेंगे ४ करेका नाश, विना करेका आगमन यह दूषण आवेगा ५ निर्मल आत्माके शरीर उत्पन्न नहि होवेगा ६ जेकर विना पुन्य पापके करे ईश्वर जीवकुं अच्छी वुरी शरीरादिककी सामग्री देवेगा तव ईश्वर अन्यायी, अज्ञानी, पूर्वापर विचार रहित, निर्दयी, पक्षपाती इत्यादि दूषण सहित सिद्ध होवेगा तव ईश्वर जापका ७ इत्यादि अनेक दूषण है. इस वास्ते प्रथम पक्ष असिद्ध है. १

दुसरा पक्ष कर्म पहिलें उत्पन्न हुए और जीव पीछे बना [illegible] पक्ष मिथ्या है. क्योंकि जीवका उपादान कारण कोइ नहि १ [illegible] कर्मका [illegible] नहि २ जीवने कर्म करे नहि [illegible] न होना चा-

हिये ३ जीव कर्त्ताके विना कर्म उत्पन्न नहि हो शकते ४ जेकर कर्म ईश्वरने करे तव तो तिनका फलभी ईश्वरको भोगना चाहिये. जब कर्म फल भोगेगा तब ईश्वर नहि ५ जेकर ईश्वर कर्म करके अन्य जीवांको लगावेगा तव निर्दय, अन्यायी, पक्षपाती, अज्ञानी, सिद्ध होवेगा. क्योंकि जब बुरे कर्म जीवके विना करे जीवको लगाये तवतो जो नरक गतिके दुःख तिर्यग् गतिके दुःख, दुर्भग, दुःस्वर, अयश, अकीर्त्ति, अनादेय, दुःखी, रोगी, भोगी, धनहीन, भूख, प्यास, शीतोष्णादि नाना प्रकारके दुःख जीवने भोगने भोगे है वे सर्व ईश्वरकी निर्दयतासें हुये १ विना अपराधके दुःख देनेसें अन्यायी २ एकर्कु सुखी करनेसे पक्षपाती ३ पीछे पुन्य पाप दूर करणेका उपदेश देनेसे अज्ञानी ४ इत्यादि अनेक दूषण होनेसे दूसरा पक्षभी असिद्ध है.

तीसरा पक्ष जीव और कर्म एकही कालमें उत्पन्न हुए यह पक्षभी मिथ्या है; क्योंकि जो वस्तु साथ उत्पन्न होती है तिनमें कर्त्ताकर्म नहि होते है. तिस कर्मका फल जीवकु न होना चाहिये. जीव और कर्मोका उपादान कारण नहि. जेकर एक ईश्वर जीव और कर्मोका उपादान कारण मानीए तो असिद्ध है, क्योंकि एक ईश्वर जमचेतनका उपादान कारण नहि हो शक्ता है. ईश्वरकुं जगत रचनेसें कुच्छ हानि नहि. जब जीव और जम नहि थे तब ईश्वर किसका था. जब कर्म स्वयमेव उत्पन्न नहि हो शक्ते है. इस वास्ते तिसरा पक्ष मिथ्या है.

चौथा पक्ष. जीवही सच्चिदानंदरूप एकला है. पुन्य पाप नहि. यहभी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि विना पुन्य पाप जगतकी विचित्रता कदापि सिद्ध न होवेगी.

पांचमा पक्ष. जीव और पुन्य पापही नहि है. यहभी कहना मिथ्या है क्योंकि जब जीवही नहि तब यह ज्ञान किसकों हुआ कि कुच्छ है ही नहि है. इस वास्ते जीव और कर्मांका संयोगसंबंध प्रवाहसे अनादि है. तथा यह जो आत्मा है सो कर्मोके संबंधसें त्रस थावर रूप हो रहा है.

थावर पांच है. पृथ्वी १ जल २ अग्नि ३ पवन ४ वनस्पति ५. और त्रस चार तरेंके है. दो इंद्रिय १ तेंद्रियं २ चौरेंद्रिय ३ पंचेंद्रिय ४ तथा नारक १ तिर्यंच २ मनुष्य ३ देवता ४ तिनमें नरकवासीओके १४ भेद है. तिर्यंच गतिके ४८ भेद है. मनुष्य गतिके ३०३ भेद है. देव गतिके १९८ भेद है. ये सर्व ५६३ भेद जीवांके है.

यह आत्मा कथंचित् रुपी और कथंचित् अरूपी है. जब तक संसारी आत्मा कर्म करी संयुक्त है तब तक कथंचित् रूपी है. और कर्म रहित शुद्ध आत्माकी विवक्षा करीए तब कथंचित् अरूपी है. जेकर आत्माकों एकांतरूप मानीए तब तो आत्मा जड सिद्ध होवेगा और कटनेसें कट जावेगा और जेकर आत्मा एकांत अरूपी मानीए तो आत्मा क्रिया रहित सिद्ध होवेगा तब तो बंध मोक्ष दोनोका अभाव होवेगा. जब बंध मोक्षका अभाव हुआ तब शास्त्र और शास्त्रकार जूठ ठहरेंगे, और दीक्षा दानादि सर्व निष्फल होवेंगे. इस वास्ते आत्मा कथंचित् रुपी कथंचित् अरूपी है. तथा तत्वालोकालंकार सूत्रमें आत्माका स्वरूप लिखा है.

" चैतन्य स्वरूपः परिणामी कर्त्ता साक्षाद्भोक्ता स्वदेह परिमाणः प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्गलिकादृष्टवांश्चायमिति. " इस सूत्रका अर्थः

चैतन्य साकार, निराकार उपयोग स्वरूप जिसका सो चैतन्य स्वरूप १ परिणमन समय समय प्रति पर अपर पर्यायोमें गमन करना अर्थात् प्राप्त होना सो परिणामः सो नित्य है इसकें सो परिणामी २ कर्त्ता है अदृष्टादिकका सो कर्त्ता ३ साक्षात् उपचार रहित ज्ञोक्ता है सुखादिकका सो साक्षाद्भोक्ता ४ स्वदेह परिमाण अपणे ग्रहण करे शरीर मात्रमें व्यापक है ५ शरीर शरीर प्रति अलग रहे ६ अलग अलग अपने अपने करे कर्मोंके आधीन है ७ इन स्वरूपोका खंमन मंमन देखना होवे तब तत्वालोकालंकारकी लघुवृत्ति देख लेनी. तथा ये आत्मा संख्यामें अनंतानंत है. जितने तिन कालके समय तथा आकाश के सर्व प्रदेश है तितने है. मुक्ति होनेसें कदापि सर्वथा संसार खाली नहि होवेगा—जैसें आकाशको मापनेसें कदापि अंत नहि आवेगा. तथा आत्मा अनंतानंत जिस लोकमें रहते है सो असंख्यासंख्य कोमाकोमि जोजन प्रमाण लांबा चोमा ऊंचा नीचा है. तथा इस आत्माके तीन ज्ञेद है बहिरात्मा १ अंतरात्मा २ परमात्मा ३ तहां जो जीव मिथ्यात्वके उदयसें तन, धन, स्त्री, पुत्र पुत्र्यादि परिवार, मंदिर, नगर, देश, शत्रु, मित्रादि इष्टानिष्ट वस्तुओंमें रागद्वेषरूप बुद्धि धारण करता है सो बहिरात्मा है अर्थात् वो पुरुष ज्ञवाज्ञिनंदी है. संसारिक वस्तुओंमेंही आनंद मानता है. तथा स्त्री, धन, यौवन, विषय ज्ञोगादि जो असार वस्तु है तिन सर्वको सार पदार्थ समजता है, तब तकही पंडिताइमें वैराग्य रस घोटता है, और परम ब्रह्मका स्वरूप बनाता है, और मंत महंत योग। जर्पा बन रहे है जब तक सुंदर उद्भट यौवनवंती स्त्री नहि मिलती। और धन नहि मिलता है. जब ये दोनो मिले तब तत्काल अर्हन ब्रह्मका हत

ब्रह्म हो जता है, और लोगोकुं कहने लगता है—नइयां हम जो स्त्री भोगते है, इंद्रियोंके रसमें मगन है, धन रखते है, डेरा बांधते है इत्यादि वो सर्व मायाका प्रपंच है. हम तो सदा अलिप्त है. ऐसे ऐसे ब्रह्मज्ञानियोंका मुह काला करके और गद्धेपर चढा के देशनिकाल करना चाहिये, क्योंकि ऐसे ऐसे भ्रष्टाचारी ब्रह्मज्ञानीओने कितनेक मूर्ख लोगोकों ऐसा भ्रष्ट करा है कि उनका चित्त कदापि सन्मार्गमें नहि लग शकता है, और कितनीक कुलकी स्त्रियोंकों ऐसी बिगाडी है कि वे कुलमर्यादा लोकपर इन भंगी जंगी फकीरोंके साथ दुराचार करती है. और यह जो विषयके भिखारी और धनके लोभी संत महंत भंगी जंगी ब्रह्मज्ञानी बन रहे है वे सर्व दुर्गतिके अधिकारी है, क्योंकि इनके मनमें स्त्री, धन, काम, भोग, सुंदर शय्या, आसन, स्नान, पानादि उपर अत्यंत राग है. दुखके आये हीन दीन होके विलाप करते है. जैसे कंगाल बनीआ धनवानोको देखते झूरता है तैसे यह पंडित संत महंत भंगी जंगी लोगोंकी सुंदर स्त्रीयां धनादि देखके झूरते है, मनमें चाहते है ये हमकुं मिले तो ठीक है. इस बातमें इनका मनही साक्षी है. तथा जो जीव बाह्य वस्तुकोंही तत्त्व समजता है तिसहीके भोगविलासमें आनंद मानता है सो प्रथम गुणस्थानवाला जीव बाह्यदृष्टि होनेसें बहिरात्मा कहा जाता है. १.

अब अंतरात्माका स्वरूप कहते है.

जे तत्त्वश्रवण करके युक्त होवे, कर्मबंधन निर्बंधनके स्वरूपकुं यथार्थ तरहसें समजता होवे, अरु सदा चित्तमें ऐसा विचार करता होवे के यह असार संसारमें जो जो अशुभ कर्म उपार्जन करता हुं सो तो अवश्य उदय आनेसें भोगवने प्राप्त

तच्छिष्यः पद्मविजयः सुदृढो धर्मकर्मणि ।
सूरिर्ग्रंथाः कृता येन प्राणिनां बोधबीजदाः ॥ २५ ॥
श्रीमान् रूपविजयाख्यः तस्य पट्टांबरे विधुः ।
अभूत्सर्वसुधीवर्यः क्षांत्यादिगुणगुम्फितः ॥ २६ ॥
तत्पट्टे वादिवादस्य खंडनेऽयोग्रवत्सदा ।
नाम्ना कीर्तिविजयोऽभूत् शुद्धतत्वप्रदर्शकः ॥ २७ ॥
कस्तूरविजयस्तस्य कस्तूरीवेष्ठगंधदः ।
निष्णातो जैनशास्त्रेषु मीनकेतननाशकः ॥ २८ ॥
तत्पट्टे तपसायुक्तः मणिविजय इत्यभूत् ।
मुक्त्याच यस्य चारित्रं निर्मलं शतपत्रवत् ॥ २९ ॥
तत्पट्टे बुद्धिविजयः निस्पृहो धीपणाकरः ।
निर्मलं मानसं यस्य ज्ञानध्याने स्थितं सदा ॥ ३० ॥
आनंदविजयस्तस्य आत्मारामापराभिधः ।
सत्यतत्वाभिलापित्वात् जातोह्यमार्हते दृढः ॥ ३१ ॥
ग्रंथोऽयं निर्मितोऽज्ञानतिमिरभास्करो मया ।
स्तंभनाधिष्ठिते रम्ये स्थित्वा खंभातपत्तने ॥ ३२ ॥
इमं ग्रंथं यदाकोऽपि समालोक्य सविस्तरं ।
दधाति मत्सरं तर्हि ग्रंथस्य किमु दूपणं ॥ ३३ ॥
मिष्टस्वादानभिज्ञश्चेत् द्राक्षासु करभो मुखं ।
वक्रीकुर्यात्ततस्तासां माधुर्यं क्वापि किं गतं ॥ ३४॥
लभ्यंते भूरिरत्नानि अनर्घाण्यपि हेलया ।
परं सम्यक् सुधायुक्तं तत्वज्ञानं तु दुर्लभं ॥ ३५ ॥
यद्यपि ज्वरितस्यार्तिं जंतोर्जनयते जलं ।
तथाप्युष्णीकृतं तस्य मुख्यपथ्यं तदंबद्दि ॥ ३६ ॥
अंबरे ज्योतिषां चक्रं यावद् भ्राम्यति विस्मृते ।
तावन्नंदतु ग्रंथोऽयं प्रतिपन्नो मनीषिभिः ॥ ३७ ॥

भावार्थ—श्री महावीरस्वामीका सुंदर शासन ओ संसा· रूप समुद्रमें नवनीतकुं शांत समान हे. और अनंत सुखका सर्व स्वनिवानका बीज तथा सर्व प्राणीका सुखने वास्ते कल्प· वृक्ष समान हे. प्रथमपदका अधिपति श्री सुधर्मास्वामीकुं हर्षसें प्रणाम कर तपगच्छकी किंचित् सूचना लिखते हे. सुधर्मास्वामी पीछे आठ पद पर्यंत तपगच्छमें निर्ग्रंथ नामे गुणोत्पन्न हूआ ते पीछे संपत्तिका निधान जेसां नवपट्टमे सुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामे दो विद्वान् गच्छका नायक हूआ. तिसमें रम्यसूरिमंत्रका कोटी जाप करनेसें तिसका नाम लोकमें 'कौटिक' एसा हुआ त्यारपीछे पंदरमे पदे चंद्रजैसा चंद्रसूरिनामे यतीश्वर हुआ, त्यारबाद सोलमे पदे सामंतभद्र नामे सूरि हुआ जे सूरिने निः- स्पृहपणासें सर्व जगत्को जितलियाथा निर्मम, मद रहित और सदाचार युक्त ऐसा जे सूरिने हृदयमें विद्या और अहंकार, ओ दोनुका वियोग बनवाया ओ सूरि सदाकाल वनमें वासकर रहेतेथे, ओ कारणसें ओ सर्व गुणका स्थानरूप सूरि विजयसिंह नामे जितेंद्रिय सूरींद्र हुवा उसका शिष्य सत्यविजय हुआ, सो सर्व उत्तम गुणोसें व्याप्त और विविध शास्त्रोमें प्रवीण हुवाथा. उसका शिष्य कपूरविजय हुवा सो बोहोत शिष्यवालेथा और शास्त्रकुं जाणनेवाला, सज्जन, बुद्धिमान् और वादीरूप कंदमे कुवाडारूपथा. उसका शिष्य क्षमाविजय नामे हुवा सो सदाचारी, शासनकी उन्नति करनेवाला और क्षमादि गुणोसें संपन्न हुवाथा. उसका पदमें श्रीमान् 'जिनविजय' नामे विद्वान् मुनि हुवा. सो मुनिने वादीओका वादरूप इंद्रजालको क्षणमें जर्जरकीयाथा. उसका पदमें सुबुद्धिमान् और विजयी हुवाथा, सो देवोकुं जैसा इंद्र· सेव्य है ऐसा उत्तम मुनिओकुं सेव्य हुवाथा. उसका शिष्य पद्म· विजय हुवा सो धर्मकर्ममें दृढ हुवाथा और उनोने प्राणि·

श्रोको बोधरूप बीजको देनेवाला बहोत ग्रंथ बनायाथा. उनका पटरूपकुं लोको वनवासी कहने लगे. ते पीछे उत्तीशमे पटमें सर्वदेव नामका एक बोहोत्त गुणवाले सूरि हुवा, सर्व मुनिवृंदको सुखदेनेवाला हुवा. श्रो सूरिको वडकावृक्षनीचे पटका अभिषेक हुवा, ए कारणसें लोकमें उसकानाम 'वटगच्छ' एसाउत्तर गुणीनाम उपा ते पीछे चोंवालीशमे सुंदर पटमें पुष्करमें चंद्रकी माफक जगचंद्रसूरि उत्पन्न हुवा. कोइ समयमें श्रो सूरि मेवाडकी जूमिमें विहार करते करते आघाट नगरकी बाह्य जूमिका स्थानपर आया. तब ए नगरका राजाए तपस्वी मुनिको देखकर अपना मंत्रीसें पुछया के, तपसें दुर्बल एसा श्रो कोन है ? मंत्रीका मुखसें श्रो मुनिका वृत्तांत जाणकर राजा उसका जक्त हुवा. श्रोर दर्पमें तिस समयमें 'तपागच्छ' एसा यथार्थ नाम दीया. ते पीछे उसका पटमें अनुक्रमे देवेंद्र सूरि श्रोर धर्मघोष तथा श्री हीरविजय प्रमुख राजा के सेव्य एसा सूरींद्र हुवा. त्यारपीछे वादिरुप दग्णोकुं नशाम्ने में सिंह जैसा आकाशमें चंद्रसमान श्रीमान् रूपविजय नामे शिष्य हुवा, सो सर्वविद्वानोंमें श्रेष्ठ श्रोर क्षमा प्रमुख गुणोको धारण करनेवाला था. उसका शिष्य कस्तूरविजय हुवा, सो कस्तूरीकी माफक इष्ट गंधको देनेवाला, जैनशास्त्रोका पारंगत श्रोर कामदेवका नाशक हुवाथा उसकी पाटे 'मणिविजय' नामे तपस्वी मुनि हुवा, उसका चारित्र मुक्तिसें कमलकी माफक निर्मल था. उसकी पाटे बुद्धिविजय हुवा था, जिसका निर्मल हृदय हरदम ज्ञान ध्यानमें रहेताथा. उनका शिष्य 'आनंदविजय' हुवा, जिसका दुसरा नाम आत्माराम है. सो में सत्य तत्त्वका अजिलाषी होकर जैनमतमें दृढ हुवा हुं. मैं श्रो 'अज्ञानतिमिरज्ञास्कर' ग्रंथ स्वंजननीय संतान;

मे रहे कर वनाया है. कोइ पुरुष जो इस ग्रंथको सविस्तर देखकर मत्सर देखे तो उसमें ग्रंथका दूषण क्या है? क्युंके मिष्टस्वादको नहि जाननेवाला गधेडा द्राखमें मुख माले इससें द्राखका माधुर्य क्युं चल्या जता है? कोहेनूर अमूल्यरत्न एक क्रीडामात्रसें मीलता है परंतु सम्यक्त्वरुप अमृतसें युक्त एसा तत्वज्ञान दुर्लभ है. यद्यपि बुखारवाले प्राणीके जल पीडा देनेवाले है, तथापि सोइ जल उष्ण करनेसें उसको पथ्यकारी होता है.

विस्तारवाले आकाशमें ज्योतिष–तारा चक्र जबतक फीरतरहे, तबलग बुद्धिमानोने प्रतिपादित एसो श्रोग्रंथ आबाद रहो.

इतिश्री तपगच्छीय मुनिश्री मणिविजय गणिशिष्य श्री बुद्धिविजय तच्छिष्य आत्माराम–आनंद विजय विरचिते अज्ञानतिमिर भास्करे द्वितीयं खंडं संपूर्णम् ।
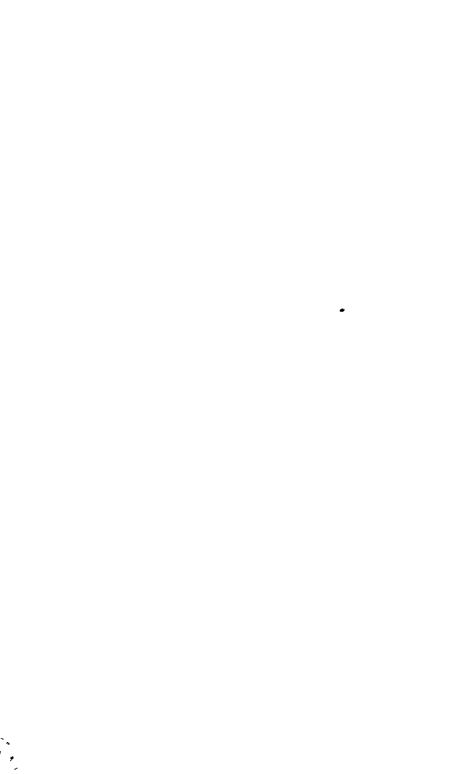
शुद्धि पत्रम्.

पत्र.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
५	१४	कुछ्क	कुछ
७	६	स्तिष्ट	स्विष्ट
१०	१९	वेदनें	वेदमें
१६	६	इस्वीमें	इस्वीसनमें
२१	५	वीतमय	वीतज्ञय
२७	११	घमंड	घमंरू
१३	९	ठगा	ठगा
२५	१९	विषेश	विशेष
५६	२५	तो	तौ
६१	१६	वुद्दि	वुद्दि
६२	११	यक्र	यज्ञ
६२	२०	शिप्य	शिष्य
६६	३	इव	इन
७१	२४	खिप्याणां	शिष्याणां
८५	५	लीना,	
८७	२५	कुठज्ञी	कुठज्ञी
९३	१८	कितकेकतो	कितनेकतो
९४	२५	लर्व	सर्व
९५	१७	वखन	वखत
१००	२१	क्रियाकांरूमें	क्रियाकांडमें
१०४	१२	इम	इस
११५	७	विद्वान	विद्वान्
१२१	१४	ज्ञाप्य	ज्ञाप्य

१२२	२०	घांध	बांध
१२३	२०	रसाइ	रसोइ
१२५	१	आदिक	अदिक
१२८	२२	रखनेका	रखनेका
१३५	११	अर्हन	अर्हंन्
१४२	११	सक्ता	.
१५२	८	शिवप्रसाददके	शिवप्रसादके
१५३	२२	समझाग	समजाय
१५९	१	अपन्नी	अपनी
१५९	१४	हलवल	हलचल
१६२	८	नयसे	नयके
१६३	६	श्रीग्न्नदेवकी	श्रीरूपन्नदेवकी
१६८	२३	कैंठ	कंठ
१७०	१६	म्व्पसें	रूपसें
१७२	१४	लिखना	लिखता
१७२	२६	राणीर्जीके	राणाजीके
१७६	९	पृष्ठमे	पृष्टमे
१७९	१९	सम-	समय-
१८३	१	कानमा	कौनमा
१८५	१७	जानाकर	जानाकार
१८६	१२	घुणा	घृणा
१८७	८	नूर्नि	मूर्नि
१८९	१५	जपनकी	जगतकी
१९१	२३	गेरू	रोरि
१९३	४	नाग	नोग
२००	१	दर्मानें	इमी

२०१	१७	गुस्तेंसें	गुस्सें
२०८	५	सुझंक्षिएय	सुदाक्षिएय
२१२	१८		ओरजोनिवृत्तिहे
२१९	१५	कारए	कारण
२२२	३	मुश	मुख
२२२	१८	कौपवी	औपवी
२३०	३	लोमोकुं	लोगोकुं
२३०	१४	धर्सप्रयोजनके	धर्मप्रयोजनके
२३१	६	समजला	समजेला
२३१	१४	सुंदरसद्	सुंदरसद
२३२	७	करे	वार
२३६	८	अपते	अपने
२४०	१३	ऐवं	एवं
२४३	२१	गोमाया	गोयमा
२४४	३	गोंयमा	गोयमा
२४६	२२	निस्से	तिस्से
२४९	१२	पडिवन्नमसंग्रहं	पडिवन्नमसंग्गहं
२४९	१५	ठेते	ठेडे
२५३	६	शश्रूपा	शुश्रूपा
२६२	२५	जैनमतकों	०
२६३	१७	वा	०
२६४	९	शिप्योके	०
२६४	१३	वास्ते	वाते
२६६	२२	मानसें	मानने
२६९	२१	यढके	पढके
२७२	१५	दो	०

२७३	१७	ज्ञावी	ज्ञावन्नी
२८०	१८	श्रेवार्थी	श्रेयार्थी
२८२	१०	अग्नोयर	अगोयर
२८३	१७	चवता	चलता
२८३	२४	शस्त्रपरिज्ञाप्ययन	शस्त्रपरिज्ञाध्ययन
२८४	१८	उपवाल	उपवास
२८६	१९	पापी	पानी
२९०	२२	मेवंग	संवेग
२९१	८	प्रयंजुन	प्रयुंजन
२९२	१९	उकका	उणका
२९२	१९	एक उपर	०
२९४	२०	निपेधमी	निपेधन्नी
२९५	१८	देखनामी	देखनान्नी
२९७	२५	विधमार्गके	विधिमार्गके
२९९	५	मेहा	मोद
३०२	१२	धर्नन्नी	धर्मन्नी
३०९	१७	स्तुवह	स्तुवह
३०९	२२	वेठना	वेठना
३१०	६	आवोयण	आलोयण
३१३	१६	पदंतु	परंतु
३१३	२५	गुरुसें	गुससें

सूचना—पृष्ट ७ में १६ पंक्तिमें नीचे प्रमाणे अर्थमें वधारा करके वांचना—

यज्ञका अवशेप भागकुं खाने वाले संतपुरुपो सर्व पापसें मुक्त होते हे.